B.A. Mass Communication (I year)
B.M.C.

BMC-102

HINDI

Directorate of Distance Education
Guru Jambheshwar University of Science & Technology

HISAR-125001

List of Contents

Sr. No.	Lesson	Page No.
1.	स्वर-व्यंजन, शब्द व पद की अवधारणा	1
2.	उच्चारण व अर्थ	26
3.	पर्याय, विलोम, समानार्थी, अनेकार्थी शब्द	49
4.	संज्ञा, क्रिया, विशेषण, काल, वाच्य	78
5.	हिन्दी भाषा का विकास - प्राचीन, मध्यकालीन	112
6.	प्रयोजनमूलक हिन्दी	135
7.	संचार भाषा- पत्रकारिता, दृश्य-श्रव्य अवयव, विज्ञापन	157
8.	भाषा और बोली, प्रादेशिक बोलियां और उनका वर्गीकरण	166
9.	समास	188
10.	हिन्दी भाषा की शैली	196

लेखक : डा. मधुसूदन पाटिल, पूर्व वरिष्ठ व्याख्याता।

एसआईएम शैली में परिवर्तन : डा. मनोज छाबड़ा, हिन्दी प्रवक्ता।

बीए मास कम्युनिकेशन, प्रथम वर्ष

हिन्दी– बीएमसी 102

खंड–ए **इकाई – 1** **अध्याय–1**

स्वर–व्यंजन, शब्द व पद की अवधारणा

लेखक : डा. मधुसूदन पाटिल, पूर्व वरिष्ठ व्याख्याता।

एस.आई.एम. शैली में परिवर्तन : डा. मनोज छाबड़ा, हिन्दी प्रवक्ता।

अध्याय संरचनाः

इस अध्याय में हम स्वर–व्यंजन, शब्द व पद का परिचय प्राप्त करेंगे। इन विषयों की अवधारणा पर विशेष जोर दिया जाएगा। अध्याय की संरचना इस प्रकार रहेगीः

1.0 उद्देश्य

1.1 परिचय

1.2 विषय वस्तु की प्रस्तुति

1.2.1 स्वर–व्यंजन

1.2.2 शब्द

1.2.3 पद

1.3 सारांश

1.4 सूचक शब्द

1.5 स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1.6 संदर्भित पुस्तकें

1.0 उद्देश्यः

इस अध्ययाय के उद्देश्य इस प्रकार हैं:

- स्वर–व्यंजन की अवधारणा का एक जायजा लेना
- शब्द की अवधारणा के बारे में जानना
- पद की अवधारणा के बारे में जानना

1.1 परिचयः

स्वर स्वयं-उच्चारित ध्वनियां हैं। व्यंजन ध्वनियों का उच्चारण स्वरों की सहायता के बिना नहीं हो सकता। स्वरों की सत्ता मानी जाती है और व्यंजनों को स्वरों का अधीनस्थ कार्यकर्त्ता माना जाता है। इस प्राचीन परिभाषा से आधुनिक भाषा वैज्ञानिक असहमत हैं।

ध्वनि की वाक्यांशपरक स्वतंत्र लघुतम इकाई शब्द है। संस्कृत मे कान के लिए शब्दग्रह शब्द का प्रयोग हुआ है। शब्द का एक अर्थ ध्वनि है। शब्द का एक और अर्थ वचन या कथन है।

स्वर व व्यंजन ध्वनि पर ही आधारित हैं। स्वरों के उच्चारण में जहां समय कम लगता है वहीं व्यंजन स्वरों की सहायता के बिना बहुत कम प्रयोग किए जाते हैं।

इस अध्याय में स्वर-व्यंजन आदि की विस्तार से चर्चा की जाएगी।

1.2 विषय वस्तु की प्रस्तुति :

इस अध्याय में स्वर-व्यंजन, शब्द व पद विषयों की अवधारणा पर विशेष जोर दिया जाएगा। विषयों की प्रस्तुति इस प्रकार रहेगीः

- *स्वर-व्यंजन*
- *शब्द*
- *पद*

1.2.1 स्वर-व्यंजन :

स्वरों का सर्वाधिक प्राचीन और प्रचलित वर्गीकरण स्वर और व्यंजन के रूप में उपलब्ध है। भारत में पतंजलि ने 'महाभाष्य' में स्वर और व्यंजनों के विभाजन का उल्लेख किया है । इस सन्दर्भ में यूरोप में सर्वप्रथम दियोनिसियस थ्रेंकस का नाम लिया जाता है। दोनों का आशय एक ही है कि स्वर वे ध्वनियां हैं जो स्वयं उच्चारित हो सकती हैं। व्यंजन वे ध्वनियां है जिनका उच्चारण स्वरों की सहायता के बिना नहीं हो सकता। पतंजलि ने स्वरों की सत्ता मानी है और व्यंजनों को उनके अधीनस्थ कार्यकर्त्ता माना है। इस प्राचीन परिभाषा से आधुनिक भाषा वैज्ञानिक सहमत नहीं हैं।

प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक स्वीट, ब्लॉख और टम्गेर आदि ने स्वर–व्यंजन की परिभाषा इस प्रकार दी है – स्वर एक ध्वनि है जिसके उच्चारण में हवा अबाध गति से मुख विवर से निकलती है । व्यंजन वह ध्वनि है जिसके उच्चारण में हवा अबाध गति से नहीं निकल पाती।

स्वर और व्यंजन की परिभाषा में विशेष अंतर यह स्पष्ट किया गया है कि स्वर ध्वनि में वायु मुखविवर में अबाध रहती है और व्यंजन ध्वनि में सबाध रहती है। दूसरा अंतर मुखरता का है। वैज्ञानिक परीक्षणों से सिद्ध हो चुका है कि व्यंजनों की अपेक्षा स्वर अधिक मुखर होते हैं। स्वर प्रायः अस्थान उच्चरित हैं और व्यंजन स्थान उच्चरित ही माने जाते हैं।

स्वर और व्यंजन के मध्य भी कुछ ध्वनियां मानी जाती है। इन्हें अर्धस्वर या अन्तस्थ कहा जाता है। अन्तस्थ का तात्पर्य है कि ये ध्वनियां न तो स्वर की तरह पूर्णतया अवरोध रहित हैं और न व्यंजन की तरह पूर्णतया अवरोधयुक्त। ये ध्वनियां हैं –'य' और 'व' और 'ल' को भी अधिक मुखरता के कारण स्वरों के समीप माना जाता है।

स्वर और व्यंजन ध्वनियों में बिल्कुल दो टूक स्पष्ट भेद न रहने पर भी परम्परागत रूप में और व्यावहारिक दृष्टि से ध्वनियों का वर्गीकरण स्वर, व्यंजन व अंतस्थ में उपयोगी माना जाता है। वैदिक ध्वनियों में 13 स्वर थे। संस्कृत में भी 13 हैं। हिन्दी में 10 मूल स्वर हैं – अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ।

स्वर स्वनों का वर्गीकरण :

स्वर ध्वनियों के उच्चारण में निःश्वास बिना अवरोध के मुखविवर से बाहर आता है। स्वरों के उच्चारण में भी जीभ सक्रिय तो रहती है किन्तु वह स्थानों का स्पर्श नहीं करती। उसका झुकाव स्थान विशेष की ओर होता है। इसी आधार पर स्वरों का स्थान निर्धारित किया जाता है। अतः स्वरों का वर्गीकरण स्थान और प्रयत्न के आधार पर माना जाता है।

क. स्थान का आधार :

स्थान के आधार पर स्वरों के निम्नलिखित आठ भेद किये जाते हैं :–

1. कंठ स्थान से उच्चरित कंठ्य स्वर –अ, आ (अः)
2. तालु स्थान से उच्चरित तालव्य स्वर – इ, ई
3. ओष्ठ से उच्चरित ओष्ठ्य स्वर – उ, ऊ

4. नासिका विवर से उच्चरित अनुस्वार – अं

5. मूर्धा से उच्चरित मूर्धन्य स्वर – ऋ

6. दाष्त से उच्चरित दन्त स्वर – ऌ

दन्त्य स्वरों का प्रयोग हिन्दी में बन्द हो गया है और मूर्धन्य स्वरों का प्रयोग कमतर।

7. कण्ठ+तालु से उच्चरित संयुक्त कंठतालव्य स्वर – ए, ऐ

8. कण्ठ और ओष्ठ से उच्चरित संयुक्त कण्ठोष्ठ्य स्वर – ओ, औ।

ख. प्रयत्न का आधार :

प्रयत्न के आधार पर स्वरों का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में किया जाता हैः–

1. जिह्वा की स्थिति का आधार :

संवृत : निःश्वास जब मुख विवर से बाहर निकलता है तो जिह्वा ऊपर उठकर निर्गम मार्ग को अत्यंत संकीर्ण, अर्थात् बंद–सा कर देती है। इस स्थिति को संवृत कहते हैं। इ, ई, उ, ऊ संवृत स्वर हैं।

अर्धसंवृत : जिह्वा संवृति स्थिति से थोड़ी नीचे होती है तो वह अर्धसंवृत स्थिति कहलाती है । अर्धसंवृत स्वर हैं –ए, ओ।

अर्ध विवृत : नीचे से ऊपर की ओर जिह्वा का एक तिहाई भाग उठा हुआ और मुख विवर अधखुला हो तो ऐसी स्थिति अर्धविवृत होती है। अर्धविवृत स्वर हैं – अ, ए, औ, ऑ, ॲ।

विवृत – जिह्वा अपने स्थान पर निश्चेष्ट पड़ी हो तो मुखविवर पूरा खुला रहेगा। ऐसी स्थिति को विवृत स्थिति कहा जाता है । विवृत स्वर – आ।

2. जिह्वा की सक्रियता का आधार : स्वरों के उच्चारण के समय जिह्वा का जो भाग सक्रिय रहता है इस आधार पर स्वरों का अग्र, स्वर, मध्य स्वर, पश्च स्वर के रूप में वर्गीकरण किया जाता है।

अग्र स्वर है ं – इ, ई, ए, ऐ

केन्द्रीयद्ध मध्य स्वर है – अ

पश्च स्वर हैं – आ, उ, ऊ, ओ, औ

3. ओष्ठों की स्थिति का आधार : निःश्वास का नियमन भीतर जिह्वा करती है और बाहर ओष्ठ। प्रत्येक स्वर के उच्चारण में ओष्ठो की स्थिति अनेक प्रकार की होती है। मुख्य हैं – वृत्ताकार और अवृत्ताकार। जिन स्वरों के उच्चारण में ओष्ठों की स्थिति वृत्ताकार होती है, वे हैं – उ, ऊ, ओ, औ। अवृत्ताकार या अवृत्तमुखी स्वर हैं – आ, ए। कुछ स्वरों में ओष्ठ–विस्तृत – ई, पूर्ण विस्तृत – ए, उदासीन – अ, स्वल्पवृत्ताकार – ऑ, एवं पूर्ण वृत्ताकार ऊ, वृत्ताकार – ऊ आदि भी होते हैं।

4. अलिजिह्वा की स्थिति का आधार : अलिजिह्वा की स्थिति के आधार पर स्वरों का उच्चारण दो प्रकार से हो सकता है :–

मौखिक – अलिजिह्वा सामान्य स्थिति में रहती है, निःश्वास मुख विवर से निकलता है तो सभी स्वर मौखिक कहलाते हैं। – अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ। 2. आधुनिक स्वर – अष, आष, इष, उष, ऊष, एष, ऐं, ओं, औं।

5. कण्ठ की मांसपेशियां का आधार : इस आधार पर स्वरों के दो भेद होते हैं –

शिथिल – जिन स्वरों के उच्चारण में वागांगों की मांसपेशियां शिथिल व तनावरहित होती हैं, उन्हें शिथिल स्वर कहा जाता है – अ, ई, उ।

दृढ – जिन स्वरों के उच्चारण में वागांगों की मांसपेशियां दृढ व तनावपूर्ण होती हैं, उन्हें दृढ स्वर कहा जाता है – आ, ई, ऊ।

6. कालमात्रा का आधार : स्वरों के उच्चारण में लगने वाली काल की मात्रा के आधार पर स्वरों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जाता हैं –

ह्रस्व – जिन स्वरों के उच्चारण में पलक झपकने जितना समय लगता है, उसे एक मात्रा माना जाता है। ह्रस्व स्वर हैं – अ, इ, उ

दीर्घ–जिन स्वरों के उच्चारण में कौए की काँव जितना समय लगता है – ह्रस्व से दुगुना अर्थात् दो मात्राओं का समय लगता है उन्हें दीर्घ स्वर कहा जाता है – आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ।

प्लुत – जिन स्वरों के उच्चारण में ह्रस्वर स्वर से तीन गुणा (मोर की ध्वनि जितना) समय लगता है उन्हें प्लुत स्वर कहा जाता है। प्लुत स्वर का संकेत चिह्न है– ऽ ।

ओऽम् में इसका प्रयोग होता है । या नाटकीय समबोधन में – रामऽऽऽम। हिन्दी में यह मात्रा अस्त हो चुकी है।

7. उच्चारण स्थान का आधार : कुछ स्वरों का उच्चारण एक ही स्थान के समीप से होता है कुछ का दो स्थानों के समीप से। इस आधार पर स्वरों के दो निम्नलिखित भेद हैं –

एकस्वरक : जिन स्वरों के उच्चारण में जीभ का झुकाव एक ही स्थान की ओर रहता है, वे एकस्वरक कहलाते हैं अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ।

सन्धि स्वर : जिन स्वरों के उच्चारण में जीभ का झुकाव एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर जाता है उन्हें संधि स्वर कहा जाता है – ऐ का उच्चारण अई के रूप में होता है । औ का उच्चारण अउ के रूप में होता है।

आ–व्यंजन स्वरों का वर्गीकरण :

व्यंजन के उच्चारण में वायु स्वरतंत्री या मुखमार्ग में कहीं पूर्णतया रोकी जाती है, या अत्यन्त संकुचित मार्ग से निकलती है, या मुख विवर की स्वर सीमा से हटती हुई जिह्वा के एक या दोनों ओर से निकलती है या स्वरतंत्री से ऊपर वाले किसी वाक्–अंग में कम्पन पैदा होता है। व्यंजन ध्वनियों को उच्चारण स्थान, प्रयत्न, प्राणत्व, स्वरतंत्रियों की स्थिति एवं संयुक्तता के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है।

उच्चारण स्थान के आधार पर व्यंजन ध्वनि :

काकल्य – इन ध्वनियों के उच्चारण में वायु स्वरयंत्र से घर्षण करती हुई निकलती है। इन्हें स्वरयंत्रमुखी भी कहा जाता है। हिन्दी में केवल ‘ह’ ध्वनि काकल्य है।

अलिजिह्वीय – जिह्वापश्च अलिजिह्वा के सम्पर्क में आकर वायु प्रवाह को अवरुद्ध करता है तब अलिजिह्वीय ध्वनियाॅ उत्पन्न होती हैं। अरबी–फ़ारसी से प्रभावित हिन्दी में प्रयुक्त क़, ख़, ग़ ध्वनियां अलिजिह्वीय हैं।

कण्ठ्य – इन ध्वनियों का उच्चारण स्थान कोमल तालु है। इनके उच्चारण में जिह्वापश्च कोमल तालु के सम्पर्क में वायु को अवरुद्ध करता है तब उच्चरित ध्वनियां हिन्दी में कण्ठ्य कहलाती हैं। क, ख, ग, घ, ड.।

मूर्धन्य – जिन ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वा नोक उलटकर मूर्धा का स्पर्श कर वायु प्रवाह को अवरुद्ध करती है इन्हें मूर्धन्य कहा जाता है – ट् वर्ग, ष्, ड़ ढ़।

तालव्य – जिन ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वा कठोर तालु को स्पर्श करके वायु को अवरुद्ध करती है। तब इन ध्वनियों को तालव्य ध्वनियाँ कहा जाता है । च् वर्गीय तथा श् य् का उच्चारण स्थान भी यही है।

वर्त्सय – इन ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वानोक वर्त्स से समबद्ध होकर वायु को अवरुद्ध करती है। अतः वर्त्स स्थान से उच्चरित ध्वनियां वत्सर्य कहलाती हैं । न्, र, ल्, स् हिन्दी के वर्त्सय व्यंजन हैं।

दन्त्य – जिह्वानोक द्वारा ऊपरी दंतपंक्ति के सामने वाले दांतों का भीतर से स्पर्श किया जाता है। दंत स्थान पर वायु अवरुद्ध होने के कारण इन्हें दंत्य ध्वनिया॑ कहा जाता है – ये हैं त्, थ, द्, ध।

दन्तोष्ठ्य – ऐस ध्वनिया॑ जिनका उच्चारण ऊपर के दाष्त और नीचे के ओंठ की सहायता से होता है, दंतोष्ठ्य ध्वनियाष कहलाती हैं – 'व्' और फ्।

ओष्ठ्य – जिन ध्वनियों के उच्चारण में निचला होंठ ऊपर के होंठ से सम्पर्क करके वायु को रोकता है अतः ओष्ठ स्थान से उच्चारित होने के कारण ये व्यंजन ओष्ठ्य कहलाते हैं – प्, फ, ब्, भ्, म्।

प्रयत्न का आधार : प्रयत्न के दो भेद हैं – आभ्यंतर और बाह्य । आभ्यंतर प्रयत्न के आधार पर व्यंजनों के निम्नलिखित आठ भेद हैं –

स्पर्श – स्पर्श उन व्यंजनों को कहते हैं जिनके उच्चारण में वाग्यंत्र के दो अवयवों का परस्पर स्पर्श होता है, स्पर्श के द्वारा वायु अवरुद्ध होती है, और फिर स्फोट होता है। अतः इन्हें स्फोट भी कहा जाता है। स्पर्श या स्फोट व्यंजन हैं – क वर्ग – क, ख, ग, घ, । ट वर्ग – ट्, ठ, ड्, ढ्। त वर्ग – त्, थ, द्, ध्। प वर्ग – प्, फ, ब, भ्।

संघर्षी – इन ध्वनियों के उच्चारण में वायु का न तो स्पर्श ध्वनियों के समान पूर्ण अवरोध होता है नस्वरों के समान निर्बाध प्रवाह। दो वाक् अवयवों के निकटतम आ जाने

से वायु को घर्षण करके निकलना पड.ता है। अतः इन्हें संघर्षी कहा जाता है। ये हैं – विसर्ग, ह्, ख, ग, स, श्, ष्। फ़, व, ज।

स्पर्श संघर्षी – इन ध्वनियों का आरम्भ स्पर्श से होता है और उन्मोचन या स्फोट एकदम न होकर धीरे–धीरे होता है। अतः वायु को संघर्ष करना पडता है। च वर्गीय व्यंजन हैं – च् छ, ज्, ढ।

नासिक्य – इनके उच्चारण में केवल नासिका विवर से वायु का निर्गमन होता है अतः इन्हें नासिक्य कहा जाता है। वर्गों के पंचम वर्ण – ड, ण, न्, म्।

पर्श्विक – इन ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वा की नोक वर्त्स का स्पर्श करती है और निःश्वास जिह्वा के दोनों पार्श्वों से निकलता है अतः इसे पर्श्विक व्यंजन ध्वनि कहा जाता है।

लुंठित – लुंठित उन ध्वनियों को कहते हैं जिनके उच्चारण में जिह्वानोक मुडकर वर्त्स को शीघ्रता से छूती है और फिर लुढक जाती है। जिह्वा के लुंठन अर्थात् लुढकने के कारण इसे लुंठित कहा जाता है । 'र'।

उत्क्षिप्त – जिह्वा की नोक को उलट कर तालु को झटके से मारकर उसे फिर सीधा कर लेने से जो ध्वनि उत्पन्न होती है उसे उत्क्षिप्त कहते हैं। ड़, ढ़ (ड, ढ के महाप्राण रूप)।

अर्धस्वर – ये स्वर और व्यंजन की बीच की स्थिति में हैं। इनका झुकाव व्यंजन की ओर अधिक है, स्वरों की तुलना में व्यंजन की भांति कम मुखर हैं। अर्धस्वर – य, व हैं। इनके उच्चारण में क्रम से उच्चारित अवयव पहले इ या उ की स्थिति में आते हैं। प्राणत्व और स्वरतंत्रियों की स्थिति के आधार पर भी व्यंजनों का वर्गीकरण किया जाता है। यह दोनों बाह्य प्रयत्न के अन्तर्गत आते हैं।

प्राणत्व के आधार पर : प्राण अर्थात् वायु के कम या अधिक प्रवाह के आधार पर स्पर्श व्यंजनों के दो प्रकार होते हैं –

अल्पप्राण – जब वायु प्रवाह अल्प अर्थात् कम होता है उसे अल्पप्राण व्यंजन कहते हैं। अल्पप्राण के उच्चारण मे मांसपेशियां शिथिल रहती हैं । अल्पप्राण में स्फोट भी अल्प ही होता है। प्रत्येक वर्ग के 1–3–5 व्यंजन तथा य, र, ल, व अल्पप्राण व्यंजन हैं।

महाप्राण – महाप्राण ध्वनियों के उच्चारण में वायु प्रवाह अधिक होता है । मांसपेशियां दृढ होती हैं। स्फोट भी अधिक स्पष्ट होता है। प्रत्येक वर्ग के 2–4 व्यंजन, न्ह, म्ह, ल्ह, ढ़।

स्वरतंत्रियों की स्थिति : स्वरतंत्रियों में कम्पन या नाद के आधार पर व्यंजनों को दो वर्गों में बांटा जाता है–

अघोष – इन ध्वनियों के उच्चारण में स्वरतंत्रियों में कम्पन नहीं होता । स्वरतंत्रियां खुली रहती हैं और वायु बिना अवरोध के बाहर आती है।

संघोष या घोष – इन ध्वनियों के उच्चारण में स्वरतंत्रियों में कंपन्न या नाद होता है। स्वरतंत्रियां समीप आती हैं और वायुप्रवाह के लिए मार्ग अवरुद्ध होने के कारण स्वरतंत्रियों में कम्पन होता है। प्रत्येक वर्ग का तृतीय, चतुर्थ व पंचम व्यंजन तथा य्, र, ल, व्, ह घोष हैं।

संयुक्त व्यंजन :

एक या एक से अधिक व्यंजन और स्वर मिलते हैं तो वे संयुक्त व्यंजन कहलाते हैं। जैसे – क्+ष्+अ त्र क्ष, त् + र + अ त्र त्र, ज् + त्र + अ त्र ज्ञ।

1.2.2 शब्द :

ध्वनि की अवाक्यांशपरक स्वतंत्र लघुतम इकाई शब्द है। संस्कृत मे कान के लिए शब्दग्रह शब्द का प्रयोग हुआ है। इसमें शब्द का अर्थ ध्वनि है। शब्दभेदी बाण में भी शब्द का अर्थ ध्वनि है। इसका व्याकरण से कोई सम्बन्ध नहीं है। शब्द का दूसरा अर्थ वचन या कथन है । जब यह कहा जाता है कि उसने मुझे शब्द दिये थे या उसके शब्द हैं। इसी प्रकार संतों के वाक्य या पद भी शब्द या सबद कहे जाते हैं।

पूर्ण अर्थ की प्रतीति कराने वाले शब्दों के समूह को वाक्य कहते हैं।

व्याकरण को ही शब्दानुशासन भी कहते हैं। इन दो वाक्यों में शब्द का प्रयोग पद के लिए हुआ है। यहां अभिप्राय उन व्याकरणिक इकाइयों से है, जो वाक्य की घटक होती हैं और कर्त्ता, कर्म, किया का व्याकरणिक कार्य करती हैं। एक भाषिक इकाई के सन्दर्भ में शब्द को

बहुआयामी कार्य के रूप में देखा जाता है। एक ओर परम्परागत व्याकरणिक सिद्धान्त शब्द को सर्वोपरि इकाई स्वीकार करता है तो दूसरी ओर आधुनिक भाषाविज्ञान इसे द्विअर्थक और विरोधाभासी स्थितियों में रखकर देखता है।

यह भी महत्वपूर्ण तथ्य है कि शब्द कोष में प्रयुक्त शब्द तथा वाक्य में प्रयुक्त शब्द प्रकार्य में धरातल पर सर्वथा भिन्न हैं। इसलिए रूप वाक्यात्मक गुणों से युक्त शब्दरूप को पद कहते हैं। यदि अभिव्यक्ति के सन्दर्भ में देखा जाए तो कहा जा सकता है कि शब्द किसी भाषा की पूर्व संरचित इकाई है और पद संरचना प्रकिया के उपरांत प्रजनित इकाई है। भाषा की इकाई के रूप में शब्द को सबसे पहले भाषिक प्रतीक के रूप में देखा जाता है और बाद में उसे कथ्य के सन्दर्भ में देखा जाता है।

शब्द को कोशविज्ञान की इकार्ठ माना जाता है जिसके आधार पर कोशीय शब्द की संकल्पना उभरती है।

दूसरी धारणा शब्द को व्याकरणिक इकाई के रूप में स्वीकार करती है। इसी के आधार पर वाक्यात्मक एवं व्याकरणिक शब्दों की व्याख्या होती है।

तीसरी धारणा शब्द को अभिव्यक्ति की इकाई के रूप में मान्यता देती है। इसके आधार पर स्वनप्रकियात्मक एवं वर्ण विन्यासात्मक शब्द विवेचित किये जाते हैं।

1.2.3 पद :

भाषा विज्ञान के अध्ययन में वाक्य पहली इकाई है और रूप दूसरी महत्वपूर्ण इकाई है। भाषा को वाक्यों में खण्डित किया जाता है। वाक्य के खण्ड शब्द होते हैं और शब्द की इकाई ध्वनियाँ। वस्तुतः कोशगत सामान्य शब्द और वाक्य में प्रस्तुत शब्द एक नहीं है। इस प्रकार शब्द के दो रूप हैं, एक मूल रूप होता है। वाक्य में प्रयुक्त शब्द ही 'पद' या 'रूप' कहलाता है। संस्कृत में शब्द के मूल रूप को प्रकृति या प्रतिपादिक कहते हैं और सम्बन्ध स्थापन के लिए जोडे जाने वाले तत्त्व को प्रत्यय। 'महाभाष्यकार' पतंजलि ने लिखा है कि वाक्य में न तो केवल प्रकृति का प्रयोग हो सकता है न केवल प्रत्यय का, दोनों के मिलने से जो बनता है वही पद या रूप है।

चीनी आदि आयोगात्मक भाषाओं में पद और शब्द की अलग सत्ता नहीं है । उसमें स्थानभेद से अर्थभेद हो जाता है। मूल शब्द और वाक्य में प्रयुक्त रूपों का अन्तर हिन्दी में देखा

जा सकता है – जैसे घोड़ा घास खाना। इसमें वाक्य के लिए जरूरी कर्त्ता, कर्म, क्रिया विद्यमान है लेकिन इस शब्द समूह का कोई अर्थ नहीं है। घोड़े ने घास को खाया बनाने से ही अर्थ प्रतिपादित किया जा सकता है। ए, ने, को, या आदि विभक्ति या प्रत्यय कहलाते हैं।

वस्तुतः ये शब्दों के व्याकरणिक रूप हैं जो वाक्य की आवश्यकतानुसार अपना रूप निर्मित कर लेते हैं। इस प्रकार अकेले मूल शब्द में वाक्य में प्रयुक्त होने की योग्यता नहीं है। भाषा विज्ञान में मूल शब्द मे अर्थ निहित रहता है। अतः इसे अर्थतत्त्व कहा जाता है। घोड़ा, घास, खाना अर्थ तत्त्व हैं। ए, ने, को, या वाक्य में पदों के परस्पर सम्बध को व्यक्त कर रहे हैं। अतः इन्हें सम्बन्ध तत्त्व कहा जाता है। सम्बन्ध तत्त्व भाषा की वह प्रक्रिया है जो मूल शब्द में विद्यमान अर्थ को प्रकाशित कर देती है। इस प्रकार रूप एक व्याकरणात्मक संरचना है।

रूप तत्त्व की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं :

1. रूप तत्त्व भाषा गठन की लघुतम सार्थक इकाई है। इसका विश्लेषण करने से अर्थ नष्ट हो जाता है और वह निरर्थक स्वन मात्र रह जाता है , जैसे घोड़ा घो-ड़ा।

2. रूप तत्त्व शब्द का पर्याय या स्थानापन्न नहीं हो सकता। खाना शब्द है और खाता रूप है।

3. कुछ रूप रचनाएं ऐसी होती हैं जिनमें रूप तत्त्वों की सत्ता ही आवश्यक नहीं होती अपितु उसका सुनिश्चित और व्यवस्थित क्रम भी आवश्यक रहता है जिसके अभाव में अर्थ नष्ट हो जाता है। मनुष्यता-तामनुष्य, लड़कपन-पनलड़क।

4. धातु और प्रत्ययों की सहायता से रूप निर्माण प्रक्रिया चलती है – गम् – गमन –आगमन

हिन्दी संज्ञा की रूप रचना :

लिंग, वचन, कारक व्यवस्था के सन्दर्भ में – रूप की दृष्टि से हिन्दी शब्द दो प्रकार के हैं – विकारी और अविकारी। विकारी हैं अ, संज्ञा, आ, सर्वनाम्, इ, विशेषण और ई क्रिया। अविकारी हैं –सम्बन्ध सूचक, समुच्चय बोधक, विस्मयादि बोधक, क्रिया विशेषण।

पदबन्ध :

आधुनिक भाषा वैज्ञानिकों में चॉम्स्की ने ही वाक्य विश्लेषण के सन्दर्भ में सर्वप्रथम इसका महत्व बताया। पदबन्ध पद से बडी और वाक्यांश से छोटी इकाई है। यह एक नई व्याकरणिक संकल्पना है। यह आधुनिक भाषाओं के व्याकरण को समझने के लिए अत्यंत उपयोगी है।

वाक्य में व्याकरण और अर्थ की दृष्टि से परस्पर सम्बन्ध रखने वाले एकाधिक पदों का समूह पदबन्ध है जो विस्तारबोध में सहायता करता है । ये परस्पर सम्बद्ध होते हैं और अर्थबोधक भी परन्तु पूर्ण अभिव्यक्ति करने में समर्थ नहीं होते। पदबन्ध के प्रकार्य के आधार पर डॉ0 भोलानाथ तिवारी ने एक से अधिक पदों के उस वाक्योतर या उपवाक्योतर अंश को पदबन्ध कहा है जो वाक्य में कोई एक व्याकरणिक कार्य करता हो। अनिल विद्यालंकार ने भी 'भाषा विज्ञान अंक' में पदबन्ध की परिभाषा इस प्रकार दी है : 'ऐसे पदों के समूह को जो व्याकरणिक रूप में परस्पर संयुक्त हो और वाक्य या किसी पदबन्ध में सम्मिलित रूप से एक ही व्याकरणिक कार्य कर रहे हों, पदबन्ध कहते हैं।'

डॉ0 हरदेव बाहरी ने पदबन्ध की निम्नलिखित परिभाषा दी है – 'वाक्य के उस भाग को जिसमें एक से अधिक पद परस्पर सम्बद्ध होकर अर्थ तो देते हैं किंतु पूरा अर्थ नहीं देते, पदबन्ध कहते हैं।'

निष्कर्ष रूप में पदबन्ध की तीन विशेषताएॅ स्पष्ट हैं :

1. पदबन्ध में कम से कम दो पद होते हैं।
2. ये परस्पर सम्बद्ध होकर एक इकाई का कार्य करते हैं।
3. एक पदबन्ध एक ही व्याकरणिक कार्य करता है।

पदबन्ध किस पद विभाग के अन्तर्गत आता है, इसके आधार पर पदबन्ध के निम्नलिखित चार प्रकार हैं :

क. संज्ञा पदबन्ध

ख. सर्वनाम पदबन्ध

ग. विशेषण पदबन्ध

घ. अव्यय पदबन्ध।

संज्ञा पदबन्ध : जो पदबन्ध वाक्य में संज्ञा का व्याकरणिक कार्य करता है उसे संज्ञा पदबन्ध कहते हैं। य कार्य कर्त्ता के रूप में भी हो सकता है और कर्म के रूप में भी। इसकी प्रकृति यह है कि इसमें अंतिम अंश अर्थ की दृष्टि से प्रमुख होता है। इसके अंग प्रायः इससे पूर्व आते हैं, इन्हें विस्तारक भी कहा जाता है।

कर्त्ता :

सबसे तेज दौड़ने वाला छात्र इनाम पाएगा।

इस पेड़ के अमरूद मीठे होते हैं।

कर्म :

रमेश इस विषय की सर्वोत्तम पुस्तक पढ़ रहा है।

सर्वनाम पदबन्ध : वाक्य में सर्वनाम का कार्य करनेवाला पदबन्ध सर्वनाम कहलाता है।

1. औरों के आगे दुम हिलानेवाले तुम आज यहाँ शेर बन रहे हो।
2. सबसे बढ़िया पढ़ाने वाला पढ़ रहा है।

विशेषण पदबन्ध : वाक्य में विशेषण का व्याकरणिक कार्य करनेवाला पदबन्ध विशेषण पदबन्ध होगा। इसका प्रयोग अधिकतर संज्ञा के पूर्व संज्ञा पदबन्धों की रचना में होता है। विशेषण पदबन्ध का स्वतंत्र प्रयोग भी वाक्य के पूरक के रूप में मिलता है।

1. यह मकान इस गली के सभी मकानों से बड़ा है।
2. उसकी बातें दिल को चोट पहुंचाने वाली होती हैं। दिल को चोट पहुँचाने वाली बातें मत करो।

अव्यय पदबन्ध : वाक्य में अव्यय या अव्यय विस्तार का कार्य करने वाला पदबन्ध अव्यय पदबन्ध कहलाता है। इसका प्रयोग हिन्दी में अनेक रूपों में और सर्वाधिक होता है। यह किया विशेषण के रूप में आता है – वह बहुत ही धीरे–धीरे लिखता है। कभी यह पूर्वकालिक किया के रूप में आता है – मोहन कुछ थोड़ा सा खा–पीकर स्कूल गया है। इन चार भेदों के अतिरिक्त किया

पदबन्ध और किया विशेषण पदबंध की स्थिति अनिल विद्यालंकार ने स्वीकार नहीं की है। उनका कहना है कि वाक्य में किया सदैव पद के रूप में रही है। पदबन्ध के रूप में कभी नहीं।

डॉ0 शिवेन्द्रकिशोर वर्मा ने हिन्दी किया–पदबन्ध स्वरुप और कार्य शोध निबन्ध में किया पदबंध का विस्तृत विवेचन विश्लेषण किया है। इसी प्रकार डॉ0 कैलाशचंद अग्रवाल ने भी किया विशेषण पदबन्ध से अवगत कराया है। किया पदबन्ध – खाना खाया जा सकता है । किया विशेषण पदबन्ध – वह मेरे मकान के आगे से निकल गया।

अनिल विद्यालंकार ने पदबन्ध रचना के संदर्भ में आठ नियम प्रतिपादित किये हैं। उनका विचार है कि पद और पदबन्ध की संकल्पना से आधुनिक भारतीय भाषाओं का और अंग्रेजी का भी सरल व वैज्ञानिक व्याकरण तैयार किया जा सकता है। कुछ भाषा विज्ञानियों ने पदकम और अव्यय को भी वाक्य रचना का मूल आधार माना है।

पदक्रम :

पदक्रम का अर्थ है वाक्य में पदों के विन्यास का कम। हर भाषा की अपनी निश्चित पदक्रम रचना होती है। हिन्दी में – मैं पत्र लिखता हूं में पदक्रम कर्त्ता, कर्म, किया है। संस्कृत, ग्रीक, लैटिन, अरबी आदि भाषाएं परिवर्तनीय पदक्रमवाली भाषाएं हैं। इनमें पदों के साथ विभक्तिया संयुक्त होती है। अतः इनमें पदक्रम में परिवर्तन होने पर भी अर्थ परिवर्तन नहीं होता 'रामः रावणंन्ति' या 'रावण हन्ति रामः' अर्थ एक ही है।

अंग्रेजी, हिन्दी, चीनी अपरिवर्तनीय पदक्रमवाली भाषाएं हैं। इनका पदक्रम बदलने से अर्थ परिवर्तन हो जाता है। इसका कारण है इन भाषाओं में विभक्तियां पद से पृथक होती हैं। राम ने रावण को मारा, वाक्य में पद परिवर्तन करने से अर्थ में परिवर्तन हो जाएगा – रावण ने राम को मारा।

हिदी वाक्य रचना की दृष्टि से पदक्रम की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं –

1. हिन्दी वाक्य रचना में कर्त्ता पहले और क्रिया बाद में होती है – मैंने पत्र लिखा । बल देने की दृष्टि से वाक्य पदक्रम को बदला भी जाता है। लिखा मैंने पत्र।
2. कर्त्ता का विस्तार कर्त्ता से पहले आता है – दशरथ का बेटा राम वन गया।

3. कर्त्ता और क्रिया के बीच में कर्म का पदक्रम होता है। राम ने पत्र लिखा। दो कर्म की अवस्था में गौण कर्म पहले और मुख्य कर्म बाद में आता है – राम ने सुधा को पत्र लिखा। बलाघात के कारण कर्म का कम पहले भी हो सकता है । पत्र लिखा तुमने ?

4. विशेषण पद का क्रम विशेष्य से पूर्व होता है – अकर्मण्य छात्र अनुत्तीर्ण हो गया। पूरक विशेषण का क्रम विशेष्य के बाद आता है –मोहन स्वस्थ है । संख्यावाचक विशेषण का कम पहले आता है – एक मूर्ख व्यक्ति बोलता बहुत है। बलाघात की अवस्था में वाक्य के अन्त में भी विशेषण का क्रम होता है – है वह सुन्दर।

5. क्रिया विशेषण का क्रम प्रायः कर्त्ता और क्रिया के बीच में होता है । मुन्ना धीरे–धीरे चल रहा है । बल देने के लिए कालबोधक क्रिया विशेषण कर्त्ता के पहले भी आता है । अब मैं जा रहा हूं। प्रायः क्रिया विशेषण कर्त्ता और कर्म के मध्य आता है – मैं धीरे–धीरे उसे पढ़ा रहा हूं।

6. सर्वनाम पद का क्रम प्रायः संज्ञान के स्थान पर होता है। ध्यातव्य है कि सर्वनाम वाक्य में सम्बोधन के रूप मं नहीं आता। यह भी कि विशेषण सर्वनाम के पूर्व नहीं आता – 'ऐ वह, नहीं, 'अच्छा वह भी नहीं'। 'वह अच्छा है' का पदक्रम उचित है। बोलचाल में बल देने के लिए अच्छा वह है मगर 'मूर्ख तुम हो', पदक्रम हो सकता है।

7. हिन्दी वाक्य रचना में क्रिया पद का क्रम प्रायः अन्त में ही होता है। 'मैं चलता हूं' । बलाघात के कारण आरम्भ में भी उसका क्रम हो सकता है। 'चलता हूं मैं'। प्रश्नवाचक वाक्य में क्रिया का क्रम आरम्भ में हो सकता है। 'गया भी वह' ? आज्ञार्थक वाक्य में भी बल के कारण क्रिया पद का क्रम आरम्भ में होता है। 'गया भी वह' ? आज्ञार्थक वाक्य में भी बल के कारण क्रिया पद का क्रम आरम्भ में होता है। 'जाओ तुम'। चाहिए क्रिया की दशा भी यही है – 'चाहिए तो बहुत कुछ'।

8. प्रतिशेषण अर्थात् विशेषण का भी विशेषण तथा प्र–क्रिया विशेषण अर्थात् क्रिया विशेषण का विशेषण। इनका पदक्रम विशेषण से पूर्व होता है।

9. प्रश्नवाचक सर्वनाम और क्रिया विशेषण के पदक्रम में विशेष सावधानी की आवश्यकता होती है, वह विचारणीय है।

प्रारम्भ में – कौन आ रहा है ?

मध्य में क्रिया के पूर्व – वहां कौन आ रहा है ?

क्रिया के बीच – वहां आ कौन आ रहा है ?

अंत में भी – वहां आता है कौन ?

10. पूर्वकालिक क्रिया पद का क्रम प्रायः मुख्य क्रिया से पूर्व होता है – मैं नहाकर आया हूं। बल देने के लिए प्रारम्भ में भी इसका क्रम हो सकता है – नहाकर आया हूं मैं। यदि वाक्य रचना में कर्म हो तो पूर्वकालिक क्रिया पद का क्रम उससे पूर्व होता है – मैं नहाकर पूजा करता हूँ। बल देने के लिए इस पदक्रम को भी उलट दिया जाता है – नहाकर मैं पूजा करता हूं।

11. सम्बोधन का क्रम वाक्य के प्रारम्भ में होता है, मित्र ! आओ बैठो । बल के लिए क्रम परिवर्तन – बैठो मित्र।

12. करण कारक का क्रम वाक्य में प्रायः कर्त्ता कर्म के बीच में आता है – मैंने पेन से पत्र लिखा। बलाघात के कारण इस क्रम में परिवर्तन संभव है – पेन से मैंने पत्र लिखा।

13. हिन्दी वाक्य रचना में सम्प्रदान कारक का क्रम के अनुरूप कर्त्ता के बाद तथा करण से पहले हो सकता है– शीला बहन के लिए डाक से साड़ी भेज रही है। कभी करण के बाद भी – शीला डाक से बहन के लिए साड़ी भेज रही है।

14. हिन्दी वाक्य रचना में अपादान कारक का क्रम कर्त्ता और क्रिया के मध्य आता है – लड़की छत से गिरी। कभी कर्त्ता और कर्म के बीच भी – उसने अलमारी से कपड़े निकाले। बल के लिए इस क्रम में परिवर्तन हो सकता है।

15. हिन्दी पदक्रम में अधिकरण कारक का क्रम वाक्य के बीच किया से पूर्व होता है – डाकू घोड़े पर हैं। बल के लिए – घोडे पर डाकू हैं।

16. न का प्रयोग यदि अंत में होता है तो वह ग्राहक स्वरुप 'आप आइएगा न'।

17. हिन्दी वाक्य रचना में निषेधात्मक अव्यय पद का क्रम क्रिया से पहले होता है – मैं नहीं जाऊंगा। बल के के कारण आरम्भ में भी हो सकता है – नहीं जाऊंगा मैं।

18. समुच्चय बोधक अव्यय का कम – दो पदों या पदबन्धों के मध्य होता है – राम, सीता, लक्ष्मण और भरत आ रहे हैं। थानेदार ने चोर को पकड़ा, मारा और हवालात में बंद कर दिया।

19. ही, भी, तो, तक, भर आदि अव्ययों का क्रम जिस पद पर बल देना हो उसी के बाद होता है - राम ही, मैं भी, व तो, भाई तक नहीं आया, वह आ भर जाए।

20. केवल मात्र साथ-साथ नहीं आते, दोनों में से एक का ही प्रयोग उचित है। केवल का क्रम वाक्यारम्भ में होता है - केवल मैं जाऊंगा। 'मात्र' का प्रयोग पहले भी हो सकता है, बाद में भी। सौ रूपये मात्र चाहिए या मात्र सौ रूपये चाहिए

21. विस्मयादि बोधक अव्ययों का क्रम वाक्यारम्भ में ही होता है - अरे ! तुम क्या कर रहे हो। हाय ! तुमने यह क्या किया।

22. वाक्य के पदक्रम में तर्कसंगत समीपता अनिवार्य है, अन्यथा अनर्थ की सम्भावना रहती है - यहां खालिस गाय का दूध मिलता है यहां रेडिमेड बच्चों के कपड़े मिलते हैं । वह गर्म भैंस का दूध पीता है । मुझे एक फूलों की माला चाहिए। यह प्राचीन रेवड़ी की दुकान है।

शब्द-अर्थ :

1. **वाचक-वाच्य सम्बन्ध :** प्रत्येक शब्द का अर्थ से एक प्रकार का सम्बन्ध रहता है - वाचक-वाच्य सम्बन्ध। वाच्य से तात्पर्य है - वस्तु विचार, भाव, जैसे पुस्तक, कांति, सेवा। वाचक का अभिप्राय है वस्तु, विचार, भाव को जिस शब्द द्वारा प्रकट क्रिया जाए वह शब्द उसका वाचक कहलाता है । वाच्य अमूर्त होता है और वाचक शब्द मूर्त। यह सम्बन्ध भाषा प्रयोक्ता के अनुभव और लोक द्वारा पूर्णतः अवलम्बित होता है। हिन्दी में 'गुलाब' द्वारा सांकेतिक अर्थ को अंग्रेजी में रोज़ द्वारा स्थापित किया जाता है।

2. **बिम्ब-प्रतिबिम्ब सम्बन्ध :** शब्द और अर्थ, बिम्ब-प्रतिबिम्ब की तरह निर्मित रहते हैं। आसमान में चांद देखने से हमारे मन पर उसका बिम्ब अंकित हो जाता है। अतः जब हम चन्द्रमा शब्द सुनते या पढते हैं तब तत्क्षण चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब हमारे मन में उदित हो जाता है। इसी को स्मृति पुनरूत्पादन सम्बन्ध भी कहा जाता है।

3. **अन्योन्याश्रय सम्बन्ध :** शब्द और अर्थ परस्पर अवलम्बित रहते हैं। सार्थक ध्वनियां ही भाषा का निर्माण करती हैं। अर्थ के अभाव में शब्दों का जीवन नहीं रह सकता। इसी प्रकार शब्द के बिना अर्थ भी ध्वनित नहीं हो सकता। प्रकाश्य को प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक की अपेक्षा

होती है। शब्द ही वह प्रकाशक है जो प्रकाश्य–अर्थ को प्रकाशित करता है। काव्यादर्श में आचार्य दण्डी ने लिखा है कि ''शब्द की ज्योति संसार में न होती तो सारा संसार अंधकारमय हो जाता।''

शब्द और अर्थ एकाकार होकर अपना कार्य करते हैं। क्योंकि भर्तृहरि के अनुसार ''तात्विक दृष्टि से दोनों एक ही हैं। भाषा विषयक चिंतन मे प्राचीन काल से ही शब्द और अर्थ में सम्बन्ध पर विचार होता रहा है। गाय शब्द से गाय प्राणी का ही बोध क्यों होता है, अश्व का क्यों नहीं ? इसका उत्तर है कि प्रत्येक सार्थक शब्द किसी अर्थ (वस्तु) विशेष का ही बोध कराता है, आम का नहीं। कौन–सा शब्द किस अर्थ का बोध कराता है, यह संकेत ग्रह पर निर्भर करता है।

प्रत्येक भाषा में कोई शब्द किसी अर्थ को संकेतित करता है। प्रत्येक भाषा में इस शब्द का यह अर्थ होगा, यह संकेतित है। यह संकेत सामान्यतः यादृच्छिक या स्वेच्छाजन्य होता है। प्रारम्भ में कोई व्यक्ति किसी ध्वनि या शब्द का विशेष अर्थ में प्रयोग करता है। कालान्तर में वह शब्द उस समाज या भाषा में प्रचलित हो जाता है वही उस शब्द का सांकेतिक अर्थ बन जाता है। एक ही शब्द या ध्वनि–समूह विभिन्न भाषाओं में विभिन्न अर्थ प्रकट करता है। अंग्रेजी का नी (घुटना) संस्कृत के अनुसार नी यानी ले जाना होगा। अतः यह सिद्ध है कि एक ध्वनि का एक अर्थ नहीं है।

किसी शब्द से किसी अर्थ का सम्बन्ध स्थापित करना पारिभाषिक शब्दावली में संकेतग्रह है। किसी ध्वनि समूह का किसी वस्तु से सम्बन्ध स्थापन संकेतग्रह है। यह संकेतग्रह लोक व्यवहार एवं अनुभव से होता है। समाज ने विभिन्न शब्दों को विभिन्न अर्थों के प्रतीक रूप में स्वीकार किया।

मनोविज्ञान की दृष्टि से मनुष्य के मस्तिष्क पर प्रत्येक शब्द का बिम्ब (मनश्चित्र) अंकित होता है। यह बिम्ब स्थायी रूप में मस्तिष्क में बना रहता है। 'गाय' देखने या सुनने पर 'गाय' का बिम्ब अंकित होता है। वस्तु का बिम्ब मन पर अंकित होता है। साथ ही उसका वाचक शब्द भी संस्कार रूप में अंकित हो जाता है।

दार्शनिक दृष्टि से ज्ञात होता है कि शब्द और अर्थ अन्योन्याश्रित हैं। शब्द शरीर है, अर्थ आत्मा है। दोनों को मिलाकर ही सार्थक शब्द बनता है। अर्थ के बिना शब्द शरीर निष्प्राण है। शब्द के बिना अर्थ प्रयोग के अयोग्य है। शब्द मूर्त रूप देता है और अर्थ चेतनता देता है।

अतः सार्थक प्रयोग के लिए दोनों का समन्वित रूप में उपस्थित होना अनिवार्य है। अतः वाक्यपद्रीप में शब्द और अर्थ को एक तत्त्व के ही दो अभिन्न अंग माना गया है। उन्होंने शब्द और अर्थ का वाचक वाच्य सम्बन्ध माना है । वे अभिधा के अन्तर्गत ही लक्ष्णा और व्यंजना को भी शामिल मानते हैं।

साहित्यिक दृष्टि से कालिदास ने अर्धनारीश्वर शिव-पार्वती के समान शब्दार्थ को अभिन्न माना है। तुलसीदास ने भी 'गिरा अरथ जल वीची सम' कहकर शब्द और अर्थ के शाश्वत अभिन्न सम्बन्ध को अभिव्यक्त किया है।

अर्थबोध के साधन :

आचार्य जगदीश ने शब्द शक्ति प्रकाशिका में अर्थ प्रतीति, अर्थबोध या संकेत ग्रह के आठ साधन माने हैं। - व्याकरण, उपमान, कोश, आप्तवाक्य, व्यवहार, वाक्यशेष (प्रकरण), विवृति (व्याख्या) प्रसिद्ध पद का सान्निध्य।

1. **व्याकरण** : भाषा के व्यापक ज्ञान और अर्थबोध के लिए व्याकरण महत्वपूर्ण साधन है। व्याकरण से ही प्रकृति और प्रत्यय, शब्द रूप, समास, कृत और तद्धित स्त्रीलिंग प्रत्ययों आदि का बोध होता है। कर्त्ता-कृ (करना), तृ (ता प्रत्यय वाला अर्थ) अर्थात् करने वाला अर्थबोध हुआ। कियावाची शब्द के काल के अनुसार कितने भेद होंगे तथा पुरुष वचन आदि के भेद व्याकरण से ही ज्ञात होते हैं। कोश से भी प्रत्येक शब्द ओर उसके रूपों का अर्थबोध नहीं हो सकता। 'वासुदेव' और 'दाशरथि' का अर्थ कृष्ण और राम व्याकरण से ही ज्ञात होगा।

2. **उपमान** : उपमान का अर्थ सादृश्य है । उपमान में दृष्ट अथवा अनुभूत वस्तु के आधार पर ही अदृष्ट अथवा अननुभूत वस्तु का ज्ञान होता है। उपमान की कल्पना तब तक नहीं हो सकती जब तक कोई वस्तु पहले से ज्ञात न हो। गाय जैसी नील गाय इस सादृश्यमूलक कथन से नीलगाय की पहचान होती है। संसार की बहुत सारी वस्तुओं का परिचय हमें उपमान से ही मिलता है। अतः उपमान की उपयोगिता अर्थबोध में स्पष्ट है।

3. आप्तवाक्य : संसार में ऐसी बहुत सी वस्तुएं है जिनका ज्ञान व्यवहार द्वारा भी नहीं होता जैसे – ईश्वर। ईश्वर दृष्टिगोचर नहीं है। अतः उसका ज्ञान व्यवहार से नहीं हो सकता। यहां हमें ईश्वर का अर्थ जानने के लिए भक्तों, दार्शनिकों आदि के कथन पर विश्वास करना पड़ता है । धर्म, आत्मा, स्वर्ग आदि शब्द इसी प्रकार के हैं जिनका अर्थ आप्तवाक्य द्वारा ही जाना जा सकता है।

आप्त उस यथार्थ वक्ता को कहा गया है जो किसी वस्तु का यथार्थ वर्णन करें, उसमें अपनी ओर से घटाए बढ़ाए नहीं । सर्वथा विश्वास योग्य व्यक्ति का कथन ही मान्य हो सकता है। वेद, शास्त्र, गुरु, माता, पिता आदि आप्त माने जाते हैं। बालक माता–पिता को आप्त मानकर भाषाज्ञान और अर्थबोध प्राप्त करता है।

4. व्यवहार : व्यवहार का अभिप्राय है लोक–व्यवहार। आबालवृद्ध लोक–व्यवहार से ही सर्वाधिक अर्थज्ञान पाते हैं। संसार की सभी वस्तुओं के नाम वे लोक–व्यवहार से ही जानते हैं। माता–पिता, गुरु, मित्र आदि के व्यवहार से ही बालक सम्बन्धियों के नाम, सम्बन्ध, ज्ञान, पशु, पक्षी, बाजार की वस्तुएं आदि के नाम जानता है। मनुष्य की प्रारम्भिक भाषा शिक्षा व्यवहार ज्ञान से ही सम्पन्न होती है। शब्द और वस्तु के सम्बन्ध का ज्ञान भाषा के ग्रहण का प्रथम सोपान है, जो व्यवहार ज्ञान से ही सम्भव होता है। यह अर्थबोध का सबसे व्यापक व प्रमुख साधन है।

5. वाक्यशेष : इसका अर्थ है प्रकरण। प्रसंग या प्रकरण एक शब्द के अनेक अर्थों में अर्थ निर्णय का सर्वोत्तम साधन है। रस और ध्वनि शब्द के अनेक अर्थ हैं। रस के अर्थ आनन्द (काव्य), सरस (भोजन), काव्यशास्त्र में काव्यातमा, फलों का रस, षडरस आदि हैं। इसी प्रकार ध्वनि का अर्थ, आवाज, शब्द, व्यंजना आदि अर्थों में होता है। इसी प्रकार के अनेक अर्थोंवाले शब्दों का अर्थ, प्रकरण के अनुसार वाक्य में प्रयोग होने पर ही सुगम होता है।

6. विवृति : विवरण या व्याख्या से ही अनेक शब्दों का अर्थबोध होता है। विशेष रूप से पारिभाषिक, तकनीकी या दार्शनिक आदि शब्दों के अर्थ बिना विवृति के नहीं समझे जा सकते। विधि शब्द का अर्थ है – मनुष्यों को आचार –व्यवहार के लिए राज्य द्वारा स्थिर किये गये वे नियम या विधान जिनका पालन सबके लिए अनिवार्य होता है और जिनका उल्लंघन करने से मुनष्य दंडित हो सकता है। इतना विवरण दिये बिना विधि का अर्थ स्पष्ट नहीं हो सकता । इसी तरह अद्वैतवाद अभिव्यंजनावाद, वकोक्तिवाद आदि शब्दों का अर्थ विवृति की सहायता से जाना जा सकता है।

7. प्रसिद्ध पद का सान्निध्य : पढ़ते समय ज्ञात शब्दों के सान्निध्य से कभी–कभी अज्ञात शब्द का अर्थबोध हो जाता है। जैसे बाग में गुलाब, गुलशब्बों, नरगिस आदि की छटा देखने योग्य है, से गुलाब के सान्निध्य से अन्य फूलों का अर्थबोध हो जाता है। सुधा के अर्थ हैं अमृत और चूना । सुधा–सिक्त भवन में सुधा का अर्थ भवन की निकटता के कारण चूना समझा जाएगा। सुधापान से अमर देवगण में देवगण के सान्निध्य से सुधा का अर्थ अमृत लिया जाएगा। पाश्चात्य भाषा वैज्ञानिकों ने अर्थबोध के तीन साधन माने हैं –

- **व्यवहार :** किसी वस्तु का बोध कराने के लिए उसे बार–बार दिखाया या उसकी ओर संकेत और प्रयोग करके दिखाना। बच्चे को अर्थबोध कराने के लिए एक – एक वस्तु दिखाकर प्रयोग करके समझाना पड़ता है – पेन्सिल, पेन, पुस्तक, कापी, आम, अनार आदि।
- **विवरण :** कोश में बहुत सारे शब्दों के अर्थ विवरण के रूप में रहते हैं। लेकिन कोश से अर्थ बोध हो सके इसके लिए आवश्यक है सामान्य भाषा ज्ञान। बच्चे के हाथ में विश्वकोश देकर उसे भाषा ज्ञान नहीं कराया जा सकता। वस्तु का विवरण देकर ही उसका अर्थबोध कराया जा सकता है।
- **अनुवाद :** एक ही भाषा के कठिन शब्दों को दूसरी भाषा के शब्दों के अनुवाद द्वारा समझाया जा सकता है। विवस्वान–सूर्य अनुवाद में एक भाषा जानकर दूसरी भाषा जानना चाहता हो तब इसका उपयोग है। आधुनिक युग में विभिन्न भाषाभाषी परस्पर निकट आ रहे हैं तब अर्थबोध के लिए अनुवाद की उपयोगिता अधिक महत्वपूर्ण है। अर्थबोध के भारतीय आठ साधनों की तुलना में पाश्चात्य साधन बहुत ही अपर्याप्त हैं।

शब्दार्थ :

- अक्षर : जिसका क्षरण न हो ।
- स्वन : भाषा ध्वनि,
- अन्तस्थ : स्वर व व्यंजन के बीच की ध्वनि,
- संवृत : बंद,
- विवृत : खुला,

- लुंठित : लुढका हुआ,
- उत्क्षिप्त : उठना और तेजी से गिरना,
- प्राण : वायु,
- घोष : नाद या कम्पन।

1.3 सारांश :

- स्वरों का सर्वाधिक प्राचीन और प्रचलित वर्गीकरण स्वर और व्यंजन के रूप में उपलब्ध है। पतंजलि का आशय है कि स्वर वे ध्वनियां हैं जो स्वयं उच्चारित हो सकती हैं। व्यंजन वे ध्वनियां है जिनका उच्चारण स्वरों की सहायता के बिना नहीं हो सकता। पतंजलि ने स्वरों की सत्ता मानी है और व्यंजनों को उनके अधीनस्थ कार्यकर्त्ता माना है। इस प्राचीन परिभाषा से आधुनिक भाषा वैज्ञानिक सहमत नहीं हैं।
- स्वर ध्वनियों के उच्चारण में निःश्वास बिना अवरोध के मुखविवर से बाहर आता है। स्वरों के उच्चारण में भी जीभ सकिय तो रहती है किन्तु वह स्थानों का स्पर्श नहीं करती। उसका झुकाव स्थान विशेष की ओर होता है। इसी आधार पर स्वरों का स्थान निर्धारित किया जाता है। अतः स्वरों का वर्गीकरण स्थान और प्रयत्न के आधार पर माना जाता है।
- ध्वनि की अवाक्यांशपरक स्वतंत्र लघुतम इकाई शब्द है। संस्कृत मे कान के लिए शब्दग्रह शब्द का प्रयोग हुआ है। इसमें शब्द का अर्थ ध्वनि है। शब्दवेदी बाण में भी शब्द का अर्थ ध्वनि है। इसका व्याकरण से कोई सम्बन्ध नहीं है।
- भाषा विज्ञान के अध्ययन में वाक्य पहली इकाई है और रूप दूसरी महत्वपूर्ण इकाई है। भाषा को वाक्यों में खण्डित किया जाता है। वाक्य के खण्ड शब्द होते हैं और शब्द की इकाई ध्वनियाॅ। वस्तुतः कोशगत सामान्य शब्द और वाक्य में प्रस्तुत शब्द एक नहीं है। इस प्रकार शब्द के दो रूप हैं, एक मूल रूप होता है। वाक्य में प्रयुक्त शब्द ही 'पद' या 'रूप' कहलाता है।
- पदक्रम का अर्थ है वाक्य में पदों के विन्यास का क्रम। हर भाषा की अपनी निश्चित पदक्रम रचना होती है। हिन्दी में – मैं पत्र लिखता हूं में पदकम कर्त्ता, कर्म, क्रिया है। संस्कृत, ग्रीक, लैटिन, अरबी आदि भाषाएं परिवर्तनीय पदक्रमवाली भाषाएं हैं। अंग्रेजी,

हिन्दी, चीनी अपरिवर्तनीय पदकक्रमवाली भाषाएं हैं। इनका पदक्रम बदलने से अर्थ परिवर्तन हो जाता है।

1.4 सूचक शब्द :

स्वर-व्यंजन : स्वर एक ध्वनि है जिसके उच्चारण में हवा अबाध गति से मुख विवर से निकलती है । व्यंजन वह ध्वनि है जिसके उच्चारण में हवा अबाध गति से नहीं निकल पाती। स्वर और व्यंजन की परिभाषा में विशेष अंतर यह स्पष्ट किया गया है कि स्वर ध्वनि में वायु मुखविवर में अबाध रहती है और व्यंजन ध्वनि में सबाध रहती है। दूसरा अंतर मुखरता का है। वैज्ञानिक परीक्षणों से सिद्ध हो चुका है कि व्यंजनों की अपेक्षा स्वर अधिक मुखर होते हैं। स्वर प्रायः अस्थान उच्चरित हैं और व्यंजन स्थान उच्चरित ही माने जाते हैं।

स्वर स्वनों का वर्गीकरण : स्वर ध्वनियों के उच्चारण में निःश्वास बिना अवरोध के मुखविवर से बाहर आता है। स्वरों के उच्चारण में भी जीभ सक्रिय तो रहती है किन्तु वह स्थानों का स्पर्श नहीं करती। उसका झुकाव स्थान विशेष की ओर होता है। इसी आधार पर स्वरों का स्थान निर्धारित किया जाता है। अतः स्वरों का वर्गीकरण स्थान और प्रयत्न के आधार पर माना जाता है।

काकल्य : इन ध्वनियों के उच्चारण में वायु स्वरयंत्र से घर्षण करती हुई निकलती है। इन्हें स्वरयंत्रमुखी भी कहा जाता है। हिन्दी में केवल 'ह' ध्वनि काकल्य है।

अलिजिह्वीय : जिह्वापश्च अलिजिह्वा के सम्पर्क में आकर वायु प्रवाह को अवरुद्ध करता है तब अलिजिह्वीय ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। अरबी-फ़ारसी से प्रभावित हिन्दी में प्रयुक्त क़, ख़, ग़ ध्वनियां अलिजिह्वीय हैं।

कण्ठ्य : इन ध्वनियों का उच्चारण स्थान कोमल तालु है। इनके उच्चारण में जिह्वापश्च कोमल तालु के सम्पर्क में वायु को अवरुद्ध करता है तब उच्चरित ध्वनियां हिन्दी में कण्ठ्य कहलाती हैं। क, ख, ग, घ, ड.।

मूर्धन्य : जिन ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वा नोक उलटकर मूर्धा का स्पर्श कर वायु प्रवाह को अवरुद्ध करती है इन्हें मूर्धन्य कहा जाता है - ट् वर्ग, ष्, ड़ ढ़।

तालव्य : जिन ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वा कठोर तालु को स्पर्श करके वायु को अवरुद्ध करती है। तब इन ध्वनियों को तालव्य ध्वनियाँ कहा जाता है । च् वर्गीय तथा श् य् का उच्चारण स्थान भी यही है।

वर्त्सय : इन ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वानोक वर्त्स से समबद्ध होकर वायु को अवरुद्ध करती है। अतः वर्त्स स्थान से उच्चरित ध्वनियां वत्सर्य कहलाती हैं । न्, र, ल्, स् हिन्दी के वर्त्सय व्यंजन हैं।

दन्त्य : जिह्वानोक द्वारा ऊपरी दंतपंक्ति के सामने वाले दांतों का भीतर से स्पर्श किया जाता है। दंत स्थान पर वायु अवरुद्ध होने के कारण इन्हें दंत्य ध्वनियाँ कहा जाता है – ये हैं त्, थ, द्, ध।

दन्तोष्ठ्य : ऐस ध्वनियाँ जिनका उच्चारण ऊपर के दाष्त और नीचे के ओंठ की सहायता से होता है, दंतोष्ठ्य ध्वनियाँ कहलाती हैं – 'व्' और फ्।

ओष्ठ्य : जिन ध्वनियों के उच्चारण में निचला होंठ ऊपर के होंठ से सम्पर्क करके वायु को रोकता है अतः ओष्ठ स्थान से उच्चारित होने के कारण ये व्यंजन ओष्ठ्य कहलाते हैं – प्, फ, ब्, भ्, म्।

शब्द : ध्वनि की अवाक्यांशपरक स्वतंत्र लघुतम इकाई शब्द है। संस्कृत मे कान के लिए शब्दग्रह शब्द का प्रयोग हुआ है। इसमें शब्द का अर्थ ध्वनि है। शब्दभेदी बाण में भी शब्द का अर्थ ध्वनि है। इसका व्याकरण से कोई सम्बन्ध नहीं है।

पद : भाषा विज्ञान के अध्ययन में वाक्य पहली इकाई है और रूप दूसरी महत्वपूर्ण इकाई है। भाषा को वाक्यों में खण्डित किया जाता है। वाक्य के खण्ड शब्द होते हैं और शब्द की इकाई ध्वनियॉ। वस्तुतः कोशगत सामान्य शब्द और वाक्य में प्रस्तुत शब्द एक नहीं है। इस प्रकार शब्द के दो रूप हैं, एक मूल रूप होता है। वाक्य में प्रयुक्त शब्द ही 'पद' या 'रूप' कहलाता है।

पदकम : पदकम का अर्थ है वाक्य में पदों के विन्यास का क्रम। हर भाषा की अपनी निश्चित पदक्रम रचना होती है। हिन्दी में – मैं पत्र लिखता हूं में पदकक्रम कर्त्ता, कर्म, किक्रया है। संस्कृत, ग्रीक, लैटिन, अरबी आदि भाषाएं परिवर्तनीय पदक्रमवाली भाषाएं हैं। अंग्रेजी, हिन्दी, चीनी अपरिवर्तनीय पदकक्रमवाली भाषाएं हैं। इनका पदक्रम बदलने से अर्थ परिवर्तन हो जाता है।

1.5 स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न या अभ्यास प्रश्न :

1. स्वर की परिभाषाएष देते हुए स्वरों का वर्गीकरण करें।
2. व्यंजन की परिभाषा देते हुए व्यंजनों का वर्गीकरण करें।
3. शब्द व पद में अन्तर स्पष्ट करें।
4. शब्द और अर्थ का सम्बन्ध विश्लेषण करें।

1.6 संदर्भित पुस्तकें :

- **शुद्ध हिन्दी**, लेखक - डा. हरदेव बाहरी, 2004
- **हिन्दी व्याकरण**, लेखक - पं. कमला प्रसाद गुरू, 2003
- **अच्छी हिन्दी**, लेखक - रामचंद्र वर्मा, 2003
- **हिन्दी का सही प्रयोग**, लेखक - नीलम मान, 2005
- **भाषा शास्त्र तथा हिन्दी भाषा की रुपरेखा**, लेखक - देवेंद्र कुमार शास्त्री, 2003

बीए मास कम्युनिकेशन, प्रथम वर्ष,

हिन्दी– बीएमसी 102

खंड–ए इकाई – 2 अध्याय–2

उच्चारण और अर्थ की अवधारणा

लेखक : डा. मधुसूदन पाटिल, पूर्व वरिष्ठ व्याख्याता।

एस.आई.एम. शैली में परिवर्तन : डा. मनोज छाबड़ा, हिन्दी प्रवक्ता ।

अध्याय संरचनाः

इस अध्याय में हम **उच्चारण** और **अर्थ** का परिचय प्राप्त करेंगे। इस अध्याय में इन विषयों के बारे में विस्तार से चर्चा की जाएगी। अध्याय की संरचना ऐसी होगी :

2.0 उद्देश्य

2.1 परिचय

2.2 विषय वस्तु की प्रस्तुति

2.2.1 उच्चारण की अवधारणा

2.2.2 अर्थ की अवधारणा

2.3 सारांश

2.4 सूचक शब्द

2.5 स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

2.6 संदर्भित पुस्तकें

2.0 उद्देश्यः

इस अध्याय के उद्देश्य इस प्रकार हैंः

- उच्चारण की अवधारणा का जायजा लेना
- अर्थ की अवधारणा के बारे में जानना

2.1 परिचयः

भाषाविज्ञान के प्रसिद्ध विद्वान जार्ज सिम्प्सन ने लिखा है 'ध्वनि विज्ञान से अनभिज्ञ भाषा शिक्षक वैसे ही निरर्थक है जैसे शरीर–रचना से अनभिज्ञ चिकित्सक।' भाषावैज्ञानिक संदर्भ में ध्वनि का अर्थ है 'व्यक्त वाक्' अर्थात् उच्चारण अवयवों से उच्चरित ध्वनि, भाषा विशेष की वह लघुतम इकाई है जिमसें औच्चरणिक भिन्नता और अर्थ परिवर्तन की क्षमता होती है। इस स्वन का एकमात्र साधन है वाग्यंत्र। जिन अंगों की सहायता से भाषा ध्वनियों का उत्पादन किया जाता है उन्हें वाग्यंत्र का उच्चारण अवयव कहा जाता है । वाग्यंत्र का सूक्ष्म ज्ञान स्वन विज्ञान की शिक्षा के लिए अनिवार्य है।

फेफड़े–फेफड़े उच्चारण का बाहरी भाग माना जाता है और इसे बाह्य प्रयत्न में रखा जाता है । सर्वप्रथम ध्वनि उत्पादन के लिए वायु की आवश्यकता होती है। श्वास अर्थात् शुद्ध प्राण वायु को भीतर खींचना तथा निःश्वास अर्थात् दूषित वायु को बाहर निकालना। श्वास–निःश्वास क्रिया के लिए स्वर यंत्र का मुख सदा खुला रहता है। निःश्वास से आने वाली वायु की भाषा ध्वनि का आधार है।

इस अध्याय में हम *उच्चारण और अर्थ* का परिचय प्राप्त करेंगे।

2.2 विषय वस्तु की प्रस्तुति :

इस अध्याय में उच्चारण अवयव और अर्थ विषयों की अवधारणा पर विशेष जोर दिया जाएगा। विषयों की प्रस्तुति इस प्रकार रहेगीः

- o उच्चारण की अवधारणा
- o अर्थ की अवधारणा

2.2.1 उच्चारण की अवधारणा :

ध्वनि उत्पादन की प्रक्रिया की शुरुआत फेफड़े द्वारा निसृत वायु से होती हैं वाग्यंत्र द्वारा भिन्नभिन्न स्थानों पर इसी वायु को रोककर हम विभिन्न ध्वनियां उत्पादित करते हैं। मनुष्य शरीर में गलबिल के दो भाग हो जाते हैं। भोजन नलिका व श्वास नलिका। भोजन नलिका ध्वनियों के उत्पादन में सहयोगी नहीं है। श्वासनलिका वह रास्ता है जिससे फेफड़े से निकलती वायु गुजरती

है। फेफड़े और श्वास नलिका बाहरी प्रयत्न के अंग है इसलिए ये उच्चारण तंत्र के सहायक है, उच्चारण यंत्र नहीं है।

वाग्यंत्र के प्रमुख भाग निम्नलिखित हैं –

1- Loj ;a=(2- Loj&raf=;ka (3- vfHkdkdy (4- vfyftg~ok (5- dksey rkyq (6- ew/kkZ (7- dBksj rkyq (8- oRlZ (9- nUr (10- vks"B (11- ftg~okf.k (12- ftg~okxz (13- ftg~oke/; (14- ftg~oki'p (15- ftg~okewy (16- ukfldk fooj A

स्वरयंत्र : श्वास नलिका के ऊपरी भाग में अभिकाकल से थोड़ा नीचे ध्वनि उत्पादन का प्रमुख अंग है, जिसे स्वरयंत्र या ध्वनियंत्र कहा जाता है। इसी से होकर निःश्वास बाहर आता है।

स्वरतंत्रिया : इसी स्वरयंत्र में ओठो के आकार की समानांतर पड़ी हुई परदे की तरह दो मांसल झिल्लियां होती हैं, इन्हें स्वरतंत्रियां कहते हैं। ये दोनों स्वरतत्रियां श्वासनली के ऊपर परदों का काम करती है। स्वरतंत्री अत्यंत कोमल, लचीली और कम्पनशील होती है। ये विभिन्न ध्वनियों के उत्पादन की अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न रूप से खुलती बंद होती रहती हैं। ध्वनि की मधुरता इन्हीं पर निर्भर होती है। ध्वनियों के उत्पादन में स्वरतंत्रियों निम्न प्रकार की मुख्यअवस्थाएं हैं :

- अघोष ध्वनियों के उच्चारण के समय स्वरतंत्रियां शिथिल पड़ी रहती हैं और इनमें कोई कम्पन नहीं होता। जैसे – क्-ख्, च्-छ्-ट्-ठ्, त्-थ्-प्-फ्।
- घोष ध्वनियां स्वरतंत्रियां पास आ जाती हैं पर शिथिल रहती हैं और वायु के झटके से इनमें कम्पन्न होता है। इस स्थिति में घोष ध्वनियां उत्पन्न होती हैं – ग्, घ, ड्., ज् झ्, ञा, ड्, ढ्, ण्, भ्, म्। हिन्दी की सभी स्वर ध्वनियां घोष हैं।
- तीसरी स्थिति में तंत्रियां पूरी तरह सटी हुई होती हैं और निःश्वास रगड़ खाकर झटके के साथ निकली है, इन्हें काकल्य स्पर्श ध्वनियां कहा जाता है। ऐसी ध्वनियां जर्मन व डच भाषाओं में हैं।

अभिकाकल : भोजन नलिका विवर के साथ़ श्वासनलिका की ओर झुका हुआ, जीभ के आकार का

मांसल अंग है, इसे अभिकाकल या स्वरयंत्र मुखावरण कहते हैं । इसका कार्य भोजन के समय श्वास नलिका को बंद करना होता है और बोलते समय भोजन नलिका मुख को। इसका बोलने से सम्बन्ध नहीं है पर ध्वनि शास्त्रियों का मत है कि मौखिक गीत में यह सक्रिय हो जाता है।

अलिजिह्वा : नासिका विवर और मुख विवर को अलगाने वाले स्थान पर जीभ की आकृति का गोल मांस पिण्ड होता है इसे अलिजिह्वा कहते हैं। यह कोमल तालु का निचला अंतिम भाग है। यह नासिका मार्ग या मुख मार्ग की वायु को रोकने का कार्य करता है। ध्वनि उत्पादन में इसकी चार अवस्थाएं होती हैं –

- मुख बंद रहने की अवस्था में यह कौआ साधारणतः ढीला और नीचे की ओर लटका रहता है। वायु निर्बाध गति से नासिका विवर से आती जाती रहती है। इस अवस्था में बिना मुंह खोले 'हूं' ध्वनि का उच्चारण होता है।
- दूसरी अवस्था में यह तनकर नासिका विवर को बन्द कर देता है तब मुखर विवर मार्ग से निःश्वास आता है। मौखिक स्वरों और व्यंजनों का उच्चारण इसी अवस्था में होता है।
- तीसरी स्थिति में ये न तो नासिका मार्ग की वायु को रोकता है न मुख मार्ग की वायु को। अलिजिह्वा की ऐसी स्थिति में निःश्वास दोनो मार्गों से बाहर निकलता है और अनुनासिक स्वरों और नासिक्य व्यंजनों का उच्चारण होता है।
- कुछ भाषाओं में अलिजिह्वीय ध्वनियां मिलती हैं। इनके उच्चारण में यह कौआ जिह्वापश्च से संयुक्त होता है तो अरबी फ़ारसी की स्पर्श ध्वनि को उत्पन्न करता है। कौआ जिह्वापश्च के समीप होकर वायु मार्ग को अत्यंत संकीर्ण कर देता है और संघर्ष ध्वनि उत्पन्न करता है– अरबी फ़ारसी क़, ख़, ग़ आदि।

कोमल धातु : ध्वनि उत्पादन में यह महत्त्वपूर्ण अवयव है। गलबिल की ओर से अलिजिह्वा का ऊपरी भाग है। यह कोमल मांस खण्ड है। यह उच्चारण स्थान और सहायक दोनों है। अतः यह करण कहलाता है। यह नीचे होने पर मुख विवर मार्ग को बन्द कर देता है और तनकर ऊपर होने पर नासिका मार्ग को। यह भी अलिजिह्वा के साथ मुख विवर और नासिका विवर के मध्य कपाट का काम करता है। अ, इ आदि स्वरों और कंठ्य व्यंजनों क, ख, ग आदि को उच्चारण में

कोमल तालु ऊपर उठकर नासिका विवर को बंद कर देता है। नासिक्य ध्वनियों के उच्चारण में कोमल तालु नीचे आ जाता है और मुख विवर को बंद कर देता है।

मूर्धा : कठोर तालु और कोमल तालु के बीच का मार्ग मूर्धा है। मुख विवर के ऊपरी भाग में यह सर्वोच्च उच्चारण स्थान है। पाश्चात्य भाषा विज्ञानी इसे कठोर तालु का ही एक अंश मानते हैं और इसकी पृथक् सत्ता नहीं मानते। जीभ को उलटकर इस स्थान पर पहुंचाया जाता है । यह ट् वर्गीय ध्वनियों का उच्चारण स्थान है। इस उच्चारण स्थान से उच्चरित ध्वनियों को मूर्धन्य कहते हैं।

कठोर तालु : मुख विवर के ऊपरी भाग में मूर्धा और वर्त्स के बीच का भाग है। इस स्थान पर हड्डी के ऊपर मांस का आवरण है। वाग्यंत्र का यह स्थिर उच्चारण स्थान है। इससे उच्चरित ध्वनियां तालव्य कहलाती हैं। इ, ई स्वर ध्वनियां तथा व्यंजनों में च् वर्गीय व्यंजन ध्वनियां तालव्य है।

वर्त्स : यह मुख विवर में ऊपरी दांतों के मूल से लेकर कठोर तालु के प्रारम्भ तक का भाग है। दांतों की जड़ से उभरा हुआ खुरदरा भाग 'वर्त्स' कहलाता है। जीभ के विभिन्न भागों के स्पर्श या समीपवर्ती होने से यह मुख्य ध्वनि उत्पादन स्थान है। इस स्थान से उत्पन्न ध्वनियां वर्त्सय कहलाती हैं। हिन्दी के न्, र्, ल्, स् व्यंजन और अंग्रेजी के 'टी' 'डी' का उत्पादन स्थान यही है।

दन्त : ऊपर के दो दांतों का भीतर की ओर से ध्वनि उच्चारण में महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये जिह्वा नोक से मिलकर विभिन्न ध्वनियों के उत्पादन में सहायक होते हैं। अंग्रेजी के दिस, दैट के द् के उच्चारण में इनका उपयोग स्पष्ट है। हिन्दी की त् वर्गीय व्यंजन ध्वनियों का उच्चारण स्थान यही है। यहां से उत्पन्न ध्वनियों को दन्तय कहा जाता है।

ओष्ठ : यह वाग्यंत्र का आच्छादक भाग है। निचला होंठ अधिक सक्रिय रहता है, अतः ध्वनि विज्ञान में ओष्ठ शब्द प्रायः निचले ओठ से लिया जाता है। दोनों ओठों की सहायता से उच्चरित प्

वर्गीय व्यंजन : ओष्ठ्य कहलाते हैं। दन्तोष्ठ्य ध्वनियां हिन्दी का 'व' और अंग्रेजी के 'फूल' का फ़ यही से उच्चरित होते हैं। स्वरों के उच्चारण में इनकी विभिन्न अवस्थाएं होती हैं और यह विभिन्न आकार धारण करते हैं।

जिह्वाणि : जिह्वा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं प्रयत्नशील ध्वनि उत्पादक अवयव है। इसी के पर्याय जुबान या स्पदहनं (लॅटिन) भाषा के पर्याय हैं। संसार की सभी भाषाओं की स्वर व्यंजन ध्वनियों का उत्पादन अंग जिह्वा ही है। वायु अवरोध इसी का कार्य है। इसके पांच भाग हैं। ये

अलग–अलग ध्वनियां उत्पन्न करने में सहायक होते हैं। इसके पांच भाग है जिह्वाणि जिह्वाग्र–जिह्वा–मध्य, जिह्वा–पश्च जिह्वामूल।

जिह्वा के सबसे अगले नोक वाले अंश को जिह्वाणि कहते हैं। इससे उत्पन्न ध्वनियां जिह्वणीय होती हैं। इसके ऊपरी दांतों के स्पर्श से त् वर्गीय दन्तय ध्वनियां उत्पन्न होती हैं। इसी के प्रयत्न से हिन्दी की वर्त्सय ध्वनि न तथा अंग्रेजी की टी, डी आदि की ध्वनि उत्पन्न होती है। यही वर्त्स के समीप होकर 'स' ध्वनि उत्पादन मे सहायक होती है। निःश्वास को आलोड़ित कर ध्वनि 'र' इसी के प्रयत्न से उत्पादित होती है। वर्त्स के स्पर्श से उत्पन्न होने वाली पार्श्विक ध्वनि 'ल' इसी के प्रयत्न से उत्पन्न होती है।

जिह्वाग्र : यह भाग कठोर तालु के साथ मिलकर वायु को पूर्णतया रोक लेता है। इसकी सहायता से उत्पन्न ध्वनियां तालव्य कही जाती हैं। 'च' वर्गीय व्यंजन ध्वनियां तालव्य हैं। यह भाग निःश्वास को मुख विवर में विभिन्न रूपों में प्रभावित करके इ, ई, ए, ऐ आदि अग्र स्वरों के उत्पादन में सहायक होता है।

जिह्वामध्य : यह कठोर तालु एवं कोमल तालु के संधिस्थल के नीचे का भाग है। इसके द्वारा मध्यस्वर या केन्द्रीय स्वर 'अ' का उच्चारण होता है।

जिह्वापश्च : यह भाग निःश्वास को विभिन्न रूपों से प्रभावित करके पश्च स्वर आ, उ, ऊ, ओ, औ के उच्चारण में सहायक होता है। यह कोमल तालु के साथ मिलकर क वर्गीय व्यंजन ध्वनियों का उत्पादन करता है।

जिह्वामूल : जिह्वामूल कोमल तालु और अलिजिह्वा से मिलकर अरबी की क़, ख़, ग़, ध्वनियां उत्पन्न करता है इन्हें जिह्वामूलीय ध्वनियां कहा जाता है।

नासिका विवर : यह गलबिल से प्रारम्भ होकर नासिका के अग्रभाग तक फैला हुआ है। श्वास–निःश्वास का यही मुख्य मार्ग है। इस विवर से निःश्वास निकलने पर नासिक्य ;पांचवी ध्वनिद्ध व्यंजन ध्वनियों का उच्चारण होता है। अनुनासिक ध्वनियों के उच्चारण की अवस्था में भी मुख विवर के साथ ही नासिका विवर से भी वायु निसृत होती है। इस प्रकार वाक्स्वनों का उच्चारण वागवयव का सम्मिलित कार्य है, जिसमें स्थान, प्रयत्न और करण मुख्य उत्पादक की भूमिका निभाते हैं।

2.2.2 अर्थ की अवधारणा :

अर्थ शब्द की आत्मा है, शब्द शरीर है । जिस प्रकार शरीर के ज्ञान के बाद आत्मा का ज्ञान अपेक्षित है उसी प्रकार ध्वनि, पद, वाक्य के ज्ञान के बाद अर्थ रुपी आत्मा का ज्ञान अपेक्षित और अनिवार्य है। प्रारंभ में अनेक भाषा वैज्ञानिकों ने इसे दर्शन का विषय कहकर भाषाविज्ञान में रखने पर आपत्ति की थी। लेकिन प्राचीन भारतीय मनीषियों ने इसके महत्त्व को स्वीकार किया। अर्थ ज्ञान के बिना वेदों का पाठ करने वालों की यास्क ने निरुक्त में निन्दा की । उन्होंने अर्थ को वाणी का फल-फूल माना है।

आचार्य पतंजलि ने 'महाभाष्य' में कहा है ''अर्थ ज्ञान के बिना जो शब्द मूल पाठ के रूप में दुहराया जाता है, वह उसी प्रकार ज्ञान को प्रज्वलित नहीं करता जैसे बिना अग्नि में डाला हुआ सूखा ईंधन।''

भर्तृहरि ने 'वाक्यप्रदीप' में अर्थ के 18 लक्षण दिये हैं । उन्होंने अर्थ का संक्षिप्त एवं सुन्दर लक्षण दिया है – ''शब्द के द्वारा जिस अर्थ की प्रतीति होती है उसे ही अर्थ कहते हैं'' इससे स्पष्ट है कि अर्थ का सामान्य लक्षण प्रतीति है। प्रत्येक व्यक्ति शब्द को सुनकर कुछ अर्थ ग्रहण करता है। उसकी यह व्यक्तिगत अनुभूति-प्रतीति ही उसका अर्थ होता है। वस्तु के साथ ध्वनि के सम्बन्ध स्थापन को प्राचीन साहित्य में संकेत ग्रह कहा गया है । जब हम कोई शब्द पढ़ते या सुनते हैं तो संकेत ग्रह के आधार पर ही हमारे मस्तिष्क में वस्तु विशेष का मूर्त या अमूर्त बिम्ब बन जाता है और अर्थ की प्रतीति होती है। अभिधा शक्ति का आधार संकेत ग्रह ही है।

2.2.2.1 अर्थ -परिवर्तन :

अर्थ परिवर्तन के निम्न कारक है :

- परिवेश परिवर्तन
- विनम्रता पदर्शन
- सुश्रायता
- व्यंग्य प्रयोग
- भावात्मक बल

- सामान्य और विशेष
- वैयक्तिक ज्ञान भेद
- शब्दार्थ की अनिश्चितता
- अज्ञान और भ्रांति
- एक तत्त्व की प्रधानता
- गौण अर्थ की मुख्यता
- एक शब्द के विभिन्न रूप
- व्याकरणिक कारण
- काल भेद
- अन्य भाषा शब्द
- अन्य भाषा प्रभाव
- संक्षिप्तता
- पुनरावृत्ति
- सादृश्य

परिवेश परिवर्तन – भौगोलिक परिवेश में अन्तर आ जाने से शब्द का अर्थ परिवर्तित हो जाता है । वेद में उष्ट्र शब्द भैंसा अर्थ में है लेकिन भारत में आने पर ऊष्ट हो गया। कॉर्न इंग्लैंड में गेंहूं, स्काॅटैंड में बाजरा अैर अमेरिका में मक्का होता है। उत्तर प्रदेश में ठाकुर का अर्थ क्षत्रिय है, बिहार में नाई और बंगाल में रसोइया है। सामाजिक परिवेश भेद से अर्थ भेद उत्पन्न हो जाता है। 'सिस्टर' परिवार में बहनजी है, अस्पताल में नर्स है और स्कूल में अध्यापिका है। हिन्दी का भाई शब्द सामान्य सम्बोधन बन गया है तथा इसमें साथी, मित्र, हितैषी, दुकानदार, नौकर, पति–पत्नी आदि के अर्थ शामिल हो गये है। पाठशाला, स्कूल, मदरसा पर्यायवाची हैं परन्तु सामाजिक परिवेश भेद से पाठशाला, संस्कृत विद्यालय, स्कूल, अंग्रेजी विद्यालय, मदरसा उर्दू शिक्षा केन्द्र के वाचक हैं। विद्यार्थी की कलम, माली की कलम और नाई की कलम अलग–अलग अर्थ के बोधक है।

राजनीतिक परिवेश भेद से शब्दों के अर्थों में बहुत भ्रष्ट परिर्वतन हो जाता है– दुराग्रहपूर्ण कार्य के लिए भी सत्याग्रह, सत्ता हथियाने के कपटपूर्ण तरीके संघर्ष या आंदोलन, साम्प्रदायिक दंगों में मरनेवाले शहीद, दुराचारी और भ्रष्ट लोग देशभक्त, राष्ट्र को पतन की ओर ले जाने वाले भी नेता कहलाते हैं।

भौतिक परिवेश भेद से अर्थभेद इस प्रकार है – अंग्रेजी में 'ग्लास' कांच है, हिन्दी में पानी पीने का पात्र है और दर्पण भी है । पहले शीशा धातु निर्मित था फिर कांच से बना दर्पण हो गया। पेन का मूल अर्थ पक्षी की आंख है, क्योंकि पंख का प्रयोग कलम के रूप में होता था फिर इंक पेन, फाउन्टेन पेन, डॉट पेन आदि अर्थ विस्तार हुआ।

विनम्रता पदर्शन – भाषा किसी व्यक्ति ओर जाति की शिक्षा और संस्कृति की परिचायिका होती है। विनम्रता सामाजिक शिष्टाचार का अंग है। यह चेष्टाओं के साथ भाषा से भी व्यक्त होती है। विनम्रता में अहं भाव का त्याग है । अपने इष्टदेव पूज्य या राजा का अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन श्रद्धा और विनम्रता प्रदर्शन के लिए ही होता है। भक्त स्वयं को दीन, पतित, अशरण आदि कहता है और भगवान को दीनबंधु, पतितपावन, शरणागतवत्सल आदि कहता है । राजा को गरीबपरवर, आलमपनाह, अन्नदाता आदि कहा जाता है । नौकर स्वयं को चरणदास, नाचीज आदि कहता था। शिष्टाचार 'कहिए' के लिए 'आदेश कीजिए' 'फरमाइए' आदि का प्रयोग होता है। यह सामाजिक शिष्टाचार के भाषिक रूप हैं। विनम्रता प्रदर्शन में विश्व में जापानी भाषा सबसे आगे है।

सुश्रायता – अंग्रेजी में यूफेमिज्म का अर्थ हिन्दी में श्रवण सुखद ध्वनि है। अशुभ, अमंगल सूचक घृणित और लज्जाजनक शब्द अप्रिय होते हैं और उनके लिए शुभ और अशुभ शब्दों का प्रयोग शिष्टता का सूचक माना जाता है। भाषा केवल सम्प्रेषण का माध्यम ही नहीं है वह मनुष्य के संस्कार और सुरुचि की अभिव्यक्ति का साधन भी है।

काव्यशास्त्र में भी अश्लीलता को दोष माना जाता है और इसके निम्नलिखित रूप है– अमंगल, जुगुप्सा, अन्धविश्वास, हीनता। अमंगल–अशुभ कार्यो एवं घटनाओं के लिए शुभ, नाम–मृत्यु के लिए स्वर्गवास, पंचत्व, लाश के लिए मिट्‌टी, वैधव्य के लिए चूड़ी फूटना, अंधे को सूरदास कहना आदि अशुभ परिहार के उदाहरण हैं। व्रीडा–व्रीड़ाजनक शब्दों में यौनभाव और मलमूत्र त्याग के उदाहरण आते हैं । गर्भिणी के लिए पांव भारी होना, मलत्याग के लिए शौच, मूत्रत्याग के लिए लघुशंका ऐसे ही उदाहरण हैं। 'जुगुप्सा' का मूल अर्थ है छिपाने योग्य, धीरे–धीरे

जिसका अर्थ हुआ घृणा। पीब पड़ना, राल टपकना आदि प्रयोग अशिष्ट माने जाते हैं। नग्न के लिए दिगम्बर आदि प्रयोग इसी का परिणाम हैं।

अंधविश्वास के कारण पति, पत्नी, ज्येष्ठ पुत्र, गुरु, अतिकृपण आदि का नाम लेना वर्जित माना जाता है। चेचक को शीतला या माता, हैजे को पेट चलना, सर्प को कीड़ा कहना इसी वृत्ति का परिणाम है। हीन कर्म के लिए अच्छे शब्दों का प्रयोग भी सुश्राव्यता का ही परिणाम है। पाखाना साफ करने के लिए कमाना, भंगी को मेहतर –महतर–, चोर को तस्कर, क्लर्क को बाबूजी कहना इसी के उदाहरण हैं। न्यूयार्क में निम्न कार्य करने वाले औंकी हब्शी कहलाना पसंद करते हैं नीग्रो नहीं।

व्यंग्य प्रयोग – काव्यशास्त्र के अनुसार यह विपरीत लक्षण है। व्यंग्य प्रयोग शब्द उलटा अर्थ देते हैं। मूर्ख को बृहस्पति, अन्यायी को धर्मराज, कंजूस को कर्ण, कुरुप को कामदेव, अनाड़ी को पंडित–पुंगव कहना व्यंग्य की भावना से प्रेरित होता है। आंख के अंधे, नाम के नैनसुख, नाच न जाने आंगन टेढ़ा आदि मुहावरे व्यंग्यमूलक हैं।

भावात्मक बल – भावावेश, भावुकता या भावात्मक बल से शब्दों के अर्थ में अन्तर आ जाता है । इसमें या तो बढ़ा–चढ़ाकर या विचित्र अर्थ में शब्द प्रयोग किया जाता है। बंगला में भाव प्रवणता अधिक है। बंगला, भीषण सुन्दर, भीषण भयानक का नहीं अतिशय का बोधक है। भावात्मक बल के कारण राम जैसा पवित्र शब्द घृणा सूचक हो जाता है। प्रेमाधिक्य में अपने बच्चे को शैतान, मित्र को साले या बेटे कहना भाव प्रवणता के उदाहरण हैं। कद्दू को काशीफल कहना भावात्मक बल के कारण है।

सामान्य और विशेष – कभी–कभी सामान्य के लिए अर्थात् पूरे वर्ग के लिए उसी वर्ग की विशेष वस्तु का प्रयोग किया जाता है। शाक –सूखा साग– और सब्जी –हरी– में अन्तर था। परन्तु अब दोनों का प्रयोग आलू, टमाटर, काशीफल, बैंगन के लिए होता है। स्याही काले का बोधक है । अतः काली स्याही के लिए था परंतु अब ये शब्द नीली, हरी, लाल के लिए प्रयुक्त होते हैं। पैसा शब्द धन का बोधक हो गया। कुछ जातिवाचक शब्द एक ही लिंग में प्रयुक्त होते हैं। नित्य पुल्लिंग प्रयोग, दोनों के लिए – तोता, कौआ, बाज, चीता। केवल स्त्रीलिंग प्रयोग के लिए चींटी, मक्खी, छिपकली । इसी प्रकार वकील, डॉक्टर, प्रोफेसर मजदूर दोनों के लिए सामान्य प्रयोग है। जलपान में केव जल पीने का बोध नहीं है। इसमें अल्पाहार का अर्थ शामिल है।

वैयक्तिक ज्ञान भेद – शिक्षित, अशिक्षित, दार्शनिक, भाषा वैज्ञानिक के ज्ञान में स्तर भेद होता है। विषय विशेषज्ञ पारिभाषिक शब्द के सूक्ष्म अर्थ को समझता है, सामान्य व्यक्ति उसका सामान्य अर्थ लेते हैं। आत्मा, परमात्मा, प्रकृति, माया, क्रांति, ध्वनि आदि शब्दों के अर्थ प्रत्येक व्यक्ति अपने ज्ञान के स्तर के अनुसार करता है। प्रो0 टकर ने कहा है कि शब्द एक अनमोल सिक्का है जिसका मूल्य निश्चित नहीं है। रत्न के मूल्य को जौहरी परखता है, सामान्य व्यक्ति के लिए वह केवल चमकीला पत्थर है।

शब्दार्थ की अनिश्चितता – भाषा में कुछ शब्द ऐसे होते हैं जिनका अर्थ पूर्णतया स्पष्ट और निश्चित नहीं होता। इस कोटि में मुख्यतः अभूत भावों के बोधक शब्द होते हैं। पाप–पुण्य, हिंसा–अहिंसा, सत्य–असत्य, भक्ति, न्याय आदि शब्दों का निश्चित अर्थ बताना असम्भव है। इन शब्दों के अर्थ में अस्पष्टता है जो निश्चित अर्थबोध में बाधक होती है। एक शब्द का अर्थ जितना अनिश्चित होगा उसमें अर्थ परिवर्तन का रूप भी उतना अधिक विचित्र होगा।

अज्ञान और भ्रांति – अज्ञान और भ्रांत धारणा के कारण कुछ शब्दों का अशुद्ध प्रयोग होने लगता है। बाद में वे भाषा में प्रचलित हो जाते हैं। वैदिक संस्कृत में असुर –असु+र– प्राण सम्पन्न देववाचक था। यही अज्ञानवश लौकिक संस्कृत में –अ+सुर– देवविरोधी राक्षस के रूप में प्रयुक्त होने लगा। भ्रांति के कारण ही भिज्ञ –विद्वान– में 'अ' को निषेधार्थक मानकर कुछ लोग अ+भिज्ञ –मूर्ख– प्रयोग करते हैं। फिजूल के लिए बेफिजूल, खालिस के लिए निखालिस आदि प्रयोग अज्ञानतासूचक हैं।

एक तत्त्व की प्रधानता – कभी–कभी शब्द के पूरे तत्त्व को ध्यान में न रखकर किसी एक तत्त्व की प्रधानता के आधार पर किसी वस्तु का नाम पड़ जाता है। सुन्दर वर्ण –रंग– के कारण सुवर्ण –सोना– सफेदी के आधार पर चांदी –चांदनी– गौरवर्ण के कारण गौरी –पार्वती, हिंदी गोरी– पुलिस के लिए लाल पगड़ी आदि।

गौण अर्थ की मुख्यता – साहचर्य के कारण कभी–कभी गौण अर्थ का प्रयोग मुख्य अर्थ में होने लगता है। विदेश से आने पर तम्बाकू पहले–पहल सूरत बन्दरगाह पर उतरा अतः 'सुरती' हुआ। कश्मीर में 'केसर' की उपज के कारण संस्कृत में केसर का नाम कशमीर हुआ। चीन से सम्बद्ध चीनी, सिंधु देश के कारण सैंधव –सेंधा नमक– आदि अर्थ परिवर्तन के कारण है।

एक शब्द के विभिन्न रूप – भाषाओं में विकास के कारण एक शब्द के अनेक रूप प्रचलित हो जाते हैं। तत्सम शब्द प्रायः प्राचीन मूल अर्थ को प्रकट करता है। तद्‌भव शब्द उससे सम्बद्ध अन्य या निकृष्ट अर्थ को प्रकट करता है। क्षीर –दूध, खीर, श्रेष्ठ –सेठ–, साहूकार, साधु –सज्जन– साहु –वैश्य –, खाद्य –भोज्य पदार्थ, खाद उर्वरक– स्थान–थान –देवी या पशु––थाना –पुलिस का–।

व्याकरणिक कारण – समास, उपसर्ग और लिंग भेद के कारण भी शब्द के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। समास – पतिगृह –ससुराल– गृहपति –स्वामी–, कविराज –वैद्य–, राजकवि –राजा का कवि–।

उपसर्ग –ज्ञान–अज्ञान, विज्ञान, प्रज्ञान, दान–आदान, प्रदान, निदान, अनुदान।

लिंग भेद–काला–काली –दुर्गा– शिव–शिवा –गीदड़ी–

काल भेद– विकास क्रम के अनुसार भी भाषाओं में अन्तर हो जाता है श्रेष्ठ–सेठ, साधु–साहु, महत्तर–मेहतर, महाजन–सूदखोर।

अन्य भाषा शब्द – किसी भाषा में दूसरी भाषा से आये शब्द के अर्थ में अंतर हो जाता है। संस्कृत–मृग –पशु– फारसी में मुर्ग –पक्षी– हिन्दी में मुर्गा हो गया। लॉर्ड–लाट। संस्कृत 'नास्ति नाभूत' से फारसी नेस्तनाबूद –सर्वनाश– हो गया। संस्कृत की बाणभट्ट कृत 'कादम्बरी' मराठी में उपन्यास हो गया। संस्कृत नील –नीला–, हिन्दी में नील –कपड़ों वाला– और गुजराती में लीलो –हरा रंग– हो गया।

अन्य भाषा प्रभाव – सांस्कृतिक सम्पर्क के कारण भाषा में शब्द के अर्थ परिवर्तित हो जाते हैं। बंगला, पंजाबी, मराठी आदि का प्रभाव हिन्दी शब्दार्थ पर भी पड़ा है। बांग्ला के प्रभाव से हिन्दी में उपन्यास शब्द आया है। हिन्दी का कटना–जलना पंजाबी में लड़ना–सड़ना हो गया । मच्छर लड़ रहे हैं, सब्जी सड़ रही हैं, मरम्मत, अच्छा–बुरा।

संक्षिप्तता – प्रयत्न लाघव की प्रवृत्ति के कारण मनुष्य थोड़े शब्दों के अधिक अर्थ प्रकट करना चाहता है। नाम के अंश रामचन्द्र –राम, बहुलपक्षदिवस–बदी, शुक्लपक्ष–सुदी, संयुक्त विधायक दल–संविद, रेलवे ट्रेन–रेल या ट्रेन। अंग्रेजी–नेकटाई, टाई। माइक्रोफोन–माइक।

पुनरावृत्ति – कभी–कभी एक ही अर्थ के लिए दो शब्दों का साथ–साथ प्रचलन हो जाता है। हिमालय पर्वत, विंध्याचल पर्वत, मलय गिर, सज्जन, पुरुष, पाव रोटी।

सादृश्य – सादृश्य के कारण भी अर्थ परितर्वन होता है परन्तु इसके उदाहरण अधिक नहीं मिलते। प्रश्रय का अर्थ संस्कृत में था विनय और हिन्दी में आश्रय से मिलता–जुलता होने के कारण प्रश्रय का अर्थ भी आश्रय हो गया। अभिज्ञ और सविज्ञ में सादृश्य से विज्ञ के अर्थ में कुछ लोग भिज्ञ का तथा अविज्ञ के अर्थ में प्रयोग कर लेते हैं। वस्तुतः अभिज्ञ का अर्थ है बहुत सूक्ष्म ज्ञान रखने वाला और अविज्ञ का अर्थ है अज्ञानी। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अर्थ परिवर्तन का कोई एक सुनिश्चित कारण नहीं होता। इसमें आंतरिक और बाह्य, मानसिक और भौतिक अनेक कारण सम्मिलित रूप से कार्य करते हैं।

2.2.2.2 अर्थ –परिवर्तन की दिशाएं :

संसार की सभी वस्तुओं की तरह भाषा भी परिवर्तनशील है । ध्वनि और पद के समान अर्थ में परिवर्तन की स्वाभाविक प्रक्रिया जारी रहती है। यह अर्थ परिवर्तन विकास सिद्धान्त की दृष्टि से अर्थविकास कहलाता है। अर्थविकास के मूल में लक्ष्णावृत्ति काम करती है, जब तक लक्षणा का आधार नहीं मिलता तब तक परिवर्तन नहीं होता। अर्थ परिवर्तन के कुछ कारण होते हैं। और कुछ दिशाएं। अर्थ परिवर्तन की मुख्यतः तीन दिशाएं हैं– अर्थ विस्तार, अर्थ संकोच ओर अथदिश। इनका विश्लेषण निम्नलिखित है :

- *अर्थ विस्तार*
- *अर्थ संकोच*
- *अथदिश*

2.2.2.3 अर्थ विस्तार

कुछ शब्द प्रारम्भिक अववस्था में मूल रूप में विशेष या सीमित अर्थ में प्रयुक्त होते थे लेकिन कालांतर में उनके अर्थ में विस्तार हो जाता है। भाषा में अर्थ विस्तार के उदाहरण अधिक नहीं मिलते। भाषा विकास की प्रक्रिया में सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तुओं में भावों के प्रकटीकरण की शक्ति आ जाती है। इसके कुछ उदाहरण हैं।

1. कुशल– इसका मूल अर्थ या कुशों को लाना। कुश तीक्ष्णता के कारण लाने में चतुराई की अपेक्षा रखता है। अतः धीरे–धीरे वह चतुरता और निपुणता का अर्थ देने लगा – संगीत, शास्त्र, खेल में कुशलता।

2. प्रवीण – इसका अर्थ था वीणा वादन में निपुण धीरे–धीरे यह वीणा वादन में निपुणता को छोड़कर केवल निपुणता का अर्थ देने लगा। इसका भी विस्तार हुआ। कृषि कर्म में, साहित्य, दर्शन में, कलाओं में प्रवीण आदि।

3. तेल – सर्वप्रथम तिल का द्रव ही तैल कहलाता था। लेकिन अपने अर्थ विस्तार से ये सरसों, मूंगफली, बादाम, नारियल के साथ भी प्रयुक्त होने लगा। यहां तक कि मिट्‌टी और आदमी का भी।

4. गोष्ठ – प्रारम्भ में गायों को रखने के स्थान को ही गोष्ठ या गौशाला कहते थे। लेकिन धीरे–धीरे उसमें भैंस, बकरी आदि भी बांधने लगे। गोष्ठ से ही गोष्ठी बना और इसका अर्थ केवल बैठना हुआ और इसमें छात्र, अध्यापक, विद्वान सभी बैठने लगे।

5. गवेषणा – प्रारम्भ में यह 'गाय चाहना' अर्थ में प्रयुक्त होता था। फिर गाय ढूंढना हुआ। फिर यह खोज के अर्थ में प्रयुक्त हुआ और अब शोधकार्य में इसका प्रयोग होता है। इस प्रकार स्याही, रुपया, सब्जी आदि शब्द विस्तार के उदाहरण हैं।

2.2.2.4 अर्थ संकोच :

भाषा की प्रारम्भिक अवस्था में शब्द सामान्य रहते हैं। सभ्यता के विकास के साथ विशिष्ट राष्ट्र जितना अधिक विकसित होगा उसी भाषा में अर्थ संकोच के उदाहरण उतने ही अधिक मिलेंगे। अर्थ संकोच के कारण किसी शब्द का प्रयोग सामान्य या विस्तृत अर्थ से सिकुडकर सीमित या विशिष्ट अर्थ में ही होने लगता है। अंग्रेजी के 'डीयर' और संस्कृत के 'मृग' शब्द का प्रयोग

पहले जानवर के अर्थ में होता था पर धीरे-धीरे यह केवल हरिण के लिए हुआ। 'भार्या' का मूल अर्थ था जिसका भी भरण-पोषण किया जाए, पर कालान्तर में यह केवल पत्नी तक सीमित रहा।

श्रद्धा से किया जाने वाला हर कार्य कभी श्राद्ध कहा जाता था। पर अब केवल मृत्यु के बाद होने वाला कार्य ही श्राद्ध रह गया। 'घृत' घृ से बना है जिसका अर्थ है सींचना। इसलिए पहले इसका अर्थ पानी भी होता था पर अब केवल घी के लिए प्रयुक्त होता है। सभा में बैठने वाला अर्थात् सभ्य अब केवल शिष्य के अर्थ में सीमित हो गया। 'सर्प' प्रत्येक रेंगने वाली जाति थी अब केवल सांप तक सीमित हुआ। 'पर्वत' पोरों वाली हर वस्तु थी पर अब केवल पहाड़ रह गया। इस प्रकार के सैंकड़ों शब्द हैं।

प्रो. मिशेल ब्रेआन का कथन है कि राष्ट्र या जाति जितनी अधिक विकसित होगी उसकी भाषा में अर्थ संकोच के उदाहरण उतने ही अधिक मिलेंगे। इसका अभिप्राय यह है कि संस्कृति और सभ्यता के विकास से सामान्य शब्द विशेष अर्थ में प्रयुक्त होने लगते हैं।

आचार्य विश्वनाथ का कथन है कि ''शब्दों का अर्थ सदा व्युतपत्ति के आधार पर ही नहीं होता, वह मुख्यतः प्रवृत्ति के आधार पर होता है, अर्थात् उसका नियामक लोकव्यवहार है।''

अर्थ संकोच के प्रमुख कारण निम्नलिखित है :-

1. उपसर्ग - इसके प्रयोग से अर्थ संकोच के उदाहरण हैं -

योग - संयोग, वियोग, उपयोग, प्रयोग।

गम - आगम, निगम, सुगम, दुर्गम, संगम।

कार - प्रकार, आकार, संस्कार, विकार, प्रतिकार।

चार - प्रचार, आचार, विचार, संचार आदि।

2. समास -

पीताम्बर बहुव्रीहि समास के कारण संकुचित हुआ कृष्ण,

पश्यतोहर- देखते देखते

चुरानेवाला-सुनार।

3. प्रत्यय -

प्रत्यय के योग से भी अर्थ संकोच होता है भक्ति, जाग, भजन एक ही धातु 'भज्' से व्युत्पन्न होने पर भी विभिन्न प्रत्ययों के योग से विभिन्न अर्थों तक सीमित हो गये।

4. विशेषण – विशेषण से भी अर्थ संकोच हो जाता है –

जन – सज्जन, दुर्जन, निर्जन।

आचार – दुराचार, सदाचार, कदाचार –कुत्सित–।

5 नामकरण –

किसी वस्तु के नामकरण से भी अर्थ संकोच हो जाता है । कृष्ण का मूल अर्थ काला है लेकिन वासुदेव का नाम पड़ने से कृष्ण सभी काली वस्तुओं का बोधक नहीं रहा।

6. परिभाषिकता –

शब्दों का पारिभाषिक रूप में प्रयोग उनके अर्थ को संकुचित कर देता है । 'रस' के अनेक अर्थ है लेकिन काव्यशास्त्र में इसका प्रयोग होने के कारण इसका सीमित अर्थ आनन्दानुभूति हो गया है।

2.2.2.5 अर्थादेश :

अर्थादेश का अर्थ है एक अर्थ के स्थान से दूसरे अर्थ का आ जाना। आदेश का मूल अर्थ है एक को हटाकर दूसरे का आना। अर्थादेश में शब्द का पुराना अर्थ हट जाता है और नया अर्थ आ जाता है। इसमें अर्थ का विस्तार या संकोच नहीं होता बल्कि बदल जाता है। जैसे 'मौन' का मूल अर्थ था मुनिकर्म या मुनियों का आचरण परन्तु अब इसका अर्थ पूर्णतया परिवर्तित होकर चुप रहना हो गया है। 'पाषण्ड' सम्राट अशोक का सम्प्रदाय विशेष था जिसे पर्याप्त दान दिया जाता था, लेकिन कालांतर में उनके भ्रष्ट आचरण के कारण यह पाखण्ड अर्थात् ढोंग हो गया। आकाशवाणी केवल देवताओं की होती थी अब यही शब्द आल इंडिया रेडियो के लिए प्रयुक्त होता है। खाद्य तत्सम शब्दों का अर्थ भक्ष्य यानी खाने योग्य वस्तु थी परंतु उसी से परिवर्तित शब्द खाद केवल कृषि उर्वरक के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। संस्कृत में वाटिका का अर्थ बगीचा था, बंगला में बाड़ी–घर के अर्थ में हो गया।

इन तीनों दिशाओं पर विचार करते समय यह तथ्य परिलक्षित किया जाता है कि कुछ स्थानों पर अर्थ अपने मूल अर्थ से उत्कृष्ट हो गया और कहीं पर निकृष्ट हो गया और कहीं पूर्णतया बदल गया।

बुरे और अच्छे भाव की दृष्टि से अर्थ परिवर्तन की दो दिशाएं होती हैं :

- *अर्थापकर्ष* और
- *अर्थोत्कर्ष*

2.2.2.6 अर्थापकर्ष :

अर्थ परिवर्तन में जब कुछ शब्दों का अपकर्ष होता है अर्थात् हीनता आती है तब अर्थापकर्ष माना जाता है। असुर संस्कृत में –असु+र– प्राण सम्पन्न देवतावाचक था परन्तु संस्कृत में ही वह राक्षस वाचक हो गया। 'भद्र' शब्द सज्जन के लिए प्रयुक्त होता था, उसी से विकसित भद्दा गंदे–बुंरे अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। 'मधुर' मीठे अर्थ वाला शब्द भोजपुरी में 'माहुर' विष हो गया।

'चतुर्वेदी' से अर्थ था चारों वेदें का ज्ञाता परन्तु इसी से विकसित चौबे केवल अधिक खाने वाले के अर्थ में हो गया। वज्र बटुक –पक्का ब्रह्मचारी– अब बजरबट्टू –अत्यंत मूर्ख– हो गया। 'जुगुप्सा' शब्द 'गप' धातु से बना जिसका पहले छिपाने के अर्थ में प्रयोग होता था। इसके अर्थ का पतन होकर घृणा के रूप में प्रयुक्त होने लगा।

तत्सम शब्द प्रायः अपने सही और अच्छे अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। लेकिन उनके तद्भव रूप का अर्थापकर्ष हो जाता है। जैसे 'लुंचित' शब्द पहले जैन साधुओं के लिए आदर के साथ प्रयुक्त होता था लेकिन इसका तद्भव रूप लुच्चा, बदमाश के लिए प्रयुक्त होता है। किसी भाषा के अर्थापकर्ष के अध्ययन से उसके बोलने वालों के मनोविज्ञान पर प्रकाश पड़ता है।

अर्थापकर्ष का भाषा के शब्द समूह पर कभी–कभी महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। अर्थापकर्ष की दृष्टि से जो शब्द अधिक अश्लील हो जाते हैं वे धीरे–धीरे शब्द समूह से निकल जाते हैं और उनके स्थान पर नये शब्द आ जाते हैं। अर्थ परिवर्तन में उत्कर्ष की अपेक्षा अपकर्ष की प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है।

2.2.2.7 अर्थोत्कर्ष :

इस दिशा में अर्थ का उत्कर्ष या उन्नयन होता है, यह अपकर्ष के विपरीत है। इसमें पहले शब्द बुरे अर्थ में था लेकिन कालांतर में अच्छे अर्थ में प्रयुक्त होता है। संस्कृत में 'साहस' चोरी–डाका आदि में प्रयुक्त होता था, परन्तु अब अच्छे अर्थ में होता है। संस्कृत में कर्पट फटे वस्त्र के लिए

प्रयुक्त होता था। पालि में भी कर्पट का यही अर्थ था, लेकिन हिन्दी में ये अच्छे से अच्छे वस्त्र के लिए होता है।

इसी प्रकार बोपदेव ने अपने व्याकरण का नाम मुग्ध बोध रखा था अर्थात् ऐसा व्याकरण जो मुग्ध यानि मूर्ख को भी बोध करा दे। परन्तु अब मुग्ध मोहित के अर्थ में प्रयुक्त होता है। फिरंगी शब्द पहले पुर्तगाली डाकू के लिए आता था बाद में इसका अर्थ हमारे यहां यूरोपियन अच्छे अर्थों में हुआ।

इस प्रकार शब्दों के उत्कर्ष में समाज के मनोविज्ञान का सुंदर प्रतिबिम्ब दिखाई देता है और भाषाविज्ञान के प्रकाश में मानव समाज के मनोविज्ञान के विकास का सुन्दर इतिहास तैयार किया जाता है।

मूर्तीकरण : जब शब्द का अर्थ प्रारम्भ में अमूर्त हो या बाद में मूर्त बन जाये, दिशा के परिवर्तन को मूर्तीकरण कहते हैं। जैसे देवता अर्थ देवत्व भाववाचक संज्ञा के रूप में अमूर्त था, लेकिन फिर देव जातिवाचक संज्ञा और विशेषण के रूप में हुआ। प्रारम्भ में सामग्री शब्द का भाववाचक अर्थ था संचित फिर यह वस्तुवाची हो गया।

अमूर्तीकरण : यह मूर्तीकरण का विपरीत दिशा में अर्थ परिवर्तन है। इसमें शब्द पहले जातिवाचक होता है फिर वह शब्द भाववाचकता प्रकट करने लगता है। कांटा प्रारम्भ में जातिवाचक रहा लेकिन कालांतर में यह पीड़ा या कष्ट के रूप में प्रतीकात्मक अर्थात् भाववाचक हुआ। इसे अर्थ का अमूर्तीकरण कहते हैं। मूर्तीकरण और अमूर्तीकरण की दिशा में परिवर्तन अपेक्षाकृत कम है।

शब्दार्थ :

अवयव – अंग,

काकल – कौआ,

जिह्वा – जीभ,

अणि – नोंक,

विवर – छिद्र,

करण – अस्थिर जंग।

2.3 सारांश :

- जिन अंगों की सहायता से भाषा ध्वनियों का उत्पादन किया जाता है उन्हें वाग्यंत्र का उच्चारण अवयव कहा जाता है ।
- श्वास नलिका के ऊपरी भाग में अभिकाकल से थोड़ा नीचे ध्वनि उत्पादन का प्रमुख अंग है, जिसे स्वरयंत्र या ध्वनियंत्र कहा जाता है। इसी से होकर निःश्वास बाहर आता है।
- स्वरयंत्र में ओठो के आकार की समानांतर पड़ी हुई परदे की तरह दो मांसल झिल्लियां होती हैं, इन्हें स्वरतंत्रियां कहते हैं। ये दोनों स्वरतत्रियां श्वासनली के ऊपर परदों का काम करती है। स्वरतंत्री अत्यंत कोमल, लचीली और कम्पनशील होती है। ये विभिन्न ध्वनियों के उत्पादन की अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न रूप से खुलती बंद होती रहती हैं।
- भोजन नलिका विवर के साथ श्वासनलिका की ओर झुका हुआ, जीभ के आकार का मांसल अंग है, इसे अभिकाकल या स्वरयंत्र मुखावरण कहते हैं । इसका कार्य भोजन के समय श्वसन नलिका को बंद करना होता है और बोलते समय भोजन नलिका मुख को।
- नासिका विवर और मुख विवर को अलगाने वाले स्थान पर जीभ की आकृति का गोल मांस पिण्ड होता है इसे अलिजिह्वा कहते हैं। यह कोमल तालु का निचला अंतिम भाग है। यह नासिका मार्ग या मुख मार्ग की वायु को रोकने का कार्य करता है।
- ध्वनि उत्पादन में यह महत्त्वपूर्ण अवयव है। गलबिल की ओर से अलिजिह्वा का ऊपरी भाग है। यह कोमल मांस खण्ड है। यह उच्चारण स्थान और सहायक दोनों है। अतः यह करण कहलाता है। यह नीचे होने पर मुख विवर मार्ग को बन्द कर देता है और तनकर ऊपर होने पर नासिका मार्ग को।
- कठोर तालु और कोमल तालु के बीच का मार्ग मूर्धा है। मुख विवर के ऊपरी भाग में यह सर्वोच्च उच्चारण स्थान है। पाश्चात्य भाषा विज्ञानी इसे कठोर तालु का ही एक अंश मानते हैं और इसकी पृथक् सत्ता नहीं मानते। जीभ को उलटकर इस स्थान पर पहुंचाया जाता है ।
- ऊपर के दो दांतों का भीतर की ओर से ध्वनि उच्चारण में महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये जिह्वा नोक से मिलकर विभिन्न ध्वनियों के उत्पादन में सहायक होते हैं। अंग्रेजी के दिस, दैट के द् के उच्चारण में इनका उपयोग स्पष्ट है।

- ओष्ठ वाग्यंत्र का आच्छादक भाग है। निचला होंठ अधिक सक्रिय रहता है, अतः ध्वनि विज्ञान में ओष्ठ शब्द प्रायः निचले ओठ से लिया जाता है। दोनों ओठों की सहायता से उच्चरित प् वर्गीय व्यंजन ओष्ठ्य कहलाते हैं।
- जिह्वा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं प्रयत्नशील ध्वनि उत्पादक अवयव है। इसी के पर्याय जुबान या स्पदहनं (लॅटिन) भाषा के पर्याय हैं। संसार की सभी भाषाओं की स्वर व्यंजन ध्वनियों का उत्पादन अंग जिह्वा ही है। वायु अवरोध इसी का कार्य है। इसके पांच भाग है - जिह्वाणि जिह्वाग्र-जिह्वा-मध्य, जिह्वा-पश्च जिह्वामूल।
- जिह्वाग्र कठोर तालु के साथ मिलकर वायु को पूर्णतया रोक लेता है। इसकी सहायता से उत्पन्न ध्वनियां तालव्य कही जाती हैं। 'च' वर्गीय व्यंजन ध्वनियां तालव्य हैं। यह भाग निःश्वास को मुख विवर में विभिन्न रूपों में प्रभावित करके इ, ई, ए, ऐ आदि अग्र स्वरों के उत्पादन में सहायक होता है।
- नासिका विवर गलबिल से प्रारम्भ होकर नासिका के अग्रभाग तक फैला हुआ है। श्वास-निःश्वास का यही मुख्य मार्ग है। इस विवर से निःश्वास निकलने पर नासिक्य -पांचवी ध्वनि- व्यंजन ध्वनियों का उच्चारण होता है।
- अर्थ शब्द की आत्मा है, शब्द शरीर है । जिस प्रकार शरीर के ज्ञान के बाद आत्मा का ज्ञान अपेक्षित है उसी प्रकार ध्वनि, पद, वाक्य के ज्ञान के बाद अर्थ रूपी आत्मा का ज्ञान अपेक्षित और अनिवार्य है।
- आचार्य पाणिनी ने भाषा का सार अर्थ को माना है। अतः अर्थवान या सार्थक शब्दों को ही प्रांतिपादिक कहा।
- आचार्य पतंजलि ने 'महाभाष्य' में कहा है ''अर्थ ज्ञान के बिना जो शब्द मूल पाठ के रूप में दुहराया जाता है, वह उसी प्रकार ज्ञान को प्रज्वलित नहीं करता जैसे बिना अग्नि में डाला हुआ सूखा ईंधन।''
- अर्थ परिवर्तन के निम्न कारक है : परिवेश परिवर्तन, विनम्रता पदर्शन, सुश्रायता, व्यंग्य प्रयोग, भावात्मक बल, सामान्य और विशेष, वैयक्तिक ज्ञान भेद, शब्दार्थ की अनिश्चितता, अज्ञान और भ्रांति, एक तत्त्व की प्रधानता, गौण अर्थ की मुख्यता, एक शब्द के विभिन्न

रूप, व्याकरणिक कारण, काल भेद, अन्य भाषा शब्द, अन्य भाषा प्रभाव, संक्षिप्तता, पुनरावृत्ति, और सादृश्य।

2.4 सूचक शब्द :

वाग्यंत्र : वाग्यंत्र के प्रमुख भाग हैं– 1. स्वर यंत्र, 2. स्वर-तंत्रियां, 3. अभिकाकल, 4. अलिजिह्वा, 5. कोमल तालु, 6. मूर्धा, 7. कठोर तालु, 8. वर्त्स, 9. दन्त, 10. ओष्ठ, 11. जिह्वाणि, 12. जिह्वाग्र, 13. जिह्वामध्य, 14. जिह्वापश्च, 15. जिह्वामूल, 16. नासिका विवर।

स्वरयंत्र : श्वास नलिका के ऊपरी भाग में अभिकाकल से थोड़ा नीचे ध्वनि उत्पादन का प्रमुख अंग है,

जिसे स्वरयंत्र या ध्वनियंत्र कहा जाता है। इसी से होकर निःश्वास बाहर आता है।

स्वरतंत्रिया : इसी स्वरयंत्र में ओठो के आकार की समानांतर पड़ी हुई परदे की तरह दो मांसल झिल्लियां होती हैं, इन्हें स्वरतंत्रियां कहते हैं। ये दोनों स्वरतत्रियां श्वासनली के ऊपर परदों का काम करती है। स्वरतंत्री अत्यंत कोमल, लचीली और कम्पनशील होती है। ये विभिन्न ध्वनियों के उत्पादन की अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न रूप से खुलती बंद होती रहती हैं। ध्वनि की मधुरता इन्हीं पर निर्भर होती है।

अभिकाकल : भोजन नलिका विवर के साथ श्वासनलिका की ओर झुका हुआ, जीभ के आकार का मांसल अंग है, इसे अभिकाकल या स्वरयंत्र मुखावरण कहते हैं । इसका कार्य भोजन के समय श्वसन

नलिका को बंद करना होता है और बोलते समय भोजन नलिका मुख को।

अलिजिह्वा : नासिका विवर और मुख विवर को अलगाने वाले स्थान पर जीभ की आकृति का गोल मांस पिण्ड होता है इसे अलिजिह्वा कहते हैं। यह कोमल तालु का निचला अंतिम भाग है। यह नासिका मार्ग या मुख मार्ग की वायु को रोकने का कार्य करता है।

कोमल धातु : ध्वनि उत्पादन में यह महत्त्वपूर्ण अवयव है। गलबिल की ओर से अलिजिह्वा का ऊपरी भाग है। यह कोमल मांस खण्ड है। यह उच्चारण स्थान और सहायक दोनों है। अतः यह करण कहलाता है। यह नीचे होने पर मुख विवर मार्ग को बन्द कर देता है और तनकर ऊपर

होने पर नासिका मार्ग को। यह भी अलिजिह्वा के साथ मुख विवर और नासिका विवर के मध्य कपाट का काम करता है।

मूर्धा : कठोर तालु और कोमल तालु के बीच का मार्ग मूर्धा है। मुख विवर के ऊपरी भाग में यह सर्वोच्च उच्चारण स्थान है। पाश्चात्य भाषा विज्ञानी इसे कठोर तालु का ही एक अंश मानते हैं और इसकी पृथक् सत्ता नहीं मानते। जीभ को उलटकर इस स्थान पर पहुंचाया जाता है ।

कठोर तालु : मुख विवर के ऊपरी भाग में मूर्धा और वर्त्स के बीच का भाग है। इस स्थान पर हड्डी के ऊपर मांस का आवरण है। वाग्यंत्र का यह स्थिर उच्चारण स्थान है। इससे उच्चरित ध्वनियां तालव्य कहलाती हैं। इ, ई स्वर ध्वनियां तथा व्यंजनों में च् वर्गीय व्यंजन ध्वनियां तालव्य है।

वर्त्स : यह मुख विवर में ऊपरी दांतों के मूल से लेकर कठोर तालु के प्रारम्भ तक का भाग है। दांतों की जड़ से उभरा हुआ खुरदरा भाग 'वर्त्स' कहलाता है। जीभ के विभिन्न भागों के स्पर्श या समीपवर्ती होने से यह मुख्य ध्वनि उत्पादन स्थान है।

दन्त : ऊपर के दो दांतों का भीतर की ओर से ध्वनि उच्चारण में महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये जिह्वा नोक से मिलकर विभिन्न ध्वनियों के उत्पादन में सहायक होते हैं। अंग्रेजी के दिस, दैट के द् के उच्चारण में इनका उपयोग स्पष्ट है।

ओष्ठ : यह वाग्यंत्र का आच्छादक भाग है। निचला होंठ अधिक सक्रिय रहता है, अतः ध्वनि विज्ञान में ओष्ठ शब्द प्रायः निचले ओठ से लिया जाता है। दोनों ओठों की सहायता से उच्चरित प् वर्गीय व्यंजन
ओष्ठ्य कहलाते हैं।

जिह्वाणि : जिह्वा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं प्रयत्नशील ध्वनि उत्पादक अवयव है। इसी के पर्याय जुबान या स्पदहनं ;लॅटिनद्ध भाषा के पर्याय हैं। संसार की सभी भाषाओं की स्वर व्यंजन ध्वनियों का उत्पादन अंग जिह्वा ही है। वायु अवरोध इसी का कार्य है। इसके पांच भाग है – जिह्वाणि जिह्वाग्र–जिह्वा–मध्य, जिह्वा–पश्च जिह्वामूल।

जिह्वाग्र : यह भाग कठोर तालु के साथ मिलकर वायु को पूर्णतया रोक लेता है। इसकी सहायता से उत्पन्न ध्वनियां तालव्य कही जाती हैं। 'च' वर्गीय व्यंजन ध्वनियां तालव्य हैं। यह भाग

निःश्वास को मुख विवर में विभिन्न रूपों में प्रभावित करके इ, ई, ए, ऐ आदि अग्र स्वरों के उत्पादन में सहायक होता है।

जिह्वामध्य : यह कठोर तालु एवं कोमल तालु के संधिस्थल के नीचे का भाग है। इसके द्वारा मध्यस्वर या केन्द्रीय स्वर 'अ' का उच्चारण होता है।

जिह्वापश्च : यह भाग निःश्वास को विभिन्न रूपों से प्रभावित करके पश्च स्वर आ, उ, ऊ, ओ, औ के उच्चारण में सहायक होता है। यह कोमल तालु के साथ मिलकर क वर्गीय व्यंजन ध्वनियों का उत्पादन करता है।

जिह्वामूल : जिह्वामूल कोमल तालु और अलिजिह्वा से मिलकर अरबी की क़, ख़, ग़, ध्वनियां उत्पन्न करता है इन्हें जिह्वामूलीय ध्वनियां कहा जाता है।

नासिका विवर : यह गलबिल से प्रारम्भ होकर नासिका के अग्रभाग तक फैला हुआ है। श्वास–निःश्वास का यही मुख्य मार्ग है। इस विवर से निःश्वास निकलने पर नासिक्य –पांचवी ध्वनि– व्यंजन ध्वनियों का उच्चारण होता है।

vFkZ dh vo/kkj.kk % vFkZ 'kCn dh vkRek gS] 'kCn 'kjhj gS A ftl izdkj 'kjhj ds Kku ds ckn vkRek dk Kku visf{kr gS mlh izdkj /ofu] in] okD; ds Kku ds ckn vFkZ :ih vkRek dk Kku visf{kr vkSj vfuok;Z gSA izkjaHk esa vusd Hkk"kk oSKkfudksa us bls n'kZu dk fo"k; dgdj Hkk"kkfoKku esa j[kus ij vkifŸk dh FkhA

2.5 स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न :

1. उच्चारण अवयवों का परिचय दें।
2. स्वर–व्यंजन ध्वनियों के वर्गीकरण के आधार स्पष्ट करें
3. अर्थ परिवर्तन के कारण स्पष्ट करें।
4. अर्थ परिवर्तन की दिशाएं स्पष्ट करें।

2.6 संदर्भित पुस्तकें :

- **शुद्ध हिन्दी**, लेखक – डा. हरदेव बाहरी, 2004
- **हिन्दी व्याकरण**, लेखक – पं. कमला प्रसाद गुरू, 2003
- **अच्छी हिन्दी**, लेखक – रामचंद्र वर्मा, 2003
- **हिन्दी का सही प्रयोग**, लेखक – नीलम मान, 2005

o **भाषा शास्त्र तथा हिन्दी भाषा की रूपरेखा**, लेखक – देवेंद्र कुमार शास्त्री, 2003

बीए मास कम्युनिकेशन, प्रथम वर्ष,

हिन्दी– बीएमसी 102

खंड–बी **इकाई – 1** **अध्याय–3**

पर्याय, विलोम व अनेकार्थी शब्द

लेखक : डा. मधुसूदन पाटिल, पूर्व वरिष्ठ व्याख्याता।

एस.आई.एम. शैली में परिवर्तन : डा. मनोज छाबड़ा, हिन्दी प्रवक्ता ।

अध्याय संरचनाः

इस अध्याय में हम पर्याय, विलोम, व अनेकार्थी शब्दों का परिचय प्राप्त करेंगे। इन शब्दों की अवधारणा पर विशेष जोर दिया जाएगा। रुप रचना व वाक्य रचना विषयों के बारे में विस्तार से चर्चा की जाएगी। अध्याय की संरचना इस प्रकार रहेगी :

3.0 उद्देश्य

3.1 परिचय

3.2 विषय वस्तु की प्रस्तुति

3.2.1 पर्याय शब्द

3.2.2 विलोम शब्द

3.2.3 अनेकार्थी शब्द

3.2.4 रुप रचना

3.2.5 वाक्य रचना

3.3 सारांश

3.4 सूचक शब्द

3.5 स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

3.6 संदर्भित पुस्तकें

3.0 उद्देश्यः

इस अध्ययाय के उद्देश्य इस प्रकार हैंः

- o पर्याय शब्दों का जायजा लेना
- o विलोम की शब्दों के बारे में जानना
- o अनेकार्थी शब्दों का जायजा लेना
- o रुप रचना के बारे में जानना
- o वाक्य रचना के बारे में जानना

3.1 परिचयः

‘kCn vusd izdkj ds gksrs gSaA buesa dqN ,sls ‘kCn gksrs gSa ftuds vusd vFkZ fudyrs gSaA ,sls ‘kCn vusdkFkhZ dgykrs gSaA leku vFkZ esa ,d&nwljs ds LFkku ij iz;ksx fd, tk ldus okys ‘kCnksa dks lekukFkhZ dgk tkrk gS rks ,d gh ‘kCn ds leku vFkZ okys fofHkUu ‘kCn tks izk;% ,d&nwljs ds LFkku ij iz;ksx ugha fd, tk ldrsA ,sls ‘kCn tks ijLij foijhr vFkZ fy, gksrs gSa] foyksekFkhZ dgykrs gSaA

fgUnh Hkk"kk dk ‘kCn vk/kkj cgqr foLr`r gSA bldk dkj.k ;gh gS fd ;gka ,d gh ‘kCn ds leku vFkZ okys vusd ‘kCn ik, tkrs gSa rks mlds foykse vFkZ okys ‘kCnksa dh Hkh deh ugha gksrhA

blh izdkj ,d ds LFkku ij iz;ksx fd, tk ldus okys ‘kCn Hkh fgUnh esa i;kZIr ek=k esa miyC/k gksrs gSaA ;gh dkj.k gS fd fgUnh esa gj lanHkZ esa cgqr fofo/krk ikbZ tkrh gSA dfork esa vR;ar vkyadkfjd Hkk"kk dk v/;;u fd;k tkrk gS rks iqLrdksa vkfn esa cgqr vkSipkfjd Hkk"kk dkA

bl v/;k; esa ge i;kZ;okph] foyksekFkhZ vkSj vusdkFkhZ ‘kCnksa dk foLr`r :i esa v/;;u djsaxsA #i jpuk o okD; jpuk fo”k;ksa ds ckjs esa foLrkj ls ppkZ dh tk,xhA

3.2 विषय वस्तु की प्रस्तुति :

इस अध्याय में पर्यायवाची, विलोमार्थी और अनेकार्थी शब्दों पर विशेष जोर दिया जाएगा। रुप रचना व वाक्य रचना विषयों के बारे में विस्तार से चर्चा की जाएगी। विषयों की प्रस्तुति इस प्रकार रहेगी :

- पर्याय शब्द
- विलोम शब्द
- अनेकार्थी शब्द
- रुप रचना
- वाक्य रचना

3.2.1 पर्याय शब्द :

उन दो या अधिक भाषिक अभिव्यक्तियों को पर्याय कहा जाता है जो अर्थ की दृष्टि से एक या प्रायः एक-सी होती हैं। वस्तुतः बहुत कम अभिव्यक्तियां परस्पर एकार्थी होती हैं। तथाकथित पर्याय प्रायः समानार्थी होते हैं। वस्तुतः पर्याय पूर्ण पर्याय न होकर आंशिक पर्याय होते हैं। पूर्ण पर्याय ऐसी भाषिक अभिव्यक्तियां होती हैं, जो किसी भाषा में बिना सन्दर्भ बदले एक-दूसरे के स्थान पर आ सकें। पानी और जल पर्यायवाची हैं। परन्तु सभी सन्दर्भों में ये एक-दूसरे के स्थान पर नहीं आ सकते। जलपान को पानीपान नहीं कहा जा सकता। शर्म के मारे पानी-पानी हो जाना को शर्म के मारे जल-जल हो जाना भी नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार दया और कृपा पर्याय है, परन्तु पूर्ण पर्याय नहीं हैं। किसी की बुरी दशा को देखकर दया आ जाती है, परन्तु कृपा नहीं आती। प्रार्थना पत्र में तो लिखा जा सकता है कि मेरी नियुक्ति करने की कृपा करें परंतु मेरी नियुक्ति करने की दया करें नहीं लिखा जा सकता। डा. भोलनाथ तिवारी के अनुसार हिन्दी में अनेक प्रकार के पर्याय मिलते हैं।

- सूक्ष्मांतरी पर्याय - इनमें अर्थ का अत्यंत सूक्ष्म अंतर होता है। जैसे -कृपा-दया, लड़का-बेटा, गर्व-घमंड आदि।
- मूल्यांतरी पर्याय - इनमें अच्छे-बुरे मूल्य का अंतर होता है। जैसे - होशियार - चालाक, अनुयायी - पिछलग्गू, बहुप्रयुक्त -घिसापिटा आदि।

- क्षेत्रीयता पर्याय – इनका भौगोलिक क्षेत्र अलग–अलग होता है। जैसे– भैंस के बच्चे लिए 'पाडा' (भोजपुरी), पड्उा(ब्रज), पड्रा (कन्नौजी), काट्डा (हरियाणा)।
- शैलीयता पर्याय – ऐसे पर्याय में अर्थ तो समान होते हैं परन्तु अलग–अलग शैलियों में उनका प्रयोग होता है। जैसे– कार्यालय –दफ्तर, अधिकारी–अफसर, पत्र–चिट्ठी, खत।
- सहप्रयोगांतरी पर्याय – इनके सहप्रयोग में अंतर होता है। जैसे –गंदा और गंदला। गंदला केवल पानी के साथ होता है, आदमी के साथ नहीं । जंगली–बनैला। बनैला केवल सूअर के साथ प्रयुक्त होता है।
- परस्पर–अच्छादी पर्याय – ये कुछ प्रयोगों में समान अर्थ वाले होते हैं और कुछ में भिन्न अर्थ वाले जैसे – लम्बा और बड़ा। लम्बा लड़का ओर बड़ा लड़का एकार्थी नहीं हैं।
- आदरसूचक पर्याय – यहां आदर के कारण सामाजिक अर्थ का अंतर होता है। जैसे तुम और आप हिन्दी भाषा में पर्याप्तता प्रायः सभी भाषिक स्तरों पर मिलती है।

भाषिक स्तर दृष्टि से कुछ पर्याय निम्नलिखित हैं–

1. उपसर्ग वर पर्याय – प्रभाग–विभाग, दुष्कर्म–कुकर्म, कुपुत्र–कपूत, सुपुत्र–सपूत, दुर्गुण–अवगुण।

2. प्रत्यय स्तर पर्याय – बचपन–बचपना, चालू–चालबाज, दुकानदार–दुकानवाला, समाजी–सामाजिक।

3. शब्द स्तर पर्याय – माननीय–मान्य, दरिद्र–धनहींन, देवालय–देवस्थान।

4. रूप स्तर पर्याय – करिए–कीजिए, उन्हें–उनको, तुम्हें–तुमको।

5. वाक्य स्तर पर्याय –

राम चल नहीं सकता – राम से चला नहीं जाता।

वह गिर गया – वह गिर पड़ा।

क्या तुम जा रहे हो ? – तुम जा रहे हो क्या ?

6. मुहावरा स्तर पर्याय –

रास्ते में रोड़े अटकाना – रास्ते में कांटे बिखेरना।

कबाब में हड्डी – दालभात में मूसरचंद।

7. सामान्य अभिव्यक्ति पर्याय - घोडे बेचकर सोना - निश्चिंतता से सोना।

इसी प्रकार व्याकरणिक दृष्टि से कुछ पर्याय निम्नलिखित हैं-

1. व्यक्तिवाचक संज्ञा पर्याय - भारत, हिन्दुस्तान, इंडिया।
2. जातिवाचक संज्ञा पर्याय - आदमी, मनुष्य, इंसान।
3. भाववाचक संज्ञा पर्याय - मधुरता-माधुर्य, सुंदरता-सौंदर्य।
4. सर्वनाम पर्याय - स्वयं, स्वतः, अपने आप, खुद।
5. विशेषण पर्याय - सुंदर, खूबसूरत।
6. क्रिया पर्याय - बोलना-कहना, घूमना -टहलना, भागना -दौड़ना।
7. क्रिया विशेषण पर्याय - ऐसे, यों इस तरह, जैसे, ज्यों जिस तरह।

पर्यायता की दृष्टि से हिन्दी की सम्पन्नता के कारण ऐतिहासिक हैं। अप्रभंश से परम्परागत अन्य भाषाओं से गृहीत तथा तत्सम स्रोतों से हिन्दी के शब्द भण्डार का विकास हुआ है। अपभ्रंश परम्परा से विकसित हिन्दी के शब्दों की संख्या लगभग पचहत्तर हजार है। अन्य भाषाओं से गृहीत शब्द संख्या दस हजार से अधिक है । इनमें मुख्यतः अरबी-फारसी, अंग्रेजी, तुर्की, पुर्तगाली, रूसी, चीनी, जापानी, पंजाबी, द्रविड़, गुजराती, मराठी, बंगला आदि के हैं।

भक्ति आंदोलन, छायावाद में बंगला प्रभाव, स्वांतत्रयोत्तर शब्द पूर्ति के लिए परिभाषिक शब्द निर्माण, नए तत्सम शब्द आदि का निर्माण हिन्दी में हुआ है। अनेक देशज शब्दों ने भी हिन्दी पर्याय श्रृंखला को विकसित किया है। सामासिक संस्कृति ने भी हिन्दी पर्यायता को विकसित किया है। मां-माता, अम्मा, मम्मी, खेतीहर - कृषक, किसान, काश्तकार, कचहरी-अदालत, कोर्ट, न्यायालय, अखबार -समाचार-पत्र, न्यूज पेपर, दफ्तर -कार्यालय, ऑफिस आदि इसी के उदाहरण हैं। संस्कृत के अक्षय भण्डार का ही परिणाम है कि अकेले विष्णु के लिए एक हजार पर्यायवाची नाम विष्णु सहस्रनाम में सम्मिलित हैं।

3.2.2 विलोम शब्द :

अर्थ के स्तर पर एक–दूसरे के विपरीत भाषिक इकाइयां विलोमार्थी या विपर्याय कहलाती हैं। जैसे–ज्ञान–अज्ञान, प्रकाश–अंधकार। वस्तुतः विलोमता किसी न किसी आधार पर होती है । इसीलिए एक शब्द के कई विलोम हो सकते हैं। शासक–शासित के आधार पर राजा का विलोम प्रजा है, सम्पत्ति के आधार पर राजा का विलोम रंक है, लिंग के आधार पर रानी विलोम है। इस प्रकार तीन आधारों पर राजा के तीन विलोम होंगे-प्रजा, रंक, रानी। इस प्रकार अलग–अलग संदर्भों में भी अलग–अलग विलोम होंगे। काला शब्द का विलोम कपड़े के सन्दर्भ में सफेद होगा, किन्तु आदमी के प्रसंग में गोरा होगा।

लिंग के आधार पर विरोधार्थी शब्दों को विलोम माना जाए या नहीं यह विवादास्पद विषय है। यदि माना जाए तो लड़का–लड़की, माता–पिता आदि शब्द परस्पर विलोम माने जाएंगे। इसी प्रकार वचन के आधार पर एकवचन–बहुवचन परस्पर विलोम माने जाएं, यह भी विवादास्पद विषय है।

विलोमता हिन्दी में अनेक भाषिक स्तरों पर मिलती है–

1. उपसर्ग स्तर – अज्ञ–विज्ञ, सज्जन–दुर्जन, संयोग–वियोग, विजय–पराजय, अवगुण–सदगुण आदि।
2. उपसर्ग–प्रत्यय स्तर – निर्धन–धनवान, निर्बल–बलवान, बेईमान–ईमानदार।
3. उपसर्ग–शब्द स्तर – स्वार्थ–परमार्थ, स्वाधीन–पराधीन, स्वतंत्र–परतंत्र।
4. प्रत्यय–प्रत्यय स्तर – कृतज्ञ, कृतघ्न।
5. प्रत्यय–शब्द स्तर –बुद्धिमान–बुद्धिहीन, दयालु–दयाहीन।
6. शब्द–शब्द स्तर – मित्र–शत्रु, स्वर्ग–नरक, आशा–निराशा, कठिन–सरल।
7. वाक्य–वाक्य स्तर–जो सो रहा है–जो नहीं सो रहा है, जो दौडेगा–जो नहीं दौड़ेगा, जो दौड़ रहा है –जो नहीं बैठ रहा है।

इसी प्रकार अन्य भाषिक स्तरों पर भी हिन्दी में विलोमता मिलती है–

1. व्यक्तिवाचक संज्ञा – राम–रावण।
2. जातिवाचक संज्ञा – आदमी–जानवर।

3. भाववाचक संज्ञा - यश-अपयश, उन्नति-अवनति।

4. विशेषण - उचित-अनुचित, अच्छा-बुरा।

5. क्रियापद - आना-जाना, लेना-देना।

6. क्रिया विशेषण-दाएं-बाएं, ऊपर-नीचे।

blh izdkj fgUnh esa jpuk dh n`f"V ls Hkh #<+ vkSj ;kSfxd fojks/kh 'kCn Hkh gSaA ;kSfxd 'kCn dh jpuk fgUnh eas milxZ] izR;; vkfn ls gksrh gSA i;kZ;rk dh rjg foyksserk dh n`f"V ls Hkh fgUnh esa vR;ar le`) Hkkf"kd vfHkO;fDr;ka gSaA

3.2.3 अनेकार्थी शब्द :

शब्द मुख्यतः दो प्रकार के हैं : एकार्थक शब्द और अनेकार्थक शब्द। एकार्थक शब्दों का एक ही मुख्य अर्थ होता है जैसे पुस्तक, नदी, वृक्ष। लेकिन एकार्थक शब्द भी विभिन्न कारणों से विभिन्न अर्थों का बोध कराते हैं जैसे-शाम हो गई । कुछ शब्द एक से अधिक अर्थों का बोध कराते हैं उन्हें अनेकार्थक शब्द कहते हैं। एक शब्द के अनेक अर्थ कैसे हुए यह विवाद-विषय है।

सामान्यतः क्रिया के अर्थ की समानता के आधार पर गुण साम्य, सादृश्य और संसर्ग के आधार पर शब्द अनेकार्थक हो जाते हैं- जैसे कर-हाथ, किरण, टैक्स। अर्थ निर्णय की समस्या अनेकार्थक शब्दों में ही नहीं एकार्थक शब्दों में भी होती है।

भर्तृहरि ने सुन्दर विचार प्रस्तुत किया है कि समानार्थक और अनेकार्थक शब्दों का कहां पर अर्थ लिया जाएगा, इसका निर्णय प्रयोक्ता के आधार पर होगा । प्रयोक्ता जहां पर जिस अर्थ में उनका प्रयोग करना चाहता है वही अर्थ उसका अभिधेय है।

शब्द स्तर की अनेकार्थकता के विकास में मूल में मुख्यतः निम्नलिखित कारण काम करते हैं-

1- 'kCn ds ?kVd ds ,dkf/kd vFkZ gksuk & mnkgj.kkFkZ flykbZ] cqukbZ] dVkbZ vkfn 'kCnksa ds nks vFkZ ,d Hkkookpd laKk vkSj nwwljk etnwjh] ^vkbZ* izR;; ds dkj.kA

2. शब्द को दो प्रकार के विश्लेषण से – बिहारी के दोहे –'को घटि ए बृषभानुजा, वे हलधर के बीर' में दो प्रकार से संधि और विश्लेषण करने में अर्थ निकलते हैं।

3. सादृश्य के कारण – इसमें भी मूल अर्थ और विकसित अर्थ मिलकर शब्द को अनेकार्थक बना देते हैं। जैसे, आकृति सादृश्य के कारण – कील–लोहे का, कर्ण, आभूषण, मुहांसे का, इसी प्रकार लौंग, गौला आदि।

गुण सादृश्य के कारण – कवच, जिरह–बख्तर, ताबीज, मंत्र। सूरदास, मोम, शेर, गाय, चोटी इसी प्रकार के अनेकार्थी शब्द हैं।

वर्ण सादृश्य : हरि का मूल अर्थ नीलहरा है, जिसके कारण – हरिबोले, हरि ही सुने, हरि गए, हरि के पास, हरि कूदे हरि में गए, हरि मन भए उदास। हरि में अनेक अर्थ मेंढक, सांप, पानी। इसी प्रकार सुर्खी, चांदनी, पानी के अनेक अर्थ हुए – 'रहिमन पानी राखिए, बिनु पानी सब सून, पानी गए न ऊबरै मोती, मानुस ,चून। क्रिया सादृश्य के कारण – काटने की क्रिया की समानता के आधार पर कलम–लेखनी, कल्ला – पौधा। इसी प्रकार हरिश्चन्द्र, नारद, मंथरा आदि व्यक्तिवाचक संज्ञाएं जातिवाचक अर्थ में विकसित होती हैं।

4. संख्याओं के अनेक संदर्भ के कारण – इससे भी अनेक अर्थ विकसित हो जाते हैं– इक्का, चौका, चौथा, दसवां।

5. प्रयोग के कारण अनेक अर्थ – चमचा–खाने का चम्मच और दूसरे के लिए प्रयुक्त होने वाला व्यक्ति – चमचा।

6. समीपता का सम्बन्ध – इसके कारण भी कुछ शब्दों में अनेकार्थकता उत्पन्न हो जाती है। फर्श का अर्थ, फर्श के अतिरिक्त उस पर बिछाया जानेवाला कपड़ा भी है। चश्म–आंख, चशमा (ऐनक), मूढ।

7. सामाजिक कारण – 'हरिजन' का मूल अर्थ भक्त था, गांधी जी ने इसी अर्थ में प्रयोग किया लेकिन धीरे–धीरे अछूत बन गया।

8. धार्मिक कारण – हराम और हलाल– अरबी में मूल अर्थ नाजायज और जायज, बेईमानी और ईमानदारी का है परंतु ये द्विअर्थक हो गये। अक्षत का अर्थ हिन्दू धर्म में विकसित हुआ।

9. राजनीतिक कारण – संस्कृत का 'मत' मूलतः निश्चित सिद्धान्त के लिए था, शांकर मत यही है कि राजनीतिक कारण से वह 'वोट' बना। समाज, क्रिया, पूंजी।

10. भिन्न स्रोतीय समध्वनि शब्द – ऐसे शब्द लगते एक हैं किन्तु होते नहीं। ये विभिन्न स्रोतों से आते हैं। जैसे काम, आम, बाट, अगर, कुल, आया (पुर्तगाली, फारसी, हिन्दी) चंदा।

अनेकार्थकता मुख्यतः निम्नलिखित प्रकारों की होती है–

- एक स्तरीय – घोड़ा (अश्व, बंदूक) घोड़ी (अश्वा, ऊंचा स्टूल) चश्मा (शीशे का सोता) आदि की अनेकार्थकता एकस्तरीय कहलाती है। मूल अर्थ के साथ विकसित दूसरा अर्थ।
- अनेक स्तरीय – यह निम्नस्तर या उच्चस्तर पर विकसित अनेकार्थकता होती है – आखिर मैं आदमी हूं (जानवर)। मेले मे बहुत आदमी थे। (मर्द, औरत, बच्चे)। सभा में काफी आदमी थे (मर्द, औरत)। उसका आदमी मर गया (पति) । इनमें वर्ग और सदस्य का सम्बन्ध होता है। इस प्रकार विश्व की विभिन्न भाषाओं में अनेकार्थकता कई स्तरों पर मिलती है।

3.2.4 रुप रचना :

भाषा विज्ञान के अध्ययन में वाक्य पहली इकाई है और रूप दूसरी महत्त्वपूर्ण इकाई है । भाषा को वाक्यों में खण्डित किया जाता है। वाक्य के खण्ड शब्द होते हैं और शब्द की इकाई ध्वनियाष। वस्तुतः कोशगत सामान्य शब्द और वाक्य में प्रयुक्त शब्द एक नहीं हैं। इस प्रकार शब्द के दो रूप हैं, एक मूल रूप होता है। वाक्य में प्रयुक्त शब्द ही 'पद' या 'रूप' कहलाता है।

संस्कृत में शब्द के मूल रूप को प्रकृति या प्रतिपादक कहते हैं और सम्बन्ध स्थापन के लिए जोड़े जाने वाले तत्त्व को प्रत्यय। 'महाभाष्यकार' पतंजलि ने लिखा है कि वाक्य में न तो केवल प्रकृति का प्रयोग हो सकता है न केवल प्रत्यय का, दोनों के मिलने से जो बनता है वही पद या रूप है । चीनी आदि आयोगात्मक भाषाओं में पद और शब्द की अलग सत्ता नहीं है। उसमें स्थानभेद से अर्थभेद हो जाता है।

मूल शब्द और वाक्य में प्रयुक्त रूपों का अन्तर हिन्दी में देखा जा सकता है – जैसे घोड़ा घास खाना। इसमें वाक्य के लिए जरूरी कर्त्ता, कर्म, क्रिया विद्यमान है लेकिन इस शब्द समूह का कोई अर्थ नहीं है। घोड़े ने घास को खाया बनाने से ही अर्थ प्रतिपादित किया जा सकता है। ए, ने, को, या आदि विभक्ति या प्रत्यय कहलाते हैं। वस्तुतः ये शब्दों के व्याकरणिक रूप हैं जो वाक्य की आवश्यकतानुसार अपना रूप निर्मित कर लेते हैं। इस प्रकार अकेले मूल शब्द में वाक्य में प्रयुक्त होने की योग्यता नहीं है।

भाषा विज्ञान में मूल शब्द में अर्थ निहित रहता है। अतः इसे अर्थ तत्त्व कहा जाता है। घोड़ा, घास, खाना अर्थ तत्त्व हैं। ए, ने, को, या वाक्य में पदों के परस्पर सम्बन्ध को व्यक्त कर रहे हैं। अतः इन्हें सम्बन्ध तत्त्व कहा जाता है। सम्बन्ध तत्त्व भाषा की वह प्रक्रिया है जो मूल शब्द में विद्यमान अर्थ को प्रकाशित कर देती है। इस प्रकार रूप एक व्याकरणात्मक संरचना है।
रूप तत्त्व की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं :-

- रूप तत्त्व भाषा गठन की लघुतम सार्थक इकाई है। इसका विश्लेषण करने से अर्थ नष्ट हो जाता है और वह निरर्थक स्वन मात्र रह जाता है, जैसे घोड़ा घो-ड़ा।
- रूप तत्त्व शब्द का पर्याय या स्थानापन्न नहीं हो सकता। 'खाना' शब्द है और 'खाता' रूप है।
- कुछ रूप रचनाएँ ऐसी होती हैं जिनमें रूप तत्त्वों की सत्ता ही आवश्यक नहीं होती अपितु उसका सुनिश्चित और व्यवस्थित क्रम भी आवश्यक रहता है, जिसके अभाव में अर्थ नष्ट हो जाता है। मनुष्यता – तामनुष्य, लड़कपन-पनलड़क।
- धातु और प्रत्ययों की सहायता से रूप निर्माण प्रक्रिया चलती है – गम् – गमन – आगमन।

हिन्दी संज्ञा की रूप रचना (लिंग, वचन, कारक, व्यवस्था के सन्दर्भ में) – रूप की दृष्टि से हिन्दी शब्द दो प्रकार के हैं – विकारी और अविकारी। विकारी है अ, संज्ञा, आ सर्वनाम, इ, विशेषण और ई क्रिया। अविकारी हैं – सम्बन्ध सूचक, समुच्चय बोधक, विस्मयादि बोधक, क्रिया विशेषण।

संज्ञा– किसी प्राणी, भाव, वस्तु या स्थान या बोध कराने वाले शब्दों को संज्ञा कहते हैं । संज्ञाएं चार प्रकार की हैं – व्यक्तिवाचाक, जातिवाचक, भाववाचक, क्रियार्थक।

संज्ञा में लिंग, वचन, कारक के अनुसार रूप रचना होती है। भाषा का प्रयोग करते समय विभिन्न भावों, विचारों के अनुकूल अर्थ परितर्वन के लिए शब्दों में जो विकार किए जाते हैं उन्हें रूपांतर या रूपरचना कहते हैं। संज्ञा की यौन प्रकृति का बोध कराने वाले रूप को लिंग कहते हैं। हिन्दी में दो प्रकार के लिंग प्रचलित हैं – पुल्लिंग और स्त्रीलिंग। संज्ञा की संख्या का बोध कराने वाले रूप को वचन कहते हैं।

हिन्दी में दो वचन प्रचलित हैं – एकवचन और बहुवचन। संज्ञा का वाक्य के अन्य पदों से सम्बन्ध बतानेवाले रूप्को कारक कहते हैं। ये आठ प्रकार के हैं – कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध, अधिकरण और सम्बोधन। इन सम्बन्धों को प्रकट करने वाले सम्बन्ध तत्त्वों को कारक विभक्ति कहते हैं।

लिंग व्यवस्था का सन्दर्भ – सामान्यतः हिन्दी संज्ञाओं में आकारांत शब्द पुलिंग होते हैं और ईकरान्त स्त्रीलिंग।

पुल्लिंग – दादा, बड़ा, काका, छोटा, स्त्रीलिंग – दादी, बड़ी, काकी, छोटी।

पुल्लिंग से स्त्रीलिंग रूप रचना करके हिन्दी के छः स्त्री प्रत्यय हैं – ई–देवी, इआ–चिड़िया आनी–भवानी, नी–शेरनी, इन–दुलहिन, आइन–ठकुराइन।

पुल्लिंग रूप रचना की नई प्रवृत्ति – जीजी से जीजा, मौसी से मौसा । अंग्रेजी प्रभाव से नरपक्षी और मादा पक्षी।

वचन व्यवस्था का सन्दर्भ – संज्ञा की–एकवचन से बहुवचन – रूप रचना के लिए निम्नलिखित प्रत्ययों का सहयोग लिया जाता है – शून्य (अविकारी), ए – घोड़ा –घोड़े, एं – लता–लताएं, यां – नदी–नदियां, ओ–भाइयों (सम्बोधन) ओं–लड़का–लडकों। इसके अतिरिक्त सहायक शब्दों से भी बहुवचन का बोध होता है – गण–कविगण, जन–गुरुजन, लोग– राजलोग, वृन्द–सज्जनवृन्द।

कारक व्यवस्था का सन्दर्भ – हिन्दी में व्यवहारतः छः कारक हैं। जिनमें प्रयोजनानुसार विभिन्न विभक्तियों का बोध होता है –

1. कर्त्ता कारक – राम ने काम किया। राम को ग्रंथ लिखना है। राम से पढ़ा नहीं जाता। राम पढ़ता है। (शून्य –प्रथम विभक्ति)।

2. कर्म कारक– राम ने रावण को मारा। राम श्याम से कहता है । राम आम खाता है (शून्य)।

3. करण कारक – राम चम्मच से खाता है।

4. सम्प्रदान कारक – राम श्याम को पुस्तक देता है । फल नैवेद्य के लिए हैं।

5. अपादान कारक – वृक्ष से पत्ता गिरता है।

6. अधिकरण कारक – राम कक्षा में है। श्याम छत पर है । मंगल को कीर्तन है।

हिन्दी सर्वनाम की रूप रचना –

संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त होने वाले शब्दों को सर्वनाम कहते हैं । लिंग की दृष्टि से सर्वनामों में कोई भेद नहीं होता। वचन की दृष्टि से सर्वनाम जिस संज्ञा रूप का प्रतिनिधित्त्व करता है, उसी के अनुसार वचन धारण करता है। कारक की दृष्टि से संज्ञा की ही भांति सर्वनाम के ही मूल तथा विकृत रूपों का प्रयोग प्रचलित है। हिन्दी के सर्वनामों को पांच वर्गों में विभाजित किया जाता है–

1. उत्तम पुरुष तथा मध्यम पुरुष वाचक वर्ग – मैं, हम, तू, तुम, विकृत– मुझ, तुझ, हमें, तुम्हें। मेरे को, तेरे को नहीं।

2. अन्य पुरुष, सम्बन्ध तथा प्रश्नवाचक वर्ग – दूरवर्ती – वह, वे। निकटवर्ती – यह, ये सम्बन्धवाचक – जो। प्रश्नवाचक –कौन। निश्चयवाचक सर्वनामों में आदर प्रदर्शन में एकवचन के लिए बहुवचन का प्रयोग प्रचलित है।

3. अनिश्चय तथा प्रश्नवाचक वर्ग – इस वर्ग में अनिश्यवाचक सर्वनामों के सजीव सर्वनाम तथा प्रश्नवाचक सर्वनामों के अप्राणिवाचक सर्वनाम आते हैं–कोई, क्या । विकारी रूप – किसी, किन्हीं तथा किस, किन। कोई का बहुवचन कोई लोग। क्या का बहुवचन – क्या–क्या।

4. अनिश्चय तथा आदरसूचक वर्ग – इसमें अनिश्चयवाचक सर्वनामों के निर्जीव सर्वनाम तथा आदरसूचक सर्वनाम आते हैं – कुछ, आप। बहुवचन के लिए कुछ के साथ लोग लगाने से सजीवतावाचक हो जाता है, जबकि यह अनिश्चयवाचक अप्राणिवाचक सर्वनाम है। इसके साथ 'ने'

प्रयोग करने से यह संख्यावाचक विशेषण प्रतीत होता है – जैसे कुछ ने खाना नहीं खाया। आदरसूचक बहुवचन के लिए प्रयोग – आप सब, आप लोग। विकृत रूप – आप लोगों ने।

5. **निजवाचक वर्ग** – इसके अन्तर्गत – आप, अपना, अपने आप।

उत्तम पुरुष – मैं आप यह काम कर लूंगा।

मध्यम पुरुष –तुम आप यह काम कर लेना।

अन्य पुरुष – वह आप यह काम कर लेगा।

हिन्दी विशेषण की रूप रचना –

संज्ञा अथवा सर्वनाम की विशेषता प्रदर्शित करने वाले शब्दों को विशेषण कहते हैं। हिन्दी विशेषण की रूप रचना में विविधता पाई जाती है। विशेषण दो प्रकार के हैं– विकारी और अविकारी – अच्छा लड़का – अच्छी लड़की, सुन्दर लड़का–सुन्दर लड़की। विशेषण की विशेषता प्रकट करने वाले विशेषण को प्रतिवेश कहते हैं – जैसे अति, परम, महा , बहुत। परम्परागत रूप में संस्कृत के तर, तम तथा फारसी के तर, तरीन उत्तम अवस्था वाले विशेषणों का प्रयोग भी तुलनात्मक दृष्टि से होता है। हिन्दी विशेषणों की रूप रचना के सन्दर्भ में प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं –

1. हिन्दी विशेषणों के नियामक हैं, शब्दों के तत्सम और तद्भव रूप। तत्सम विशेषणों के लिंग, वचन और कारक के कारण रूप परिवर्तन नहीं होता। विद्वान पुरुष और विदुषी नारी जैसे प्रयोग कुछ अपवाद हैं।

2. आकारान्त पुल्लिंग विशेषज्ञों में लिंग, वचन, कारक के कारण परिवर्तन होता है – मोटा ग्रन्थ, मोटी पुस्तक।

3. तत्सम प्रतिवेषण के रूप में परिवर्तन नहीं होता। अति सुन्दर लड़की, अति सुन्दर लड़का। तद्भव प्रतिवेषण के रूप में परिवर्तन होता है –बड़ा चतुर लड़का, बडी चतुर लड़की।

4. विशेषणों के स्त्रीलिंग रूपों के बहुवचन में परिवर्तन नहीं होता– अच्छी लड़की – अच्छी लड़कियां।

5. विशेषणों में परसर्ग प्रयोग नहीं होता, विशेष्यों में होता है – चतुर लड़के ने कहा – चतुर लड़कों ने कहा।

6. हिन्दी विशेषणों में तिर्यक रूप का प्रयोग होता है – मोटे आदमी से दौड़ा नहीं जाता। काले घोड़े ने कमाल कर दिया।

7. संख्यावाचक शब्द भी विशेषणों के रूप में प्रयुक्त हैं – पांच लड़के, इनमें भी विकार नहीं होता।

हिन्दी की क्रिया रूप रचना–

कुछ करने या होने की सूचना प्रदान करने वाले रूपों को क्रिया कहते हैं। क्रिया की रचना धातु से होती है – लिख, पढ़, धातु से लिखना, पढ़ना क्रिया रूप बनते हैं। क्रिया का मूल रूप धातु होता है। विविध धातुओं से विभिन्न क्रिया रूपों की रचना होती है। वाक्य में क्रिया के एक अथवा एकाधिकारक रूपों का प्रयोग होता है। एकाधिक रूपों में पहले प्रायः मुख्य अंश और बाद में सहायक अंश का प्रयोग होता है। इस आधार पर मुख्य क्रिया और सहायक क्रिया बनती है।

1. मुख्य क्रिया – क्रिया पदबंध के मुख्य अर्थद्योतक अंश को मुख्य क्रिया कहते हैं – वह खेल रहा है।

2. सहायक क्रिया – क्रिया पदबंध के गौण अर्थद्योतक अंश को सहायक क्रिया कहते हैं। क्रिया के काल की सूचना देनेवाली सहायक क्रिया कालद्योतक होती है। वह जाता है (वर्तमान), वह जाता था (भूतकाल)। क्रियाकर – क्रियेतर से मिलकर क्रिया बनाने वाली सहायक क्रिया को क्रियाकर कहते हैं। जैसे क्रोध करना, पवित्र होना।

3. यौगिक क्रिया – दो भिन्नार्थक क्रियाओं के योग से बनने वाली क्रिया को यौगिक क्रिया कहते हैं – यौगिक क्रिया की दोनों क्रियाएं मुख्य होती हैं – आ गिरना, उखाड़ फैंकना, लिख भेजना।

4. नामिक क्रिया – नामिक क्रिया का पहला अंश क्रियेतर (संज्ञा विशेषण आदि) और दूसरा अंश क्रियाकर (करना, लगना, पड़ना, होना आदि) होता है। जैसे उपदेश देना, नष्ट होना।

5. वृत्तिक क्रिया – मुख्य क्रिया के साथ जुडकर वक्ता की मनोवृत्ति प्रदर्शित करनेवाली सहायक क्रिया को वृत्तिक क्रिया कहते हैं । जैसे –चुकना, पड़ना, पाना, सकना आदि। उसे आना पड़ेगा (विवशता) सब जा चुके (पूर्णता), अब वही कर सकेगा (संभावना)।

6. रंजक क्रिया – मुख्य क्रिया के भाव पक्ष पर रंग चढ़ाने वाली सहायक क्रिया को रंजक क्रिया कहते हैं।

अभ्यास– भाव, करना–रंजक क्रिया – वह सितार बजाया करता है। निरन्तरता–भाव, रहना–रंजक क्रिया–वह वहीं बैठा रहता है। समाप्ति –भाव, जाना–रंजक क्रिया– वह सारे आम खा गया।

7. संयुक्त क्रिया – एकाधिक क्रियाओं के योग से बनने वाली क्रिया को संयुक्त क्रिया कहते हैं। जैसे – बीच–बीच में हंसते चलो।

8. वाच्य– कर्त्ता, कर्म या भाव की प्रधानता व्यक्त करने वाले क्रिया रुप को वाच्य कहते हैं–

क. कर्तृवाच्य – कर्त्ता की प्रधानता व्यक्त करनेवाले क्रिया रूप कर्तृवाच्य हैं – पापा अखबार पढ़ते है।

ख. कर्म की प्रधानता व्यक्त करने वाला क्रिया रूप– रामायण पढ़ी गई, प्रसाद बंटता है।

ग. भाव की प्रधानता व्यक्त करने वाला क्रिया रूप – यहां नहीं रहा जाता।

9. काल – क्रिया के सम्पन्न होने के समय की सूचना देने वाले क्रिया रूप को काल कहते हैं – वर्तमान कालिक कृदन्त – धातुओं में जोड़े जानेवाले कृत प्रत्यय – चल, चलता । भूत कालिक कृदन्त – चला, पूर्वकालिक – चलकर । भविष्यकालिक –चलेगा। पूर्णभूत – चला गया।

10. प्रेरणार्थक क्रिया – प्रेरणार्थक धातु से बननेवाली प्रेरणार्थक क्रिया – पिला–पिलाती, नर्स बीमार को दवा पिलाती है। द्वितीय प्रेरणार्थक क्रिया – डॉक्टर नर्स से मरीज को दवा पिलवाता है । प्रथम प्रेरणार्थक में आ प्रत्यय जुडता है और द्वितीय में वा।

3.2.5 वाक्य रचना :

भाषा का मुख्य कार्य विचार या भाव की अभिव्यक्ति है। विचार या भाव की पूर्ण अभिव्यक्ति वाक्य के माध्यम से होती है। बिना वाक्य के विचार की अवस्थिति असम्भव है। वस्तुतः वाक्य की अव्यक्त अवस्था का नाम विचार है या विचार की ध्वनिमयी सार्थक व्यक्तावस्था का नाम वाक्य है। अतः वाक्य को सार्थक शब्दों का समूह माना जाता है जो भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से स्वयं में पूर्ण हों। कोशों और व्याकरणों में वाक्य की इसी प्रकार की परिभाषाएं मिलती हैं।

परिभाषाएं –

Hkkjrh; vkSj ik'pkR; ijEijk esa okD; dks fofHkUu :iksa esa ifjHkkf"kr fd;k x;k gSA bZlk iwoZ Hkk"kk'kkL=h; fpardksa esa Hkkjr esa iratfy vkSj ;wjksi esa fn;ksfufl;l FkzWDl dk uke mYys[kuh; gSA nksuksa gh vkpk;ksZa us okD; dh ifjHkk"kk bl izdkj nh gS & ^^iw.kZ vFkZ dh izrhfr djkus okys 'kCn lewg dks okD; dgrs gSaA** bl ifjHkk"kk esa nks ckrksa ij cy fn;k x;k gS &

- वाक्य शब्दों का समूह है, और
- वाक्य पूर्ण अर्थ की प्रतीति कराता है। भाषावैज्ञानिक उपर्युक्त दोनों विशेषताओं को पूर्णतया स्वीकार नहीं करते।

पतंजलि ने 'महाभाष्य' में वाक्य की परिभाषा दी है – ''आख्यातं साव्ययकारक विशेषणं वाक्यम्'' अर्थात् अव्यय, कारक विशेषण से युक्त क्रियापद वाक्य है। मीमांसकों, नैयायिकों और साहित्याचार्यों ने 'साकांक्ष पदसमूह' को वाक्य माना है। आचार्य विश्वनाथ ने 'साहित्य दर्पण' में लिखा है – 'वाक्यं स्याद योग्यताकांक्षासत्तियुक्तः प्रदोच्चयः'' अर्थात् पदों का वह समूह जो योग्यता, आकांक्षा और आसक्ति से युक्त हो उसे वाक्य कहते हैं।

पाश्चात्य विद्वानों की परिभाषाओं में अरस्तू द्वारा दी गयी परिभाषा महत्त्वपूर्ण है – **वाक्य सार्थक ध्वनियों का समूह है जिससे कभी किसी भाव की अभिव्यक्ति होती है । प्रत्येक वाक्य संज्ञा और क्रिया से बनता है किन्तु क्रिया के बिना भी वाक्य रचना हो सकती है।** ब्लूमफील्ड ऐसी रचना को वाक्य मानते हैं जो किसी उक्ति में अपनी बड़ी रचना की अंग न हो।

येस्पर्सन वाक्य को ''अपेक्षाकृत पूर्ण और स्वतंत्र इकाई'' मानते हैं। चॉम्स्की की मनोवादी परिभाषा इस प्रकार है – ''मानव मस्तिष्क में अवस्थित किसी अमूर्त संकल्पना का व्यक्त रूप वाक्य है।'' वस्तुतः वाक्य की निर्विवाद शास्त्रीय परिभाषा देना संभव नहीं है परंतु व्यावहारिक दृष्टि से वाक्य की परिभाषा इस प्रकार की दी जा सकती है – 'भाषा की लघुतम पूर्ण सार्थक इकाई को वाक्य कहते हैं।'' डॉ रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव ने संरचना की दृष्टि से वाक्य की परिभाषा दी है – ''वाक्य अनुशासित शब्दों की एक व्यवस्थित कड़ी है''

इन परिभाषाओं के आधार पर वाक्य की सामान्य विशेषताए निम्नलिखित हैं –

1. वाक्य अर्थ की दृष्टि से पूर्ण हो या न हो किंतु व्याकरण की दृष्टि से पूर्ण होता है।
2. वह स्वतंत्रतः प्रयोग के योग्य होता है।
3. संरचना तथा अर्थ के स्तर पर क्रिया वाक्य का
4. वाक्य के घटकों में विस्तार होता है और नहीं भी (राम केला खा रहा है)।

Hkk"kk dh fofHkUu bdkb;ksa eas lokZf/kd egÙoiw.kZ bdkbZ okD; gSA izkphu Hkkjrh; fpUru esa ^/ofu* Hkk"kk dh y?kqre

bdkbZ Fkh] vkSj fo'ys"k.k /ofu ls okD; dh vksj FkkA vk/kqfud Hkk"kk fparu esa HkkokfHkO;fDr dks lokZf/kd egÙo nsus ds dkj.k okD; Hkk"kk dh izFke bdkbZ ekuk tkrk gS vkSj fo'ys"k.k okD; ls /ofu dh vksj tkrk gSA pkWELdh us eu esa fLFkr okD; ds ekSu :i dks vkn'kZ okD; dh laKk nh gSA

वाक्य में विचार, विचारों का समन्वय, सार्थक और समन्वित रूप में अभिव्यक्ति आदि सभी कार्य विचार और चिंतन से सम्बद्ध हैं। वाक्य में मानसिक या मनोवैज्ञानिक पक्ष प्रमुख होता है। विचारों की पूर्ण अभिव्यक्ति वाक्य से होती है। अतः वाक्य ही भाषा की सूक्ष्मतम सार्थक इकाई माना जाता है। भावानुभूति और रसानुभूति का साधन वाक्य ही है।

अभिहितान्यवाद और अन्विताभिधानवाद –

वाक्य और पद के सापेक्ष महत्त्व पर दार्शनिकों में परस्पर विरोध है। मीमांसा के दो प्रमुख आचार्यों कुमारिल भट्ट और आचार्य प्रभाकर गुरु ने इस विषय पर दो मत प्रस्तुत किये हैं। कुमारियल भट्ट का मत अभिहितान्यवाद है। इसका अर्थ है – पद अपने अर्थ को कहते हैं और उनका वाक्य में अन्वय हो जाता है। इसी अन्वय से विशिष्ट वाक्यार्थ निकलता है। इस वाद में पदों का महत्त्व है और पद समूह ही वाक्य है।

पद के अतिरिक्त वाक्य का कोई महत्त्व नहीं है। योग्यता में अपने गुरु कुमारिल भट्ट से आगे निकले आचार्य प्रभाकर गुरु का मत है – अन्विताभिधानवाद। इसका अर्थ है वाक्य में पदों के अर्थ समन्वित रूप से विद्यमान रहते हैं। वाक्य को विश्लेषित करने से पृथक–पृथक पदों का अर्थ ज्ञात होता है । इस वाद में वाक्य को महत्त्व दिया गया है । इस मत के अनुसार पदों की स्वतंत्र सत्ता नहीं है, ये वाक्य के अवयव हैं और वाक्य विश्लेषण से इनका अर्थ निकलता है। आचार्य प्रभाकर के अनुसार वाक्य ही भाषा की महत्त्वपूर्ण सार्थक इकाई है। आधुनिक भाषाविज्ञान भी इसी मत का समर्थक है ।

आचार्य भर्तृहरि ने वाक्यपदीप में इसी मत का समर्थन करते हुए कहा है – पदों में वर्णों की स्वतंत्र सत्ता नहीं है, न वर्णों में अवयवों की। वाक्य के अतिरिक्त पदों की कोई स्वतंत्र सत्ता

नहीं है। विचार करने पर स्पष्ट होता है कि हाथ, पांव, आंख, नाक, कान आदि को मिलाकर शरीर नहीं बना अपितु ये अंग शरीर के अवयव हैं । इसी प्रकार भाषा भी अभिव्यक्ति का साधन है। मन में विचार या भाव समन्वित रूप में वाक्य के रूप में उदय होते हैं। इन वाक्यों को धारावाहिक रूप में हम उच्चारण द्वारा अभिव्यक्त करते हैं।

विचार संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया आदि पदों के रूप में नहीं उदय होते अतः वाक्य ही स्वतंत्र एवं सहज सत्ता है। सामान्य जन को सिखाने के लिए वाक्य विश्लेषण द्वारा नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात के रूप में वाक्य का विश्लेषण कर पद बनाए जाते हैं और उनका अर्थ निर्धारित किया जाता है। वाक्य वस्तुतः जटिल एवं सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। इसका मानसिक क्रम इस प्रकार है –

1. चिंतन अर्थात् अपने अभीष्ट पर विचार करना।
2. चयन अर्थात् उपयुक्त शब्दों का चुनाव।
3. भाषिक गठन अर्थात् व्याकरण के अनुरूप उन शब्दों को क्रमबद्धता से रखना।
4. उच्चारण के द्वारा वाक्य रूप में उन्हें प्रकट करना।

ये चारों प्रक्रियाएं सुसम्बद्ध रूप से चलती हैं, तभी भाषा और वाक्य सुव्यवस्थित होते हैं।

संरचना की दृष्टि से वाक्य ही भाषा की सबसे बडी संरचना है इसी स्तर पर आकर भाषा अपने उद्देश्य–भावाभिव्यक्ति और विचार विनिमय की पूर्ति करती है । शिक्षित –अशिक्षित दोनों प्रकार के व्यक्तियों के भाव और विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा है। यह अभिव्यक्ति वाक्य स्तर पर ही होती है। अतः वाक्य ही भाषा की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संरचना है। चॉम्स्की ने भी अन्विताभिधानवाद का ही समर्थन किया है।

वाक्य रचना के मूल आधार –

संस्कृत के आचार्यों ने वाक्य पर पर्याप्त विचार किया है। आचार्य कुमारिल भट्ट के 'अभिहितान्यवाद' के अनुसार पदों से मिलकर वाक्य बनते हैं। वाक्य की रचना के लिए कुछ अनिवार्य तत्त्व या मूल आधार आवश्यक हैं, तभी भाव या विचार की अभिव्यक्ति सम्भव है।

आचार्य विश्वनाथ ने 'साहित्य दर्पण' में लिखा है, वाक्य स्याद योग्यताकाक्षासत्तियुक्त पदोच्चयः अर्थात् पदों का वह समूह जो योग्यता आकांक्षा और आसत्ति से युक्त हो, उसे वाक्य

कहते हैं। वस्तुतः वाक्य भाषा की पूर्ण स्वतंत्र इकाई है जो विचार की ध्वनिमयी सार्थक अभिव्यक्ति है। वाक्य का सार्थक होना वाक्य की सबसे पहली विशेषता है । निरर्थक शब्दों का समूह वाक्य नहीं हो सकता। अर्थ की दृष्टि से वाक्य में प्राचीन आचार्यों ने तीन आवश्यक तत्त्व या मूल आधार माने हैं – योग्यता, आकांक्षा और आसत्ति।

योग्यता – योग्यता से तात्पर्य है पदों मे पारस्परिक योग्यता। पदों के द्वारा जो अर्थ अभिव्यक्त हो रहा है उसे सही क्रियात्मक रूप देने की योग्यता होनी चाहिए। योग्यता दो प्रकार की होती है – अर्थमूलक योग्यता, व्याकरणिक योग्यता।

- अर्थमूलक योग्यता – कोई वाक्य व्याकरण की दृष्टि से योग्य हो परन्तु अर्थ की दृष्टि से अयोग्य हो वह वाक्य नहीं कहला सकता। जैसे वह वायु से लिखता है । मछलियां पेड़ पर चढ़ गयी। ये दोनों वाक्य व्याकरणिक योग्यता तो रखते हैं, लेकिन अर्थ की दृष्टि से अयोग्य हैं क्योंकि न तो वायु में लिखने की ामता है और न मछलियां मे पेड़ पर चढने की क्षमता है। अतः यहां अर्थबोध में बाधा है । ये वाक्य अर्थ की दृष्टि से योग्य नहीं हैं।
- व्याकरणिक योग्यता – वाक्य अर्थ की दृष्टि से उचित हो और व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध हो, तब भी वह वाक्य नहीं माना जा सकता। वाक्य में लिंग, वचन, विभक्ति, विशेषण क्रिया आदि की दृष्टि से पूर्ण संगति होनी चाहिए। व्याकरणिक योग्यता के बिना वाक्य शुद्ध और सही वाक्य नहीं कहला सकता।
- O;kdjf.kd v;ksX;rk ds mnkgj.k gSa & og lqUnjh iqLrd ns[krk gSA jke ?kj tkrh gSA lq'khyk iqLrd i<+rk gSA

आकांक्षा – आकांक्षा का अर्थ श्रोता या वक्ता की जिज्ञासा है। वाक्य में प्रयुक्त पद परस्पर सम्बद्ध होते हैं। यह सम्बद्धता का भाव आकांक्षा के कारण होता है। वाक्य में प्रयुक्त पदों को पूर्ण अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए एक दूसरे की अपेक्षा होती है। कर्त्ता को कर्म की या कर्म को कर्त्ता की, क्रिया को कर्त्ता आदि अपेक्षा की होती है। इस अपेक्षापूर्ति पर ही वाक्य की सरंचना निर्भर है।

आकांक्षा की अपूर्णता वाक्य की अपूर्णता है। एक कर्त्ता पद 'गीता' कहने से जिज्ञासा बनी रहती है। अकेले 'गाती है' कहने से भी वाक्य में पद की आकांक्षा पूरी नहीं होती। 'गीता गीत

गाती है' एक साथ साकांक्ष होने से पूर्ण वाक्य की सरंचना होती है। वाक्य में जिज्ञासा की पूर्ति या आकांक्षा का समाधान का होना अनिवार्य और मूल आधार है।

आसत्ति – आसत्ति का अर्थ है निकटता। इसे सन्निधि भी कहा जाता है। इस तत्त्व की दृष्टि से विचार करें तो वाक्य में स्थान और काल की समुचित समीपता अनिवार्य है। स्थान की समीपता से तात्पर्य है, वाक्य में पदों का प्रयोग समुचित दूरी या निकट से किया जाए– मैकलघरजाऊंगा, वाक्य नहीं माना जायेगा जब तक कि इन पदों को समुचित निकटतम या दूरी पर नहीं लिखा जाएगा– मैं कल घर नहीं जाऊंगा। इसी प्रकार वाक्य के लिए काल की सन्निधि भी अनिवार्य है। यदि 'मैं' सुबह कहा जाए, 'कल दोपहर को, 'घर' 'शाम को' तथा 'जाऊंगा' दूसने दिन।

समय के इस व्यवधान से वाक्य संरचना नहीं होती न इसकी कोई सार्थकता है। अतः वाक्य के लिए देश और काल की आसत्ति या सन्निधि अनिवार्य है। कुछ भाषा वैज्ञानिकों ने आकांक्षा, योग्यता और सन्निधि के अलावा भी वाक्य के मूल आधार माने हैं, वे हैं, पदक्रम, अन्विति और सार्थकता।

indze & bldk rkRi;Z gS okD; esa inksa ds dze dk fu/kkZj.k A izR;sd Hkk"kk dh indze dh viuh fuf'pr O;oLFkk gksrh gSA mlesa O;frdze gksus ls okD; dh lkFkZdrk lekIr gks tkrh gSA laLd`r] xzhd] yWfVu] vjch vkfn Hkk"kk,a ifjorZuh; indzeokyh Hkk"kk,a gSaA buesa inksa ds lkFk foHkfDr;ka la;qDr gksrh gSa blfy, indze esa ifjorZu gksus ij Hkh vFkZ ifjorZu ughaa gksrkA jke% jko.ka gfUr ;k jko.ka gfUr jke% esa vFkZ ,d gh gSA

अंग्रेजी, चीनी, हिन्दी अपरिवर्तनीय पदक्रम वाली भाषाएं हैं। इनका पदक्रम बदलने से अर्थ परिवर्तन हो जाता है। इसलिए इनमे पदक्रम में परिवर्तन नहीं किया जा सकता। इसका कारण है इन भाषाओं की विभक्तियां जो पद से अलग होती हैं। 'राम ने रावण को मारा' वाक्य में पद परिवर्तन करने से 'रावण ने राम को मारा' वाक्य में अर्थ परिवर्तन भी हो जाएगा।

अन्विति – वाक्य में अन्विति से अभिप्राय है पदों की व्याकरणिक दृष्टि से अनुरूपता। अन्विति और व्याकरणिक योग्यता एक ही बात है। वाक्य में पदों में लिंग, वचन, विशेषण विभक्ति आदि की दृष्टि से समरूपता होनी अनिवार्य है। योग्यता के अन्तर्गत व्याकरणमूलक योग्यता को अनिवार्य बताया गया है। अतः अन्विति को योग्यता से अलग मूलाधार मानने की आवश्यकता नहीं है।

सार्थकता – वाक्यों में प्रयुक्त पदों का सार्थक होना अनिवार्य है। पद तभी वाक्य बन सकते हैं जब सार्थक हों। सार्थक पद ही अर्थ प्रतीति की योग्यता रखते हैं। अर्थमूलक योग्यता का अर्थ सार्थकता ही है। अतः सार्थकता मूलाधार का पृथक उल्लेख अनावश्यक है।

वाक्य के भेद और संरचना –

विभिन्न आधारों पर विचार करने से भाषा में प्रयुक्त वाक्यों के अनेक भेदोपभेद मिलते हैं, किन्तु वैज्ञानिक वाक्य विभाजन – जो सभी भाषाओं पर समान रूप से लागू हो सके, भाषा वैज्ञानिकों को नहीं मिल सका है। परम्परागत व्याकरण में वाक्य की रचना के आधार पर तीन मुख्य भेद माने गये हैं –

सरल,

मिश्र और

संयुक्त

सरल वाक्य – सरल या साधारण वाक्य वह है जिसमें केवल एक उद्देश्य या एक विधेय हो। इनमें उद्देश्य या विधेय का विस्तार भी हो सकता है। जिसके विषय में कुछ कहा जाए अर्थात् कर्त्तावाला अग्रभाग उद्देश्य कहलाता है, और जो कुछ उद्देश्य के सम्बन्ध में कहा जाता है वह क्रियावाला भाग विधेय कहलाता है। 'राम जाता है' सरल वाक्य है । इसमें राम कर्त्ता है । यही उद्देश्य है। 'जाता है' क्रिया वाला भाग विधेय है। उद्देश्य की विशेषता को प्रकट करने वाले पद उद्देश्य विस्तार कहलाते हैं और विधेय की विशेषता बताने वाले पद विधेय विस्तार कहलाते हैं। मोहन का लड़का

राम धीरे–धीरे घर जाता है। वाक्य में उद्देश्य ‘राम’ की विशेषता ‘मोहन का लड़का’ पद समूह द्वारा दिखाई गई है। अतः यह उद्देश्य विस्तार है। ‘जाता है’ विधेय की विशेषता ‘धीरे–धीरे घर’ द्वारा दिखाई गई है। अतः यह उद्देश्य विस्तार है।

मिश्र वाक्य – मिश्र वाक्य ऐसे वाक्य को कहते हैं जिसमें एक प्रधान उपवाक्य हो तथा एक या अधिक आश्रित उपवाक्य हों। जैसे – मैंने उस लड़के को देखा जो कल सडक पर गिर गया था। ‘मैंने उस लड़के को देखा’ प्रधान उपवाक्य है। ‘जो कल सड़क पर गिर गया था’ वह आश्रित उपवाक्य है। यह विशेषण उपवाक्य है और लड़के की विशेषता बता रहा है।

संयुक्त वाक्य – संयुक्त वाक्य में दो या अधिक उपवाक्य होते हैं। ये बाह्य सरंचना में किसी समुच्चयबोधक अव्यय, तथा, और, अथवा आदि के द्वारा जुड़े होते हैं और रचना की दृष्टि से परस्पर आश्रित नहीं होते। जैसे–लड़का खेल रहा है और लड़की पढ़ रही है।

इन तीनों प्रकारों को एक वाक्य के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है –

1. डॉक्टर ने मरीज को देखा (सरल वाक्य)
2. डॉक्टर ने उस मरीज को देखा जो लाइन में सबसे आगे खड़ा था (मिश्र)
3. डॉक्टर ने मरीज को देखा और उसे दवाई दी (संयुक्त)

वाक्य की संरचना के आधार पर भेद –

आधुनिक भाषा विज्ञान में चॉम्स्की की रचनान्तरण प्रजनक व्याकरण वाक्यों में केवल दो ही भेद मानता है – सरल और जटिल। उनके विचार से संयुक्त और मिश्र दोनों ही प्रकार के वाक्यों की संरचना का आधार सरल वाक्य हैं। अतः वाक्य के दो ही भेद होते हैं– सरल और जटिल। चॉम्स्की के अनुसार वे सभी वाक्य जटिल हैं जिनकी व्युत्पत्ति रचनान्तरण नियमों से होती है। जटिल वाक्यों की संरचना सरल वाक्यों से होती है जो वाक्य के घटक बन जाते हैं और उपवाक्य कहलाते हैं।

सरल वाक्य सरंचना –

सरल वाक्य ही मूल आधार है जिन पर जटिल वाक्य रचना आधारित होती है। सरल वाक्य ही जटिल वाक्यों में उपवाक्य कहलाते हैं। वाक्य की संरचना पदों से होती है। अतः संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, विशेषण तथा क्रियापदों का प्रयोग उसमें होता है। सरल वाक्य में यह आवश्यक नहीं है कि सभी पद उसमें उपलब्ध हों। एक सरल वाक्य के लिए एक संज्ञा या सर्वनाम आदि और एक क्रिया का होना आवश्यक है।

व्याकरण में इसी आधार पर सरल वाक्य के दो खण्ड किये जा सकते हैं। उद्देश्य और विधेय 'राम जाता है' सरल वाक्य में 'राम' उद्देश्य है और 'जाता है' विधेय है। सरल वाक्य में उद्देश्य में कर्त्ता विस्तारक पद तथा विधेय में क्रिया विस्तारक पद सम्मिलित हो सकते हैं। मोहन का लड़का राम धीरे धीरे घर जाता है। विस्तारक पद होने के बावजूद यह सरल वाक्य ही है क्योंकि इसमें एक कर्त्ता और एक क्रिया हैं उद्देश्य पांच प्रकार के होते हैं :

1. संज्ञा - मोहन जाता है।
2. सर्वनाम - वह जाता है।
3. विशेषण -अहंकारी मित्रता के योग्य नहीं होता।
4. क्रियार्थक संज्ञा- पढ़ना अच्छी बात है।
5. वाक्यांश - बच्चों को रुलाना बुरी बात है।

विधेय के अन्तर्गत कर्त्ता या कर्त्ता विस्तारक पद को छोड़कर शेष सभी पद संज्ञा, क्रिया विशेषण और क्रियापद आ जाते हैं।

सरंचना के आधार पर सरल वाक्य के पांच भेद किये जाते हैं -

1. अकर्मकीय - श्याम पत्र लिखता है।
2. एककर्मकीय - श्याम पत्र लिखता है।
3. द्वितकर्मकीय - श्याम मोहन को पत्र लिखता है।
4. कर्तपूरकीय - श्याम चतुर है।
5. कर्मपूरकीय - श्याम मोहन को मूर्ख बनाता है।

वृत्तियों के आधार पर सरल वाक्य के निम्नलिखित भेद होते हैं-

- विधि - श्याम काम करता है।

- निषेध – श्याम काम नहीं करता है।
- प्रश्न – क्या श्याम काम करता है ?
- आज्ञार्थक – तुम काम करो।
- संदेहार्थक – श्याम काम करता होगा।
- इच्छार्थक – ईश्वर तुम्हें सद्बुद्धि दे।
- संकेतार्थक – यदि श्याम पढ़ता तो अवश्य उत्तीर्ण हो जाता है।
- विस्मयार्थक – अरे तुम उत्तीर्ण हो गए।

'ए केस ग्रामर ऑफ हिन्दी' में लक्ष्मीबाई बालचन्द्रन ने हिन्दी के सरल वाक्यों की सरंचना के कुछ नियम फिल्मोर के 'कारक व्याकरण' के आधार पर दिये हैं किंतु भाषाविज्ञानियों नें इन्हें अधूरे मानकर स्वीकार नहीं किया।

जटिल वाक्य संरचना –

ट्रांसफॉर्मेशनल का अर्थ है रूपातंरण या रचनांतरण । एक रचना के रूप का दूसरी रचना में अंतरण या परिवर्तन। राम ने पत्र लिखा। पत्र राम द्वारा लिखा गया। पहला वाक्य कर्तृवाच्य है और दूसरा उसी का कर्मवाच्य है। पहला मूल या बीज वाक्य है, दूसरा उसी का रूपांतरित या रचनांतरित वाक्य है। बीज वाक्य अन्तस्तलीय संरचना है और रूपांतरित वाक्य बहिस्तलीय संरचना हैं प्रजनक (Generative) शब्द चॉम्स्की ने गणित से लिया है । 1–4, 2–5, 3–6, 4–7 इस प्रकार असंख्या जोडे बनते हैं लेकिन इसका सूत्रात्मक तरीका है – एकांतर से तीन का योग। गणित में यह प्रजनक हैं।

चॉम्स्की के व्याकरण के सूत्र भाषा विशेष के व्याकरण सम्मत वाक्यों का प्रजनन कर सकते हैं। सरल वाक्य में कोई उपवाक्य नहीं होता। ये संरचना की दृष्टि से एक–दूसरे से स्वतंत्र होते हैं। संयुक्त और मिश्र अर्थात जटिल वाक्य दो या दो से अधिक वाक्यों से बनते हैं। जटिल वाक्यों के सरल वाक्य या उपवाक्य प्रायः समान स्तर के नहीं होते। उनमें से एक सरल वाक्य या उपवाक्य प्रधान होता है और शेष उस पर आश्रित होते हैं, या स्वतंत्र होते है।

'उसने कहा कि मोहन गीत गाएगा'– इसमें (जटिल वाक्य में) दो उपवाक्य हैं – 1. उसने कहा, प्रधान उपवाक्य है और 2. मोहन गीत गाएगा –दूसरा आश्रित उपवाक्य 'कहा' को स्पष्ट

करता है उसने जो कुछ कहा उसकी पूर्ति दूसरे उपवाक्य द्वारा हो रही है। जटिल वाक्यों की संरचना में ये आश्रित उपवाक्य तीन प्रकार के होते हैं :

1. संज्ञा उपवाक्य – संज्ञा की तरह कार्य करने वाले।
2. विशेषण उपवाक्य – विशेषण की तरह कार्य करने वाले।
3. क्रिया –विशेषण उपवाक्य– क्रिया विशेषण की तरह कार्य करने वाले।

इनके उदाहरण निम्नलिखित हैं :–

1. संज्ञा उपवाक्य – मेरे जीवन का मुख्य उद्देश्य है कि अच्छा अध्यापन करूं।
2. विशेषण उपवाक्य – मैंने एक व्यक्ति को देखा जो बहुत मोटा था।
3. क्रिया–विशेषण उपवाक्य – जब शाम हुई तब मेरे मित्र खाना खाने आये।

जब संज्ञा, विशेषण और क्रिया –विशेषण पदबंधों को उपवाक्यों में बदलकर उन्हें आश्रित उपवाक्यों की तरह प्रयुक्त किया जाता है जब जटिल वाक्यों की संरचना होती है।

उपर्युक्त सभी जटिल वाक्य पदबंधों के आधार पर सरल वाक्यों के रूप में रचनांतरित हो सकते हैं।

1. अच्छा अध्यापन मेरे जीवन का मुख्य उद्देश्य है (संज्ञा पदबंध)।
2. मैने एक बहुत मोटा व्यक्ति देखा (विशेषण–पदबंध)।
3. मेरे मित्र शाम को खाना खाना आये (क्रिया–विशेषण पदबंध)।

dqN ljy okD;ksa dks pkWELdh ds ^jpukarj.k iztud O;kdj.k* ds fu;e ds vuqlkj tfVy okD;ksa esa :ikarfjr fd;k tk ldrk gSA ;g jpukarj.k ;kn`fPNd ughaa gks ldrkA :ikarfjr okD;ksa esa Hkh vFkZewyd vkSj O;kdjf.kd ;ksX;rk cuh jguh pkfg,A vUrLryh; jpuk tc cfgLryh; esa <yrh gS rks mlds vFkZ eas ifjorZu ughaa gksuk pkfg,A

उसने पत्र लिखा । वह मेज पर है।

उसके द्वारा लिखा गया पत्र मेज पर है। (सरल)

उसने जो पत्र लिखा, वह मेज पर है। (जटिल)

अन्तस्तलीय संरचनाओं का निर्धारण स्पष्ट अर्थबोध के बिना नहीं किया जा सकता। बहिस्तलीय– जीजी ने रोते हुए मुन्ने को सुलाया। इस सरल वाक्य की अन्तस्तलीय सरंचना दो प्रकार से होगी तभी अर्थबोध स्पष्ट होगाः

अन्तस्तलीय :

1. जीजी रो रही थी।
2. जीजी ने मुन्ने को सुलाया।
3. जीजी ने मुन्ने को सुलाया।
4. रोते हुए मुन्ना सोया।

जटिल वाक्य में अर्थबोध में निकटस्थ अवयव भी सहयोगी होते हैं। ये दोनों प्रकार की संरचनाओं में कार्य करते हैं।

शब्दार्थ :

विलोम – विपरीत,

व्युत्पत्ति – मूल शब्द,

आसक्ति – निकटता,

अन्विति – एक रूपता,

संरचना – बनावट के नियमों की व्यवस्था ।

3.3 सारांश :

- उन दो या अधिक भाषिक अभिव्यक्तियों को पर्याय कहा जाता है जो अर्थ की दृष्टि से एक या प्रायः एक–सी होती हैं। वस्तुतः बहुत कम अभिव्यक्तियां परस्पर एकार्थी होती हैं। तथाकथित पर्याय प्रायः समानार्थी होते हैं।
- हिन्दी में अनेक प्रकार के पर्याय मिलते हैं – सूक्ष्मांतरी पर्याय, मूल्यांतरी पर्याय, क्षेत्रीयता पर्याय, शैलीयता पर्याय, सहप्रयोगांतरी पर्याय, परस्पर–अच्छादी पर्याय, व आदरसूचक पर्याय।

- भाषिक स्तर दृष्टि से पर्याय हैं – उपसर्ग वर पर्याय, प्रत्यय स्तर पर्याय, शब्द स्तर पर्याय, रूप स्तर पर्याय, वाक्य स्तर पर्याय, मुहावरा स्तर पर्याय, व सामान्य अभिव्यक्ति पर्याय।
- व्याकरणिक दृष्टि से कुछ पर्याय हैं – व्यक्तिवाचक संज्ञा पर्याय, जातिवाचक संज्ञा पर्याय, भाववाचक संज्ञा पर्याय, सर्वनाम पर्याय, विशेषण पर्याय, क्रिया पर्याय, व क्रिया विशेषण पर्याय।
- अर्थ के स्तर पर एक–दूसरे के विपरीत भाषिक इकाइयां विलोमार्थी या विपर्याय कहलाती हैं। जैसे–ज्ञान–अज्ञान, प्रकाश–अंधकार। वस्तुतः विलोमता किसी न किसी आधार पर होती है । इसीलिए एक शब्द के कई विलोम हो सकते हैं।
- foykserk fgUnh esa vusd Hkkf"kd Lrjksa ij feyrh gS& milxZ Lrj] milxZ&izR;; Lrj] milxZ&'kCn Lrj] izR;;&izR;; Lrj] izR;;&'kCn Lrj] 'kCn&'kCn Lrj] o okD;&okD; LrjA
- अन्य भाषिक स्तरों पर भी हिन्दी में विलोमता मिलती है– व्यक्तिवाचक संज्ञा, जातिवाचक संज्ञा, भाववाचक संज्ञा, विशेषण, क्रियापद, व क्रिया विशेषण।
- शब्द मुख्यतः दो प्रकार के हैं : एकार्थक शब्द और अनेकार्थक शब्द। एकार्थक शब्दों का एक ही मुख्य अर्थ होता है जैसे पुस्तक, नदी, वृक्ष। लेकिन एकार्थक शब्द भी विभिन्न कारणों से विभिन्न अर्थों का बोध कराते हैं जैसे–शाम हो गई । कुछ शब्द एक से अधिक अर्थों का बोध कराते हैं उन्हें अनेकार्थक शब्द कहते हैं। एक शब्द के अनेक अर्थ कैसे हुए यह विवाद–विषय है।
- संस्कृत में शब्द के मूल रूप को प्रकृति या प्रतिपादक कहते हैं और सम्बन्ध स्थापन के लिए जोड़े जाने वाले तत्त्व को प्रत्यय। 'महाभाष्यकार' पतंजलि ने लिखा है कि वाक्य में न तो केवल प्रकृति का प्रयोग हो सकता है न केवल प्रत्यय का, दोनों के मिलने से जो बनता है वही रूप है ।
- संज्ञा में लिंग, वचन, कारक के अनुसार रूप रचना होती है। भाषा का प्रयोग करते समय विभिन्न भावों, विचारों के अनुकूल अर्थ परितर्वन के लिए शब्दों में जो विकार किए

जाते हैं उन्हें रूपांतर या रूपरचना कहते हैं। संज्ञा की यौन प्रकृति का बोध कराने वाले रूप को लिंग कहते हैं। हिन्दी में दो प्रकार के लिंग प्रचलित हैं – पुल्लिंग और स्त्रीलिंग। संज्ञा की संख्या का बोध कराने वाले रूप को वचन कहते हैं।

o Hkkjrh; vkSj ik'pkR; ijEijk esa okD; dks fofHkUu :iksa esa ifjHkkf"kr fd;k x;k gSA bZlk iwoZ Hkk"kk'kkL=h; fpardksa esa Hkkjr esa iratfy vkSj ;wjksi esa fn;ksfufl;l FkzWDl dk uke mYys[kuh; gSA nksuksa gh vkpk;ksZa us okD; dh ifjHkk"kk bl izdkj nh gS & ^^iw.kZ vFkZ dh izrhfr djkus okys 'kCn lewg dks okD; dgrs gSaA**

3.4 सूचक शब्द :

पर्याय शब्द : उन दो या अधिक भाषिक अभिव्यक्तियों को पर्याय कहा जाता है जो अर्थ की दृष्टि से एक या प्रायः एक–सी होती हैं। वस्तुतः बहुत कम अभिव्यक्तियां परस्पर एकार्थी होती हैं। तथाकथित पर्याय प्रायः समानार्थी होते हैं।

विलोम शब्द : अर्थ के स्तर पर एक–दूसरे के विपरीत भाषिक इकाइयां विलोमार्थी या विपर्याय कहलाती हैं। जैसे–ज्ञान–अज्ञान, प्रकाश–अंधकार। वस्तुतः विलोमता किसी न किसी आधार पर होती है । इसीलिए एक शब्द के कई विलोम हो सकते हैं।

अनेकार्थी शब्द : शब्द मुख्यतः दो प्रकार के हैं : एकार्थक शब्द और अनेकार्थक शब्द। एकार्थक शब्दों का एक ही मुख्य अर्थ होता है जैसे पुस्तक, नदी, वृक्ष। लेकिन एकार्थक शब्द भी विभिन्न कारणों से विभिन्न अर्थों का बोध कराते हैं जैसे–शाम हो गई । कुछ शब्द एक से अधिक अर्थों का बोध कराते हैं उन्हें अनेकार्थक शब्द कहते हैं। एक शब्द के अनेक अर्थ कैसे हुए यह विवाद–विषय है।

रुप : भाषा विज्ञान के अध्ययन में वाक्य पहली इकाई है और रूप दूसरी महत्त्वपूर्ण इकाई है । भाषा को वाक्यों में खण्डित किया जाता है। वाक्य के खण्ड शब्द होते हैं और शब्द की इकाई ध्वनियाष। वस्तुतः कोशगत सामान्य शब्द और वाक्य में प्रयुक्त शब्द एक नहीं हैं। इस प्रकार शब्द के दो रूप हैं, एक मूल रूप होता है। वाक्य में प्रयुक्त शब्द ही ‘पद’ या ‘रूप’ कहलाता है।

संज्ञा– किसी प्राणी, भाव, वस्तु या स्थान या बोध कराने वाले शब्दों को संज्ञा कहते हैं । संज्ञाएं चार प्रकार की हैं – व्यक्तिवाचाक, जातिवाचक, भाववाचक, क्रियार्थक।

वाक्य : भाषा का मुख्य कार्य विचार या भाव की अभिव्यक्ति है। विचार या भाव की पूर्ण अभिव्यक्ति वाक्य के माध्यम से होती है। बिना वाक्य के विचार की अवस्थिति असम्भव है। वस्तुतः वाक्य की अव्यक्त अवस्था का नाम विचार है या विचार की ध्वनिमयी सार्थक व्यक्तावस्था का नाम वाक्य है। अतः वाक्य को सार्थक शब्दों का समूह माना जाता है जो भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से स्वयं में पूर्ण हों। कोशों और व्याकरणों में वाक्य की इसी प्रकार की परिभाषाएं मिलती हैं।

3.5 स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न :

1. पर्यायवाची का हिन्दी में प्रयोग स्पष्ट करें।
2. विलोम की अवधारणा स्पष्ट करते हुए उदाहरण दें।
3. वाक्य के मूल आधार स्पष्ट करें।
4. वाक्य के भेद बताते हुए उनकी संरचना स्पष्ट करें।

3.6 संदर्भित पुस्तकें :

- **शुद्ध हिन्दी**, लेखक – डा. हरदेव बाहरी, 2004
- **हिन्दी व्याकरण**, लेखक – पं. कमला प्रसाद गुरू, 2003
- **अच्छी हिन्दी**, लेखक – रामचंद्र वर्मा, 2003
- **हिन्दी का सही प्रयोग**, लेखक – नीलम मान, 2005
- **भाषा शास्त्र तथा हिन्दी भाषा की रुपरेखा**, लेखक – देवेंद्र कुमार शास्त्री, 2003

बीए मास कम्युनिकेशन, प्रथम वर्ष,

हिन्दी– बीएमसी 102

खंड–बी **इकाई - 2** **अध्याय–4**

संज्ञा, क्रिया, विशेषण, काल, वाच्य

लेखक : डा. मधुसूदन पाटिल, पूर्व वरिष्ठ व्याख्याता।

एस.आई.एम. शैली में परिवर्तन : डा. मनोज छाबड़ा, हिन्दी प्रवक्ता ।

अध्याय संरचनाः

इस अध्याय में हम संज्ञा, क्रिया, विशेषण, काल, व वाच्य का परिचय प्राप्त करेंगे। इन विषयों की अवधारणा पर विशेष जोर दिया जाएगा। इस अध्याय की संरचना इस प्रकार रहेगीः

4.0 उद्देश्य
4.1 परिचय
4.2 विषय वस्तु की प्रस्तुति
4.2.1 संज्ञा
4.2.2 क्रिया
4.2.3 विशेषण
4.2.4 काल
4.2.5 वाच्य
4.3 सारांश
4.4 सूचक शब्द
4.5 स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न
4.6 संदर्भित पुस्तकें

4.0 उद्देश्यः

इस अध्ययाय के उद्देश्य इस प्रकार हैंः

- संज्ञा के बारे में जानना
- क्रिया का जायजा लेना
- विशेषण के बारे में जानना
- काल की अवधारणा के बारे में जानना
- वाच्य के बारे में जानना

4.1 परिचयः

अभी तक हम स्वर, व्यंजन, शब्द, वाक्य आदि के बारे में चर्चा कर चुके हैं। शब्द व वाक्य भाषा की मूलभूत इकाई होती हैं। वाक्य की अलग-अलग इकाइयां तथा उनके भिन्न-भिन्न स्वरूपों के बारे में इस अध्याय में चर्चा की जाएगी। वाक्य की संरचना हेतु कर्ता या संज्ञा, क्रिया व कर्म की आवश्यकता होती है। इसके अलावा वाक्य संरचना में विशेषणों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। भाषा के प्रयोग, विशेषकर वाक्य संरचना में प्रमुख भूमिका निभाने वाले अन्य तत्व हैं - काल व वाच्य।

इस अध्याय में हम भाषा प्रयोग तथा वाक्य संरचना के इन सभी महत्वपूर्ण तत्वों के बारे में विस्तार से चर्चा करेंगे।

4.2 विषय वस्तु की प्रस्तुति :

इस अध्याय में भाषा प्रयोग तथा वाक्य संरचना के सभी महत्वपूर्ण तत्वों पर विशेष जोर दिया जाएगा। विषयों की प्रस्तुति इस प्रकार रहेगीः

- संज्ञा
- क्रिया
- विशेषण
- काल
- वाच्य

4.2.1 संज्ञा :

रचना की दृष्टि से संज्ञा (सम्+ज्ञा) शब्द का अर्थ होता है सम्यक् (ठीक) ज्ञान (पहचान) कराने वाला। व्याकरण में भी यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है। उदाहरण के लिए नीचे दिए हुए वाक्य देखिए–

- **गंगा भारत** की प्रसिद्ध नदी है।
- इस **विद्यालय** में बहुत छात्र हैं।
- हमें देश की **एकता** के लिए प्रयत्न करना चाहिए।
- **बुढापा दुःखों** का **घर है, यौवन आनन्द** का।

उपर्युक्त वाक्यों में काले शब्द–गंगा, भारत, नदी, विद्यालय, छात्र, देश, एकता, बुढापा, दुःखों, घर, यौवन, आनन्द–वस्तु, स्थान, प्राणी, भाव आदि के नाम हैं। नाम को ही संज्ञा कहते हैं । इस संसार में जितनी भी वस्तुएं, स्थान, प्राणी आदि हैं उनका कोई न कोई नाम तो होगा ही। इन्हीं नामों को संज्ञा कहेंगे। इस प्रकार–किसी वस्तु, प्राणी, स्थान, गुण, भाव आदि के नाम को संज्ञा कहते हैं। संज्ञा शब्दों के उदाहरण इस प्रकार हैं –

- **वस्तु** – पुस्तक, पंखा, जूता, कलम, दूध, मिठाई, पैसा, पलंग आदि।
- **प्राणी –** कुत्ता, गाय, चूहा, लड़की, कृष्ण, रमेश, कीड़ा, पक्षी, मछली आदि।
- **स्थान –** दिल्ली, भारत, लन्दन, नगर, गली, चबूतरा, पहाड़, नदी आदि।
- **गुण अवस्था या भाव** – सौंदर्य, मिठास, बुढापा, सचाई, सुझाव, सर्दी आदि।

संज्ञा के भेद :

उपर्युक्त उदाहरणों में–

(क) कुछ ऐसे नाम (संज्ञा शब्द) हैं जो किसी विशेष प्राणी, वस्तु या स्थान की पहचान कराते हैं।

(ख) कुछ ऐसे नाम (संज्ञा शब्द) हैं जो केवल साधारण जाति या वर्ग का ही बोध कराते हैं।

(ग) कुछ ऐसे नाम (संज्ञा शब्द) हैं जो केवल किसी गुण, अवस्था कार्य या भाव के द्योतक हैं।

अतः संज्ञा के तीन भेद हुए –

- *व्यक्तिवाचक संज्ञा*
- *जातिवाचक संज्ञा और*
- *भाववाचक संज्ञा*

व्यक्तिवाचक संज्ञा : जिस संज्ञा शब्द से किसी विशेष (एक ही) व्यक्ति वस्तु अथवा स्थान का नाम सूचीत होता हो उसे व्यक्तिवाचक संज्ञा कहते हैं। जैसे–गौतम बुद्ध, भारत, रामचरितमानस, प्रेमचन्द, गंगा आदि।

जातिवाचक संज्ञा : जिस संज्ञा शब्द से सम्पूर्ण जाति, वर्ग या समुदाय का बोध होता है, उसे जातिवाचक संज्ञा कहते हैं। जैसे पुरुष, पुस्तक, पशु, शहर, क्षत्रिय आदि। इन शब्दों में से किसी एक व्यक्ति, वस्तु अथवा स्थान की पहचान न होकर पूरी जाति या वर्ग का बोध होता है। अतः ये जातिवाचक संज्ञाए हैं।

भाववाचक संज्ञा : जिस संज्ञा शब्द से पदार्थों और प्राणियों के गुण–दोष, धर्म, अवस्था, भाव और व्यापार आदि का ज्ञान होता है, उसे भाववाचक संज्ञा कहते हैं। जैसे –पौरुष, चिकनाई, मिठास, परायापन, बचपन, चतुरता आदि।

विशेष टिप्पणी :

व्यक्तिवाचक और भाववाचक संज्ञाए सदा एकवचन में प्रयुक्त होती हैं। किन्हीं विशेष स्थितियों, आवश्यकताओं अथवा प्रसिद्धियों (रूढ़ियों) के कारण इनको जब किसी एक व्यक्ति या एक भाव के लिए प्रयोग न करके व्यक्ति सामान्य या भाव सामान्य के लिए प्रयुक्त किया जाता है तो ये जातिवाचक बन जाती हैं। उस समय ये बहुवचन भी हो सकती हैं।

उदाहरण के लिए :

जयशंकर प्रसाद हिन्दी के **कालिदास** हैं।

एक भगतसिंह के बलिदान ने अनेक **भगतसिंह** पैदा कर दिए।

राम **सद्गुणों** के भण्डार हैं।

काशमीर **सुन्दरताओं** की जन्मभूमि है।

प्रथम दो वाक्यों में कालिदास और भगतसिंह नाम व्यक्तिवाचक न रहकर जातिवाचक या व्यक्तिवाचक के बोधक बहुवचन हो गए हैं। इसी प्रकार सद्गुण और सुन्दरता नाम भाव जातिवाचक होने से बहुवचन हैं।

उपर्युक्त के विपरीत कभी-कभी जातिवाचक संज्ञा व्यक्ति विशेष का बोध कराने लगती है और तब वह व्यक्तिवाचक की तरह प्रयुक्त होती हैं। दो उदाहरण लीजिए-

नेहरू भारत के राष्ट्रनायक थे।

शर्मा मेरा मित्र है।

पहले उदाहरण में नेहरू शब्द सम्पूर्ण जाति के लिए प्रयुक्त होते हुए भी यहां केवल व्यक्ति विशेष का ही द्योतक है। दूसरे उदाहरण में भी शर्मा जाति के सभी लोग नहीं अपितु किसी विशेष, शर्मा का उल्लेख हुआ है। अतः ये दोनों शब्द जातिवाची होते हुए भी व्यक्तिवाचक बन गए हैं।

भाषा में वैसे तो विशेषण शब्द सर्वदा संज्ञाओं या सर्वनामों की विशेषता के रूप में ही प्रयुक्त होते हैं। किन्तु कभी-कभी जातिवाचक संज्ञाओं के समान भी व्यवहार में आते हैं।

जैसे -

निर्बलों को मत सताओ।

छोटों से प्यार करो।

दीनों पर दया करो।

इन वाक्यों में यद्यपि निर्बल, छोटा और दीन शब्द विशेषण हैं, फिर भी यहां इनका प्रयोग जातिवाचक संज्ञा के समान किया गया है, अतः ये जातिवाचक संज्ञा शब्द हैं।

भाववाचक संज्ञा बनाना :

भाववाचक संज्ञाए चार प्रकार के शब्दों से बनती हैं-

1. जातिवाचक संज्ञा से
2. सर्वनाम से।
3. विशेषण से।
4. क्रिया से।

नीचे प्रत्येक के उदाहरण दिए जाते हैं –

जातिवाचक संज्ञा से – भ्रातृ – भ्रातृत्व, देव – देवत्व, स्त्री – स्त्रीत्व, पशु – पशुत्व, – पशुता, व्यक्ति – व्यक्तित्त्व, बंधु – बंधुत्व, क्षत्रिय – क्षत्रियत्व, ब्राह्मण – ब्राह्मणत्व, प्रभु – प्रभुता, मनुष्य – मनुष्यता, वीर – वीरता, मित्र – मित्रता, विद्वान – विद्वता, आदमी – आदमीयता, पुरुष – पुरुषता, ठग – ठगी

सर्वनाम से – अपना – अपनापन, पराया – परायापन, अजनबी – अजनबीपन, सर्व – सर्वस्व, मम – ममत्व, – ममता, निज – निजत्व, स्व – स्वत्व, आप – आपा

विशेषण से – सुन्दर – सुन्दरता, – सौन्दर्य, मधुर – मधुरता, – माधुर्य, चतुर – चतुरता, – चातुर्य,

लघ – लघुता, – लाघव, सूक्ष्म – सूक्ष्मता, मूर्ख – मूर्खता, शिष्ट – शिष्टता, विस्तृत – विस्तार, हरा – हरियाली, उचित – औचित्य, गंभीर – गंभीरता, गांभीर्य – आलसी – आलस्य, ज़ालिम – जुल्म, धीर – धैर्य, ललित – लालित्य , भयानक – भय

क्रिया से – सिकुडना – सिकुड़ा, देखना – दिखावा, सुधारना – सुधार, उतारना – उतार – उतरना – उतराई, – उतार, धोना – धुलाई, सीना, – सिलना – सिलाई, जीना – जीवन, मिलना – मिलाप, जलना – जलन, लिखना – लेख, मिलना – मेल, – मिलाप, बहना – बहाव, तैरना – तैराकी, सुनना – सुनवाई, उड़ना – उड़ान

संज्ञा के अन्य भेद :

कुछ वैयाकरण अंग्रेजी व्याकरण के आधार पर संज्ञा के दो भेद और मानते हैं जिससे संज्ञा के कुल पांच भेद हो जाते हैं। परन्तु कुछ अन्य इन भेदों को जातिवाचक संज्ञा के अन्तर्गत ही मानते हैं। ये दो भेद हैं–

समुदायवाचक संज्ञा – जिस संज्ञा शब्द से समूह या समुदाय का बोध होता है उसे समुदायवाचक संज्ञा कहते हैं। जैसे –सेना, कक्षा, सभा, पुस्तकालय, चिड़ियाघर, दल।

द्रव्यवाचक संज्ञा – जिस संज्ञा शब्द से किसी द्रव्य, पदार्थ या धातु आदि का ज्ञान होता है उसे द्रव्यवाचक संज्ञा कहते हैं।

जैसे – **द्रव**–तेल, दूध, पानी, घी, शरबत, रस आदि।

पदार्थ –चावल, गेहूं, लकड़ी, कोयला आदि।

धातु – सोना, चांदी, तांबा, लोहा, पीतल आदि।

गणनीय संज्ञाए और अगणनीय संज्ञाए –

गणनीय का अर्थ होता है गिने जाने योग्य। चूंकि गिनती की एक से ज्यादा वस्तुओं में ही जरूरत पड़ती है। अतः गणनीय संज्ञाएं उन संज्ञाओं को कहेंगे जो अनेक होती हैं और जिनकी गणना (गिनती) की जा सकती है जैसे–शीशी, पहाड़, तालाब, कंघी, कलम आदि गणनीय संज्ञाए हैं। गणनीय संज्ञाओं के बहुवचन बन सकते हैं। गणनीय संज्ञाओं के विपरीत ऐसी संज्ञाए हैं जिनकी गणना नहीं की जा सकती, अगणनीय संज्ञाए कहलाती हैं । ये बहुधा एकवचन में प्रयुक्त होती है। उदाहरण के लिए ये वाक्य देखिए–

1. राजीव घाट–घाट का **पानी** पिये हुए है।
2. बागों में **घास** लगी होती है।
3. गायें, भैंसें और बकरियां **दूध** देती हैं।

इन वाक्यों में **पानी, घास** और **दूध** संज्ञाएं बहुवचन में नहीं हो सकतीं क्योंकि ये अगणनीय हैं । इसी प्रकार राधा, सोना, तेल, रूदन, मक्खन, हंसी आदि संज्ञाएं भी अगणनीय हैं कभी–कभी अगणनीय संज्ञाए बहुवचन में प्रयुक्त होती हुई भी देखी जाती हैं। ऐसा तब होता है जब प्रायः इनकी विविधता या बहुलता की सूचना दी जाती है जैसे –

अगणनीय जातिवाचक या द्रव्यवाचक संज्ञा–

1. **दूधों** नहाओं पूतों फलों।
2. **तेलों** के भाव बढ़ रहे हैं।

अगणनीय व्यक्तिवाचक संज्ञा –

1. पाखंडी **ईश्वरों** ने ईश्वरत्व को बदनाम कर दिया है।
2. **जयचन्दों** के कारण ही भारत का सर्वनाश हुआ है।

अगणनीय भाववाचक संज्ञा – लोग **खुशियां** मना रहे हैं।

उपर्युक्त वाक्यों मे दूधों, तेलों, ईश्वरों, जयचंदों और खुशियों का प्रयोग अगणनीय संज्ञाओं की विविधता या अधिकता की सूचना देने के लिए हुआ है।

प्राणीवाचक संज्ञाएं और अप्राणीवाचक संज्ञाएं –

संसार में प्रायः दो प्रकार की वस्तुएं हैं – सजीव और निर्जीव । सजीव वस्तुओं को प्राणी कहते हैं। इसलिए इनके नाम को प्राणीवाचक संज्ञा कहेंगे, जैसे –घोड़ा, कीड़ा, हाथी, बालक, तोता आदि। इनके विपरीत जो वस्तुएं निर्जीव हैं, वे न तो चल–फिर सकती हैं, न ही हिल–डोल और बोल सकती हैं। ये सुख–दुःख के बोध से रहित अप्राणीवाचक संज्ञाएं हैं – जैसे पुस्तक, मेज, बम्बई, चांदी आदि।

4.2.2 क्रिया :

जिस शब्द से किसी कार्य के होने या करने का बोध हो अथवा जिस शब्द से किसी वस्तु, व्यक्ति या घटना होने (अस्तित्त्व) का बोध हो, उसे क्रिया कहते हैं जैसे–

- **शेर** जंगल में मिलता है।
- **हिमालय** सबसे ऊंचा पर्वत है।
- पहाडों पर **बरफ** होती है।
- मैं पत्र लिख **रहा** हूं।
- लोग पूजा कर **रहे** हैं
- कुत्ता हड्डी **चबाता** है।

प्रथम तीन वाक्यों में मोटे (काले) शब्द वस्तु या व्यक्ति के होने का बोध कराते हैं और इसीलिए ये अस्तित्त्ववाची क्रिया के उदाहरण हैं। शेष तीन वाक्यों के मोटे (काले) शब्द किसी कार्य का बोध कराते हैं अतः ये कार्यवाची क्रिया के उदाहरण हैं।

धातु–

क्रिया के मूल रूप को धातु कहते हैं, जैसे –उठ, बैठ, चल, लिख, सो, खा, पी आदि धातुएं हैं जिनमें 'ना' प्रत्यय लगाने से क्रमशः उठना, बैठना, चलना, सोना, लिखना, खाना, पीना आदि क्रिया के सामान्य रूप बनते हैं।

मूल धातु का प्रयोग – क्रिया के सामान्य रूपों (खाना, जाना, सोना आदि) के अतिरिक्त मूल धातु का क्रिया के रूप में प्रयोग 'तू' सर्वनाम के साथ आज्ञार्थ होता है जैसे –तू खा, तू जा, तू सो आदि।

धातु भेद – रचना की दृष्टि से धातुएं पांच प्रकार की होती हैं –

सरल धातु

समस्त धातु

संयुक्त धातु

संज्ञापरक और विशेषणपरक धातु और

नाम धातु।

सरल धातु – सरल धातु में मूल धातु अकेली रहती है जैसे–खा, पढ़, सो, जा, ले आदि।

समस्त धातु – जब दो धातुएं इकट्ठी आती हैं तब वे समस्त धातु बनाती हैं । यह रचना तीन प्रकार से होती है –

दो समानार्थक धातुओं का योग जैसे–चल–फिर, खा–पी, नाच–गा, पढ़–लिख आदि।

दो विपरीतार्थक धातुओं का योग जैसे –ले–दे, मर–जी, आ–जा, सो–जाग आदि।

निरर्थक अंश का योग जैसे – मिल–जुल, मर–वर, पूछ–ताछ आदि।

संयुक्त धातु– जब दो धातुएं एक साथ आती हैं –उन दोनों में से पहली मूल धातू और दूसरी रंजक धातु (सहायक या विशेषता उत्पादक) होती है तो उसे संयुक्त धातु कहते हैं । जैसे–रमेश ने मार डाला, मुझे बोलने दो, मुर्दा जी उठा आदि। मूल धातुओं के साथ जो मुख्य रंजक धातुएं मिलती हैं उनके सामान्य क्रिया रूप निम्नलिखित है :

चाहना	इच्छा बोधक	मैं जाना चाहता हूं।
चुकना	समाप्ति बोधक	सुरेश खा चुका है।
जाना	निरन्तरता बोधक	बालक रोये जाता है।

गया	समाप्ति बोधक	कबूतर उड़ गया ।
उठना	आकस्मिकता बोधक	मुर्गा बोल उठा।
करना	अभ्यास बोधक	गीता लिखा करती है।
पड़ना	आकस्मिकता बोधक	वह पेड़ से गिर पड़ा।
देना	अनुमति बोधक	मुझे पढ़ने दो।
डालना	पूर्णता बोधक	शेर ने हिरन को मार डाला।
सकना	शक्ति बोधक	यह बच्चा चल सकता है।
लगना	आरंभ बोधक	राम स्कूल जाने लगा।
पाना	अवकाश बोधक	मैं अच्छी तरह से सो नहीं पाया।

संज्ञापरक और विशेषणपरक धातु – विभिन्न संज्ञा शब्दों तथा विशेषण शब्दों के साथ 'कर' 'दे' और 'हो' क्रियाएं लगने से ऐसी धातुएं बनती हैं । इनके प्रयोग देखिए, जैसे–विवाह करना, स्वीकार करना, अनुमति देना, आज्ञा देना, नाराज होना, सीधा होना आदि।

नाम धातु – जो धातु संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण से बनती है, उसे नाम धातु कहते हैं, जैसे–

संज्ञा से – दुःख–दुखाना, लात–लतियाना, बात–बतियाना।

सर्वनाम से – अपना–अपनाना।

विशेषण से – दुहरा–दुहराना (दोहराना),गरम–गरमाना

क्रिया का निर्माण –

क्रिया तीन प्रकार के शब्दों से बनाई जाती है–

धातु से

संज्ञा से

विशेषण से।

धातु से क्रिया का निर्माण –

लिख–लिखना मिल–मिलना

पढ़–पढ़ना रख–रखना

संज्ञा से क्रिया का निर्माण –

लोभ–लुभाना पहचान–पहचानना

हाथ–हथियाना लज्जा–लजाना

विशेषण से क्रिया का निर्माण –

मोटा–मुटाना गरम–गरमाना

सांवला–संवलाना चिकना–चिकनाना

क्रिया पद – जब क्रिया के सामान्य रूप से 'ना' प्रत्यय हटाकर उसके साथ क्रिया–प्रत्यय लगाते हैं तो वह क्रिया पद कहलाता है, जैसे–

नाचना–नाचता है, नाचती थी, नाचेंगे आदि।

रोना–रोया, रोता होगा, रोने लगा आदि।

क्रिया के भेद – सामान्यतः क्रिया के दो भेद होते हैं–

अस्तित्ववाची

कार्यवाची।

अस्तित्त्ववाची – वस्तु के होने का बोध कराने वाली क्रिया को अस्तित्त्ववाची क्रिया कहते हैं, जैसे–यह मेरा विद्यालय है – इस वाक्य में 'है' शब्द।

कार्यवाची – कार्य का बोध कराने वाली क्रिया को कार्यवाची कहते हैं , जैसे–सोना, जागना, लेना, देना, मारना आदि।

कर्म के आधार पर क्रिया के भेद–

कर्म की दृष्टि से क्रिया के दो भेद हैं–

- o अकर्मक क्रिया
- o सकर्मक क्रिया

अकर्मक क्रिया – अकर्मक क्रिया उस क्रिया शब्द को कहते हैं जिसके द्वारा प्रकट किए हुए कर्म (व्यापार) का फल कर्त्ता के अतिरिक्त किसी अन्य को न मिलता हो। (अर्थात् व्यापार और फल दोनों कर्त्ता में ही रहें) जैसे –

बालक खेलता है । बादल गरजते हैं। मोर नाचता है।

उपर्युक्त वाक्यों में खेलना, गरजना, नाचना अकर्मक क्रियाएं हैं।

सकर्मक क्रिया – अकर्मक क्रिया ऐसे क्रिया शब्द को कहते हैं जिससे प्रकट किए हुए कार्य (व्यापार) का फल कर्त्ता के अतिरिक्त कर्म को मिलता है (अर्थात् कर्त्ता को न मिलकर किसी दूसरे को मिलता है) जैसे– संगीता वीणा **बजाती** है। मल्लाह नाव **चलाता** है । इन दोनों उदाहरणों में 'बजाने' का फल 'वीणा' कर्म पर और 'चलाने' का फल 'नाव' कर्म पर पड़ रहा है। अतः ये सकर्मक क्रिया के उदाहरण हैं।

अकमर्क और सकर्मक की पहचान –क्रिया के आगे क्या, किसको या किसे लगाने पर यदि वहां से उत्तर प्राप्त होता है तो वह क्रिया सकर्मक होगी अन्यथा अकर्मक। जैसे उपर्युक्त उदाहरणों से क्या के उत्तर क्रमशः वीणा और नाव मिलते हैं, अतः ये सकर्मक हैं।

कहीं–कहीं अकर्मक क्रिया के व्यापार को एक भांति का कर्म समझकर क्रिया के साथ लगाने से वह सकर्मक बन जाती है । 'वह चैन की नींद सोता है' में 'सोता है' सकर्मक है।

कुछ क्रियाएं उभयविध होती है अर्थात् उन्हें अकर्मक और सकर्मक दोनों प्रकार से प्रयुक्त करते हैं, जैसे–

अकर्मक	**सकर्मक**
लड़का अकड़ता है।	लड़का मां से अकड़ता है।
वह चलती है।	वह पैरों से चलती है।
सीता लजाती है।	सीता गीता को लजाती है।
उसका मन ललचाता है।	उसका मन मिठाई को ललचाता है।

अकर्मक क्रिया से सकर्मक क्रिया–

दो अक्षरों वाली अकर्मक धातु के पहले अथवा दूसरे स्वर को और तीन अक्षर वाली धातु के दूसरे या तीसरे स्वर को दीर्घ कर देने से अकर्मक क्रिया सकर्मक हो जाती है, जैसे –

अकर्मक	**सकर्मक**	**अकर्मक**	**सकर्मक**
गिरना	गिराना	पिघलना	पिघलाना
मिलना	मिलाना	खिसकना	खिसकाना
मरना	मारना	पकड़ना	पकड़ाना
गड़ना	गाड़ना	उजड़ना	उजाड़ना

चढ़ना	चढ़ाना	सिकुड़ना	सिकोड़ना
पलना	पालना	तड़पना	तड़पाना

अकर्मक क्रिया के 'इ' को 'ए' और 'उ' को 'ओ' कर देने से सकर्मक क्रिया बनती है , जैसे–

अकर्मक सकर्मक

दिखना देखना

जुड़ना जोड़ना

खुलना खोलना

तुलना तोलना

घिरना घेरना

मुड़ना मोड़ना

कुछ अकर्मक क्रियाओं के 'ट' को 'ड़' करने से सकर्मक क्रियाएं बनती हैं, जैसे –

फूटना फोड़ना

छूटना छोड़ना

टूटना तोड़ना

फटना फाड़ना

सकर्मक क्रियाओं में एक या दो कर्म होने पर उसके दो भेद होते हैं – एकर्मक व द्विकर्मक।

एकर्मक –एक कर्म वाली सकर्मक क्रिया, जैसे –

राम दान देता है ।

मोहन पत्र लिखता है।

द्विकर्मक – दो कर्म वाली सकर्मक क्रिया, जैसे– राम साधुओं को दान देता है । मोहन पिताजी को पत्र लिखता है । इन वाक्यों में 'साधुओं को' और 'दान देना' तथा 'पिता जी को' और 'पत्र लिखना' ये दो–दो कर्म हैं।

द्विकर्मक क्रियाओं का एक कर्म मुख्य होता है और दूसरा गौण। मुख्य और गौण कर्मों को जानने की विधि यह है कि क्रिया के साथ 'क्या' और 'किसको' प्रश्न के रूप में लगाइए। क्या के उत्तर में जो कर्म आये वह मुख्य होगा और किसको के उर्त्तर में जो आये, वह गौण कर्म होगा।

क्रियाओं के अन्य भेद– क्रियाओं के निम्नलिखित भेद हैं–

- अपूर्ण क्रिया
- प्रेरणार्थक क्रिया
- पूर्वकालिक क्रिया
- संयुक्त क्रिया
- सहायक क्रिया
- नामधातु क्रिया
- नाम बोधक क्रिया।

अपूर्ण क्रियाएं – कर्त्ता और क्रिया के रहते हुए भी जब क्रिया का पूरा आशय स्पष्ट नहीं हो तो वह अपूर्ण क्रिया कहलाती है।

पूरक – अपूर्ण या अस्पष्ट आशय को पूरा करने के लिए लगाया जाने वाला शब्द पूरक कहलाता है।

अपूर्ण क्रियाओं के भेद –अपूर्ण क्रियाएं अकर्मक भी होती हैं और सकर्मक भी। अतः इनके दो भेद हुए–

अपूर्ण अकर्मक क्रियाएं – ये ऐसी अकर्मक क्रियाएं होती हैं जो कर्त्ता के होते हुए भी अपूर्ण अर्थ रखती हैं, जैसे– 'दारासिंह है'। इस वाक्य का अर्थ पूर्ण करने के लिए इसमें कर्तुपूरक 'पहलवान' शब्द आवश्यक है – दारासिंह पहलवान है। अपूर्ण अकर्मक क्रिया को पूर्ण करने के लिए जो संज्ञा या विशेषण आदि पूरक लगाते हैं उसे कर्तृपूरक कहते हैं।

अपूर्ण सकर्म क्रियाएं – ये ऐसी सकर्मक क्रियाएं होती हैं जो एक कर्म के रहते हुए भी अर्थ का अपूर्ण ज्ञान कराती हैं, जैसे–कृष्ण जगदीश को बनाता है। इस वाक्य का अर्थ स्पष्ट करने के लिए 'मूर्ख' जैसा कोई कर्मपूरक शब्द लगाना पड़ेगा, जैसे– कृष्ण जगदीश

को मूर्ख बनाता है। अपूर्ण सकर्मक क्रिया को पूर्ण करने के लिए संज्ञा या विशेषण आदि पूरक शब्द जोड़ते हैं तो उसे कर्मपूरक कहते हैं।

प्रेरणार्थक क्रियाएं – जिस क्रिया शब्द से यह पता चले कि कर्त्ता स्वयं कार्य न करके किसी अन्य को उसके करने की प्रेरणा देता है अर्थात् कार्य को किसी अन्य से करवाता है, उसे प्रेरणार्थक क्रिया कहते हैं, जैसे–पिता अध्यापक से बालक को पढ़वाता है। नरेश रसोइए से भोजन पकवाता है। प्रेरणार्थक क्रियाओं में दो कर्त्ता होते हैं:

प्रेरक कर्त्ता – प्रेरणा देने वाला।

प्रेरित कर्त्ता – जिसे प्रेरणा दी जाती है।

प्रेरणार्थक क्रियाएं अकर्मक और सकर्मक दोनों क्रियाओं से बनती हैं । अकर्मक जब प्रेरणार्थक बनती है तो वह सकर्मक हो जाती है। प्रेरणार्थक क्रिया के भी दो रूप होते हैं।

पहली प्रेरणार्थक – जब कर्त्ता स्वयं कार्य में सम्मिलित होकर प्रेरणा देता है, जैसे–मैं उसे गीत सुनाता हूं । गोपाल रामचन्द्र को हंसाता है।

दूसरी प्रेरणार्थक – जब कर्त्ता स्वयं कार्य न करके किसी दूसरे का कार्य करने की प्रेरणा देता है जैसे–मैं उसे गायक से गीत सुनवाता हूं। गोपाल रामचन्द्र को मोहन से हंसवाता है। यहां क्रिया द्विकर्मक हो जाती है।

पूर्वकालिक क्रियाएं – एक क्रिया से पहले यदि कोई दूसरी क्रिया हुई हो अर्थात् कर्त्ता एक क्रिया को समाप्त करके दूसरी क्रिया में प्रवृत्त हो जाये तो पहली क्रिया पूर्वकालिक (पहले काल की) कहलाती है, जैसे – वह **खाकर** सो गया। राम श्याम को **पीटकर** रोने लगा।

उपर्युक्त वाक्यों में 'खाकर' और 'पीटकर' पूर्वकालिक क्रियाएं हैं। पूर्वकालिक क्रिया बनाने के लिए मूल धातु के साथ 'कर' अथवा 'करके' जोड़ते हैं, जैसे –पी+कर, रो+कर, मार+करके, देख+करके।

तात्कालिक क्रिया – जब एक क्रिया के समाप्त होते न होते उसी समय दूसरी क्रिया आरम्भ हो जाये तो पहली क्रिया को तत्कालिक क्रिया कहते हैं । यह क्रिया मूल धातु में 'ते' प्रत्यय ओर आगे 'ही' निपात लगाने से बनती है, जैसे –सो+ते ही, जाग+ते ही, उठ+ते आदि। इन्हें वाक्यों में देखिए–

- मालिक के सोते ही नौकर भाग गया।
- कुते के जागते ही बिल्ली को खिसकना पड़ा।
- दादी को उठते ही पैर में पीड़ा होती है।

संयुक्त क्रियाएं और रंजक क्रियाएं :

ये मूल और रंजक धातुओं से बनने वाली क्रियाएं होती हैं। विस्तार के लिए इस अध्याय के प्रारम्भ में देखिए–संयुक्त धातु।

विशेषण या विशेष्य पदयुक्त संयुक्त क्रियाएंः

विशेषण या विशेष्य पद के साथ कर, हो, दे, खा, मार आदि धातुओं के योग से ऐसी क्रियाएं बनती हैं। **संज्ञा परक और विशेषण परक धातु** के अन्तर्गत आप इनके विषय में जान चुके हैं। ये प्रयोग के अनुसार बनने वाली संयुक्त क्रियाएं हैं जैसे–याद करना, नाराज होना, आवाज देना, ठोकर खाना, छलांग मारना आदि।

सहायक क्रियाएं – क्रिया पदबन्ध में मूल क्रिया के अतिरिक्त जितनी भी क्रियाएं होती हैं, उन्हें सहायक क्रियाएं कहते हैं। सहायक क्रियाओं का मुख्य कार्य है विविध रूपों में मूल या मुख्य क्रिया की सहायता करना, जैसे–'जाना' मूल क्रिया की सहायता सहायक क्रियाएं 'रही थी', 'चुका है' के रूप में निम्न वाक्यों में कर रही है – गाड़ी जा रही थी। लड़का जा चुका है।

रंजक क्रिया – मूल क्रिया में विशेषता उत्पन्न करने वाली, जैसे –

यह बकरी खाती है। बन्दर उछल पड़ता है।

वाच्य बोध क्रिया – कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य बनाने के लिए जब 'जा' को क्रिया पद से जोड़ा जाता है तो उसे बोधक क्रिया कहते हैं। जेसे– अब छात्रों को पढ़ाया जा सकता है। इतने कम रूपयों से काम कैसे शुरू किया जा सकता है ?

वृत्ति बोध क्रिया : कर्म की वृत्ति का बोध कराने वाली क्रिया। ये संख्या में चार होती हैं – रह, सक, चुक तथा चाहिए। जैसे–मैं जा रहा हूं। क्या तुम खाना खा चुके ? राम को पुस्तक चाहिए।

काल बोधक क्रिया – काल अर्थात् वर्तमान, भूत या भविष्यत् को बताने वाली क्रिया, जैसे –

मैं लिख रहा हूं।	वर्तमान
मैं लिख रहा था।	भूत
मैं लिखता रहूंगा	भविष्यत्

नाम धातु क्रिया – संज्ञा, सर्वनाम या विशेषण अर्थात् नाम धातु से बनने वाली क्रिया को नाम धातु

क्रिया कहते हैं। उनके उदाहरण अध्याय के प्रारम्भ में 'नाम धातु' के अन्तर्गत देखिए।

नामबोधक क्रिया – संज्ञा या विशेषण शब्द के साथ क्रिया शब्द जोड़ने से बनने वाली क्रिया को नामबोधक क्रिया कहते हैं, जैसे –सेवा (संज्ञा) करो (क्रिया)।

तेजी आई है।

वह सुखी (विशेषण) है (क्रिया)।

तुम डरपोक हो।

क्रियार्थक संज्ञा–

क्रिया शब्द क्रिया का काम भी करते हैं और संज्ञा का भी। जो क्रिया शब्द संज्ञा के समान प्रयुक्त हो उसे क्रियार्थक संज्ञा कहते हैं। जिस तरह से संज्ञा के कारक रूप बनते हैं, इसी तरह से ऐसे क्रिया शब्दों के भी कारक रूप बनते हैं, अन्यथा क्रिया के साथ कभी विभक्ति चिन्ह नहीं आता जैसे–समझना, गाना, लिखना आदि क्रियाएं हैं। इनका क्रियार्थक संज्ञा रूप देखिए –

1. यह विद्यार्थी पाठ **समझने में** बड़ा तेज है। 2. मुझे उसका **गाना** बहुत पसन्द है। 3. तुम्हारे **लिखने से** बात नहीं बिगड़ेगी।

क्रियार्थक विशेषण–

जब क्रिया शब्द विशेषण के समान संज्ञा शब्द की विशेषता भी बताने लगते हैं तो ये क्रियार्थक विशेषण कहलाते हैं, जैसे –बैठना, सूखना, झुकना आदि क्रियाएं निम्न वाक्यों में क्रियार्थक विशेषण के समान उपयुक्त हुई हैं –

1. वह **बैठे–बैठे** ऊंघता है। 2. **सूखा हुआ** पेड़ कैसे हरा हो सकता है ? 3. उसकी **झुकी** कमर से उम्र का धोखा न खाइए।

आज्ञार्थक अथवा विधि क्रिया –

जिस क्रिया का प्रयोग आज्ञा, अनुमति और प्रार्थना आदि का बोध कराता है, उसे आज्ञार्थक या विधि क्रिया कहते हैं, जैसे –

यहां **आओ**। इधर **जायें**। अपनी पुस्तक **दिखाइए।**

बड़ों का सम्मान **कीजिए**। बाढ़ सहायता कोष में दान **दीजिए।**

4.2.3 विशेषण :

बच्चे खेलते हैं। दो बच्चे खेलते हैं। अच्छे बच्चे खेलते हैं। थोड़े–से बच्चे खेलते हैं। स्वस्थ बच्चे खेलते हैं। उनके बच्चे खेलते हैं।

उपर्युक्त पहले वाक्य में कुछ न कुछ जोड़कर अगले वाक्यों में 'बच्चे' संज्ञा की कोई विशेषता प्रकट की गई है। यह विशेषता प्रत्येक वाक्य में भिन्न प्रकार की है। विशेषता बताने वाले इन शब्दों को ही व्याकरण में विशेषण कहते हैं। विशेषण की परिभाषा है –

संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता, रूप, रंग, गुण–दोष, संख्या अथवा परिणाम को बताने वाले शब्दों को विशेषण कहते हैं।

जिसकी विशेषता बताई जाए (संज्ञा या सर्वनाम) उसे विशेष्य कहते हैं।

उपर्युक्त वाक्यों में मोटे (काले) शब्द कई प्रकार के विशेषण हैं, जैसे –'अच्छे' और 'स्वस्थ' में बच्चों के गुण और दशा है, 'दो' और 'थोड़े–से' निश्चित और अनिश्चित संख्याएं हैं, 'उनके' सर्वनाम सम्बन्ध सूचक हैं। ऐसी विशेषताएं और भी बहुत–सी हो सकती हैं,

जैसे–मोटा, गोरा, गंदा, सुन्दर, कुरूप, छोटा, लम्बा आदि। इन सब विशेषताओं को चार प्रकार की माना जाता है, अतः विशेषण भी चार प्रकार के होते हैं –

विशेषण के भेद –

1. गुणवाचक विशेषण (Qualitative Adjective)
2. परिणामवाचक विशेषण (Quantiative Adjective)
3. संख्यात्मक विशेषण (Numera Adjective)
4. सार्वनामिक या संकेतवाचक विशेषण (Qualitative Adjective)

प्रत्येक भेद का विस्तृत विवेचन नीचे दिया जाता है –

गुणवाचक विशेषण –

गुणवाचक विशेषण संज्ञा या सर्वनाम के गुण–दोष, रंग–रूप और आकार आदि को बताते हैं। प्रकार भेद की दृष्टि से गुणवाचक विशेषण निम्नलिखित विशेषताएं स्पष्ट करते हैं –

गुण –शिष्ट, अशिष्ट, सच्चा, झूठा, दानी, धनी, दयालु, उदार आदि।

रंग – काला, पीला, नीला, सफेद, हरा, लाल, सुनहरा, चमकीला आदि।

आकार– छोटा, बड़ा, गोल, ऊंचा, लम्बा, चौड़ा, तिकोना, चौकोर आदि।

स्वाद – खट्ठा, मीठा, मधुर, कड़वा, नमकीन, तिक्त, कसैला आदि।

स्पर्श – कठोर, नरम, खुरदरा, कोमल, चिकना, स्निग्ध आदि।

गंध – सुगंधित, दुर्गंधूपर्ण, खुशबूदार, बदबूदार, सोंधा आदि।

दिशा – उत्तरी, पूर्वी, पश्चिमी, दक्षिणी, पश्चिमोत्तरी, पाश्चात्य आदि।

दशा– नया, पुराना, स्वस्थ, बीमार, रोगी, फटा हुआ आदि।

अवस्था– युवा, बूढा, अधेड, प्रौढ़, तरूण आदि।

स्थान– ग्रामीण, भारतीय, रूसी, बनारसी, देशी, विदेशी, बाहरी आदि।

काल– आधुनिक, प्राचीन, ताजा, पुराना, बासी, ऐतिहासिक आदि।

गुणवाचक विशेषण के कुछ उदाहरण देखिए –

बीमार को **मीठा** अनार दो। यह **सीधा** रास्ता है। **सफेद** कबूतर उड़ गया। सीता का मकान **गोल है और गीता का** चौकोर।

परिमाणवाचक विशेषण–

निम्नलिखित चार वाक्यों में संज्ञाओं के विशेषणों की मात्रा, नाप–तौल आदि को देखिए –

राम एक **किलो** दूध पीता है।

रानी की साड़ी **छह मीटर लम्बी** है।

मेरा अभी **कुछ** काम बाकी है।

वह **थोड़ी दूर** जाकर लौट आयेगा।

चारों वाक्यों में मात्रा, वजन, नाप आदि बताने के लिए जो विशेषण लाये गये, वे परिमाणवाचक हैं। अतः

जो वस्तुएं गिनकर नहीं, तौलकर या नापकर दी, ली या कही जाती हैं उन्हें सूचीत करने वाले विशेषणों को परिणामवाचक विशेषण कहते हैं।

अब इन चार वाक्यों में से पहले को देखिए – दूध का निश्चित वजन और साड़ी की निश्चित लम्बाई बताई गई है । शेष दो वाक्यों में काम और दूरी निश्चित नहीं बताई गई। इससे यह सिद्ध हुआ कि परिमाणवाचक विशेषण दो प्रकार के होते हैं –

निश्चित परिणामवाचक विशेषण – जैसे सौ मीटर, एक मील, पांच बोरी, दो किलो आदि।

अनिश्चित परिणामवाचक विशेषण – कुछ, थोड़ा, बहुत, अधूरा, कम आदि।

संख्यावाचक विशेषण –

जिन संज्ञाओं को परिणाम से नहीं, गणना या संख्या से जाना जाता है, उनकी गणना या संख्या बताने वाले विशेषण संख्यावाचक होते हैं। यह परिणामवाचक विशेषण से भिन्न होता है। वहां नापने या तोलने के योग्य संज्ञाओं की विशेषता बताई जाती है। यहां गिनने के योग्य संज्ञाओं की। जैसे–

पेड़ पर चार **चिड़िया बैठी हैं।**

कक्षा में **तीस** विद्यार्थी हैं।

कुछ रूपये मुझे भी देना।

बाजार में **कई** दुकानें हैं।

उपर्युक्त चार वाक्यों में निश्चित संख्या भी बताई गई है (जैसे-चार, तीस) और अनिश्चित भी (जैसे-कुछ, कई)। अतः संख्यावाचक विशेषण के दो भेद होते हैं-

निश्चित संख्यावाचक विशेषण

अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण

निश्चित संख्यावाचक विशेषण के भी निम्नलिखित **पांच भेद** होते हैं-

अंक-बोधक - जिससे अंक या गिनती का बोध हो जैसे-एक, तीन, आधा, चौथाई, साढ़े पांच, सवा छह आदि।

कम-बोधक - जिससे केवल आगे-पीछे का क्रम ज्ञात हो, जैसे-पहला, चौथा, ग्यारहवां, इक्कीसवां आदि।

आवृत्ति बोधक - जिससे किसी संख्या के गुणन का बोध हो जैसे - दुगुना, चौगुना, इकहरा, दुहरा, तिहरा आदि।

समूह-बोधक - जिससे सामूहिक संख्या का ज्ञान हो जैसे-अकेला, दोनों, पांचों, आठों आदि।

प्रत्येक-बोधक - जिससे प्रत्येक का या विभाग का बोध होता है , जैसे -प्रत्येक, हर एक, हर महीने, हर वर्ष, एक-एक, चार-चार आदि।

सार्वनामिक या संकेतवाचक विशेषण-

कुछ सर्वनाम विशेषणों की तरह कार्य करते हैं और स्वतंत्र प्रयुक्त न होकर संज्ञाओं के साथ उनकी विशेषता के बोधक हो जाते हैं। इनको ही सार्वनामिक या संकेतवाचक विशेषण कहते हैं, जैसे-वह, यह, मेरा, तुम्हारा, उनका आदि सर्वनाम हैं, किन्तु ये निम्नलिखित वाक्यों में विशेषणों के रूप में प्रयुक्त हुए हैं-

o जो व्यक्ति सच नहीं बोलता, उसका विश्वास कोई नहीं करता।

- आंधी से ये थोड़े-से पेड़ उखड़ गए थे।
- मेरा घर उस सड़क पर है।
- वह लड़का बहुत शरारती है।

प्रतिशेषण – विशेषण स्वयं संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता का बोधक होता है, लेकिन भाषा में ऐसे शब्द भी होते हैं जो विशेषण की विशेषता को सूचीत करते हैं, उन्हें प्रतिशेषण कहते हैं, जैसे-

कुछ लोग **बहुत** तेज चलते हैं। **थोड़ा** धीरे-धीरे चलो। इतनी ही नहीं दवाई **अधिक** कम देनी चाहिए। उस लड़की का रंग **काफी** काला है।

उपर्युक्त चार वाक्यों में बहुत, थोड़ा, अधिक और काफी – ये चार प्रविशेषण हैं जो क्रमशः तेज, धीरे-धीरे, कम और काला विशेषणों की विशेषताएं प्रकट करते हैं।

तारतम्यवाचक विशेषण अथवा तुलना –

lalkj esa ,d oLrq nwljh oLrq ls vkSj ,d O;fDr nwljs O;fDr ls dgha u dgha vo'; fHkUu ¼vPNk ;k cqjk) gksrk gSA ;fn ,d vPNk gS rks nwljk mlls vPNk] rhljk mlls Hkh vPNk] pkSFkk rhljs ls vPNk vkSj vkxs mŸkjksŸkj vPNs ls vPNk gks ldrk gSA ,sls gh cqjk Hkh mŸkjksŸkj cqjs ls cqjk gks ldrk gS] ysfdu bu xq.kokpd ,oa ifj.kkeokpd fo'ks"krkvksa dks rj&re ;k rqyuk dh n`f"V ls rhu voLFkkvksa esa ckaVk tkrk gS & tSls &,d lkekU; ;k ewykoLFkk] nwljh mlls vf/kd ¼;k de½ vkSj rhljh lcls vf/kd ¼;k de½ buds uke gSa&

- **मूलावस्था**
- **उत्तरावस्था (मध्यमावस्था)**
- **उत्तमावस्था।**

मूलावस्था – तुलना से रहित विशेषण का सामान्य रूप जिसमें विशेष्य की सामान्य विशेषता प्रकट होती है – जैसे बुद्धिमान व्यक्ति, मूर्ख लड़की, परिश्रमी बालक, योग्य शिष्य आदि।

उत्तरावस्था – विशेषण का वह रूप जिसमें दो व्यक्तियों की परस्पर न्यूनता या अधिकता की तुलना की गई हो जैसे– चाणक्य से अधिक बुद्धिमान, उससे अधिक मूर्ख, मुझसे अधिक परिश्रमी, तुमसे कम योग्य आदि।

उत्तरावस्था – विशेषण का वह रूप जिसमें दो से अधिक वस्तुओं या व्यक्तियों की तुलना द्वारा एक को सबसे अधिक या सबसे कम बताया जाए– जैसे–मोहन कक्षा में सबसे अधिक होनहार है। हिमालय विश्व का सबसे ऊंचा पर्वत है । अमीबा सबसे छोटा जीव है। सर्वश्रेष्ठ, सर्वोत्तम, लघुत्तम और निकृष्टतम आदि भी इसी के उदाहरण हैं। तत्सम् शब्दों में उत्तमावस्था या उत्तमावस्था बताने के लिए मूलावस्था के साथ क्रमशः 'तर' और 'तम' लगा देते हैं, जैसे –

मूलावस्था	**उत्तरावस्था**	**उत्तमावस्था**
दृढ	दृढतर	दृढतम
उच्च	उच्चतर	उच्चतम
मृदु	मृदुतर	मृदुतम
लघु	लघुतर	लघुतम
महत् (महान्द्ध	महतर	महतम
गुरु	गुरुतर	गुरुतम
न्यून	न्यूनतर	न्यूनतम
अधिक	अधिकतर	अधिकतम
कुटिल	कुटिलतर	कुटिलतम
निकृष्ट	निकृष्टतर	निकृष्टतम
उत्कृष्ट	उत्कृष्टतर	उत्कृष्टतम
श्रेष्ठ	श्रेष्ठतर	श्रेष्ठतम या सर्वश्रेष्ठ
बृहत्	बृहतर	बृहतम

4.2.4 काल :

क्रिया के जिस रूप से उसके होने के समय का बोध होता है, उसे 'काल' कहते हैं। काल के तीन मुख्य भेद हैं –

भूतकाल जो बीत चुका है। सतीश खेला

वर्तमान काल जो चल रहा है। सतीश खेल रहा है। या सतीश खेलता है।

भविष्यत् काल जो अभी आएगा। सतीश खेलेगा।

dky ds ;s rhu eq[; Hksn gSaA fdz;k dh iw.kZrk&viw.kZrk vFkok ^vFkZ* dks dky ds lkFk tksM+dj mlds fofHkUu Hksn fd, tkrs gSa] ijarq muesa dky dh vis{kk vU; rÙo iz/kku gks tkrs gSaA

lkFk gh dky&cks/k fdz;k dk vfuok;Z rÙo ughaaA dky ds izlax eas oDrk dk ys[kd ;k erO; cgqr egÙoiw.kZ gSA vusd ckj fdz;k dh jpuk ftl dky ds vuqlkj gksrh gS] ys[kd dk earO; mlls fHkUu gksrk gSA ,slh voLFkk esa dky&fu.kZ; jpuk ds uqlkj u gksdj ys[kk ;k oDrk ds earO; ds vuqlkj gksrk gS A tSls &

तुम चलो, मैं आया।

इस वाक्य में, 'आया' क्रियापद रचना की दृष्टि से भूतकालिक होता हुआ भी भूतकाल का बोध नहीं कराता। यहां उसका प्रयोग भविष्यत् काल के लिए हुआ है। ''है, हैं'' वर्तमान काल के, ''था, थे, थी'' भूतकाल के ओर ''गा, गे, गी'' भविष्यत् काल के परिचायक हैं तो ''रहा रहे, रही'' सात्यत या अपूर्णता के।

काल के कारण दोनों लिंगों, दोनों वचनों और तीन पुरुषों में क्रिया का रूपांतर होता है । जैसे –

- लड़का खेलता है (एकवचन, पुल्लिंग, अन्य पुरुष)
- लड़की खेलती है (एकवचन, स्त्रीलिंग, अन्य पुरुष)
- लड़के खेलते हैं (बहुवचन, पुल्लिंग, अन्य पुरुष)

- लड़कियां खेलती है (बहुवचन, स्त्रीलिंग, अन्य पुरुष)
- तू खेलता है (एकवचन, पुल्लिंग, मध्यम पुरुष)
- मैं खेलता हूं (एकवचन, पुल्लिंग, उत्तम पुरुष)
- rqe@vki [ksyrs gks ¼cgqopu] iqfYyax] e/;e iq#"k½
- हम खेलते हैं (बहुवचन, पुल्लिंग, उत्तम पुरुष)

इसी प्रकार सभी कालों में परिवर्तन देखे जा सकते हैं।

रुप–रचना :

धातुओं की रूप–रचना पर विशेष ध्यान देना चाहिए । इसमें प्रायः अशुद्धियां हो जाती हैं। तीनों कालों में ''जाना'' धातु की रूप–रचना इस प्रकार है –

भूतकाल :

पुल्लिंग : पुरुष एकवचन बहुवचन

अन्य पुरुष वह गया वे गए

मध्यम पुरुष तू गया तुम गए

उत्तम पुरुष मैं गया हम गए

स्त्रीलिंग :

अन्य पुरुष वह गई वे गईं

मध्यम पुरुष तू गई तुम गईं

उत्तम पुरुष मैं गई हम गईं

वर्तमान काल :

पुल्लिंग : पुरुष एकवचन बहुवचन

अन्य पुरुष वह जाता है वे जाते हैं।

मध्यम पुरुष तू जाता है तुम जाते हो

उत्तम पुरुष मैं जाता हूं हम जाते हैं।

स्त्रीलिंग :

अन्य पुरुष वह जाती है वे जाती हैं

मध्यम पुरुष तू जाती है तुम जाती हो

उत्तम पुरुष मैं जाती हूं हम जाती हैं

भविष्यकाल :

पुल्लिंग : पुरुष एकवचन बहुवचन

अन्य पुरुष वह जाएगा वे जाएंगे

मध्यम पुरुष तू जाएगा तुम जाओगे

उत्तम पुरुष मैं जाऊंगा हम जाएंगे

स्त्रीलिंग :

अन्य पुरुष वह जाएगी वह जाएंगी

मध्यम पुरुष तू जाएगी तुम जाओगी

उत्तम पुरुष मैं जाऊंगी हम जाएंगी

अर्थ –

क्रिया के जिस रूप से विधान (कार्य) करने की रीति प्रकट होती है उसे 'अर्थ' कहते हैं। इससे कर्त्ता या वक्ता के मन में स्थित संदेह, संभावना, निश्चय अथवा उसके द्वारा किए जाने वाले अनुरोध या आदेश आदि का पता चलता है। कुछ वैयाकरण इसे विधि अथवा प्रकार भी कहते हैं। क्रिया के अर्थ पांच प्रकार के होते हैं –

- संभावनार्थ
- आज्ञा–विध्यर्थ
- संदेहार्थ
- संकेतार्थ
- निश्चयार्थ

संभावनार्थ – क्रिया के जिस रूप से संभावना, अनुमान आदि का बोध होता है उसे संभावनार्थ कहते हैं यथा :– शायद मैं पास हो जाऊं (अनुमान)

संभव है आज वर्षा हो (संभावना)

आज्ञा–विध्यर्थ – क्रिया के जिस रूप से आज्ञा, आदेश, अनुरोध, इच्छा, कर्त्तव्य आदि का बोध होता है उसे आज्ञा–विध्यर्थ कहते हैं। जैसे –

सदा सच बोलो (उपदेश)

एक गिलास पानी लाओ। (आदेश)

कृपया कल आइए। (अनुरोध)

हमारे बच्चे प्रसन्न रहें। (इच्छा)

संदेहार्थ – क्रिया के जिस रूप से संदेह या अनिश्चय का भाव प्रकट हो उसे संदेहार्थ कहते हैं । जैसे–

नौकर दूध लाता होगा। पिता जी बंबई पहुंच गए होंगे। बच्चे खेल रहे होंगे।

संकेतार्थ – एक क्रिया की किसी दूसरी क्रिया पर निर्भरता अथवा दो घटनाओं में कार्य–कारण भाव सूचीत करने वाले अर्थ को संकेतार्थ कहते हैं। कुछ विद्वान इसे 'हेतु–हेतुमद' भी कहते हैं।

मैं जाता तो उन्हें लाता। वर्षा हुई तब जान में जान आई। मेहनत करोगे तो सफल हो जाओगे।

निश्चयार्थ – क्रिया के जिस रूप से किसी कार्य के होने का पता चले, उसे निश्चयार्थ कहते हैं। निश्चयार्थ के अंतर्गत प्रश्नवाचक और निषेधवाचक क्रियाएं भी आती हैं। जो क्रिया ऊपर बताए गए चार अर्थों में से किसी के अंतर्गत भी नहीं आती, उसे सुभीते के लिए निश्चयार्थ मान लेते हैं। क्योंकि इससे साधारणतया सामान्य व्यापार का बोध होता है, इसलिए कुछ वैयाकरण इसे साधारणार्थ भी कहते हैं । जैसे– हम पढ़ने बैठे हैं। क्या आपने निबंध लिख लिया ? पुराने समय में लोग बैलगाड़ी से यात्रा करते थे।

काल और अर्थ के मेल से क्रिया के विभिन्न रूप बनते हैं। जैसे –

संभाव्य भविष्यत् – शायद आज वर्षा हो।

संदिग्ध वर्तमान – बालक सोता होगा।

संदिग्ध भूत – बालक सोया होगा।

हेतु–हेतुमद्भूत – वर्षा होती तो खेती होती।

4.2.5 वाच्य :

'वाच्य' का शब्दार्थ है बोलने योग्य या बोलने का विषय । व्याकरण में क्रिया के विधान को वाच्य कहते हैं। वाच्य में क्रिया के विधान का विषय कर्त्ता, कर्म और भाव में से कोई भी हो सकता है । अतः क्रिया के जिस रूपांतर से यह ज्ञात हो कि वाक्य में क्रिया–व्यापार का प्रधान विषय कर्त्ता, कर्म या क्रिया का भाव है, उसे वाच्य कहते हैं। प्रायः वाक्य में जिसकी प्रधानता होती है पुरुष, लिंग और वचन में क्रिया उसी का अनुसरण करती है। वाच्य के तीन भेद हैं –

- कर्तृवाच्य
- कर्मवाच्य

o भाववाच्य

कर्तृवाच्य – क्रिया के जिस रूप में कर्त्ता प्रधान हो अर्थात् क्रिया का वाच्य–प्रधान उद्देश्य कर्त्ता हो उसे कर्तृवाच्य कहते हैं । जैसे –

अशोक पुस्तक पढ़ता है । बच्चे खेल रहे हैं। कन्याएं ढोलक बजाएंगी।

इन वाक्यों में कर्त्ता प्रधान है। अतः ये कर्तृवाच्य के उदाहरण हैं।

कर्मवाच्य – क्रिया के जिस रूप में कर्म की प्रधानता हो, उसे कर्मवाच्य कहते हैं। जैसे –

बालक से दूध पिया गया। अब नानी से कहानियां नहीं सुनी जातीं। रोगी को भोजन दिया गया। पुस्तकें लिखी जाएंगी।

भाववाच्य – क्रिया के जिस रूप में न कर्त्ता की प्रधानता हो और न कर्म की, प्रत्युत् जहां क्रिया का भाव मुख्य हो, उसे भाववाच्य कहते हैं। भाववाच्य की क्रिया सदा अन्य पुरुष पुल्लिंग, एकवचन में रहती है।

मुझसे बोला नहीं जाता। अब चला जाए। राधा से रात भर कैसे जागा जाएगा ?

इन वाक्यों में आई सभी क्रियाएं भाववाच्य का उदाहरण हैं।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि कर्तृवाच्य में सकर्मक और अकर्मक दोनों ही प्रकार की क्रियाओं का प्रयोग होता है परंतु भाववाच्य केवल अकर्मक क्रियाएं और कर्मवाच्य में केवल सकर्मक क्रियाएं ही प्रयुक्त हो सकती हैं।

कर्तृवाव्य से कर्मवाच्य बनाने की विधि –

नीचे लिखे चार वाक्यों को देखिए –

बालक पत्र लिखता है। मां ने पुत्र को सुला दिया। रजिया ने कपड़े धोए। तुम फूल तोड़ोगे।

इन वाक्यों को कर्मवाच्य में बदलने के लिए –

- कर्तृवाच्य के कर्त्ता के साथ (यदि कोई विभक्ति लगी हो तो हटाकर) 'से', द्वारा या 'के द्वारा' विभक्ति लगा दी जाती है। वाक्यों में ये परिवर्तन इस प्रकार होगा –

बालक – बालक से

मां – मां के द्वारा

रजिया ने – रजिया से

तुम – तुम से

o यदि कर्म के साथ विभक्ति लगी हो तो उसे हटा दिया जाता है । जैसे –पत्र को – पुत्र ऊपर के उदाहरणों मे 'पत्र', 'कपड़े' 'फूल' शब्दों में कोई विभक्ति नहीं लगी, अतः ये यथावत् रहेंगे।

o कर्तृवाच्य की मुख्य क्रिया को सामान्य भूतकाल की क्रिया में बदल दिया जाता है और जाना क्रिया के रूप कर्तृवाच्य की मुख्य क्रिया के काल तथा कर्म के लिंग, वचन आदि के अनुसार बनाकर उसे साथ जोड़ कर साधारण क्रिया को भी संयुक्त क्रिया के रूप में बदल दिया जाता है। यथा –

लिखता – लिखा जाता है

सुला दिया – सुला दिया गया

धोए – धोए गए

तोड़ोगे – तोड़े जाएंगे

इस प्रकार इन नियमों के आधार पर ऊपर लिखे चारों वाक्यों का कर्मवाच्य में यह रूप होगा –

बालक से पत्र लिखा जाता है। मां के द्वारा पुत्र सुला दिया गया। रजिया के कपड़े धोए गए। तुमसे फूल तोड़े जाएंगे।

कर्तृवाच्य से भाववाच्य बनाने की विधि –

नीचे लिखे तीन वाक्यों को लीजिए –

बच्चे खेलेंगे। लड़की आंगन में सो रही थी। पक्षी आकाश में उड़ते हैं।

इन वाक्यों को भाववाच्य में बदलने के लिए –

o कर्त्ता के आगे 'से' अथवा 'के द्वारा' लगा दें।

बच्चे –बच्चों से। लड़की–लड़की के द्वारा। पक्षी–पक्षियों द्वारा।

o मुख्य क्रिया को सामान्य भूतकाल की क्रिया के एकवचन में बदलकर उसके साथ जाना धातु के एकवचन, पुल्लिंग, अन्य पुरुष का वही काल लगा दें जो कर्तृवाच्य की क्रिया है

। जैसे – खेलेंगे – खेला जाएगा। सो रही थी – सोया जा रहा था। उड़ते हैं। – उड़ा जाता है।

इन नियमों के ऊपर के तीनों वाक्यों को भाववाच्य में बदले हुए रूप इस प्रकार होंगे –

1. बच्चों से खेला जाएगा।
2. लड़की के द्वारा आंगन में सोया जा रहा था।
3. पक्षियों द्वारा आकाश में उड़ा जाता है।

हिन्दी में अधिकतर कर्तृवाच्य का ही प्रयोग होता है । कर्मवाच्य या भाववाच्य का प्रयोग कुछ विशेष परिस्थितियों में ही किया जाता है। उनमें से कुछ का उल्लेख यहां किया जा रहा है।

कर्मवाच्य के प्रयोग-स्थल –

- गर्व, दर्प या अधिकार जताने के लिए –

  यह खाना हमसे नहीं खाया जाता।

  अभियुक्त को न्यायालय में पेश किया जाए।
- जब कर्त्ता अज्ञात हो या उसे प्रकट करना अभीष्ट न हो –

  चिट्‌ठी भेजी गई।

  रूपये खर्च किए जा रहे हैं।

  आजकल गरीब की बात सुनी नहीं जाती।
- जब कर्त्ता कोई सभा-समाज या सरकार हो-

  बाढ़-पीड़ितों की सहायता के लिए सरकार द्वारा करोड़ो रूपए खर्च किए गए।

  सभा द्वारा जनहित में अनेक कार्य किए जा रहे हैं।
- कानूनी या कार्यालयी भाषा में-

  बिना अनुमति के प्रवेश करने वालों को गिरफ्तार कर लिया जाएगा।

  प्रार्थी की याचिका पर न्यायालय में विचार किया गया।

  इस प्रपत्र द्वारा आपको सूचित किया जाता है कि...
- अशक्तता, बताने के लिए-

  अब अधिक भोजन नहीं खाया जाएगा।

अब तो पत्र भी नहीं लिखा जाता।

भाववाच्य के प्रयोग-स्थल -

प्रायः निषेधार्थ में और असमर्थता या विवशता का भाव प्रकट करने के लिए भाववाच्य का प्रयोग किया जाता है -

अब तो हमसे चला भी नहीं जा रहा।

रात भर कैसे जागा जाएगा।

यहां तो खड़ा भी नहीं हुआ जाता।

अनुमति प्राप्त करने के लिए-

अब चला जाए।

उठो, जरा घूमा जाए।

इन परिस्थितियों के अतिरिक्त किया गया कर्मवाच्य और भाववाच्य का प्रयोग अस्वाभाविक प्रतीत होता है । पीछे दिए गए 'रजिया के कपड़े धोए गए' अथवा 'लड़की द्वारा आंगन में सोया जा रहा है' - जैसे प्रयोग हिन्दी में प्रायः नहीं मिलते।

प्रयोग - वाच्य की भांति क्रिया का प्रयोग भी तीन प्रकार का होता है - कर्तरि प्रयोग, कर्मणि प्रयोग और भावे प्रयोग।

कर्तरि प्रयोग- जिमसें क्रिया के पुरुष, लिंग और वचन कर्त्ता के अनुसार होते हैं, क्रिया के उस प्रयोग का कर्तरि प्रयोग कहते हैं। इसमें कर्त्ता का विभक्ति रहित प्रयोग होता है । जैसे -

लड़कियां पढ़ेंगी।

लड़के फल चुनते हैं।

कर्मणि प्रयोग - जिसमें क्रिया के लिंग और वचन कर्म के अनुसार हों, उसे कर्मणि प्रयोग कहते है। कर्मणि प्रयोग में दो प्रकार की वाक्य-रचनाएं मिलती है। कर्तृवाच्य की भूतकालिक क्रियाओं के कर्त्ता के साथ 'ने' विभक्ति लगी होती है, जैसे -

राम ने पत्र लिखा।

मोहन ने चिट्ठी लिखी।

दूसरे, कर्मवाच्य में यहां कर्त्ता के साथ 'से' या 'के द्वारा' परसर्ग लगते हैं और कर्म के साथ 'को' परसर्ग नहीं लगता –

मुझसे पत्र लिखा जाएगा।

हमसे लड़के गिने गए।

बच्चे से पुस्तक देखी गई।

हमसे पुस्तकें गिनी जाती है।

भावे प्रयोग – इसमें क्रिया के पुरुष, लिंग और वचन कर्त्ता या कर्म के अनुसार न होकर अन्य पुरुष पुल्लिंग एकवचन में ही रहते हैं। तीनों वाच्यों की क्रियाएं भावे प्रयोग में देखी जाती हैं –

1. मुझसे हंसा गया।
2. तुम सबसे हंसा गया।
3. उन सबसे हंसा गया।
4. राम ने भाई को पढ़ाया।
5. हमने बहन को पढ़ाया।
6. राम ने सबको पढ़ाया।

buesa izFke rhu mnkgj.k HkkookP; ds gSa] nwljs rhu drZ`okP; ds vkSj vafre rhu deZokP; dsA bl izdkj ;g Li"V gks tkrk gS fd dr`ZokP; esa fdz;k ds drZ`fj] deZf.k vkSj Hkkos rhuksa iz;ksx gksrs gSaA deZokP; esa fdz;k] deZf.k vkSj Hkkos iz;ksx esa gh vkrh gS tcfd HkkookP; esa fdz;k dk dsoy Hkkos iz;ksx gh gksrk gSA

4.3 **सारांश :**

- रचना की दृष्टि से संज्ञा (सम्+ज्ञा) शब्द का अर्थ होता है सम्यक् (ठीक) ज्ञान (पहचान) कराने वाला। व्याकरण में भी यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है। नाम को ही संज्ञा कहते हैं ।

- संज्ञा के तीन भेद हैं – व्यक्तिवाचक संज्ञा, जातिवाचक संज्ञा, और भाववाचक संज्ञा
- जिस शब्द से किसी कार्य के होने या करने का बोध हो अथवा जिस शब्द से किसी वस्तु, व्यक्ति या घटना होने (अस्तित्त्व) का बोध हो, उसे क्रिया कहते हैं।
- क्रिया के मूल रूप को धातु कहते हैं, जैसे –उठ, बैठ, चल, लिख, सो, खा, पी आदि धातुएं हैं जिनमें 'ना' प्रत्यय लगाने से क्रमशः उठना, बैठना, चलना, सोना, लिखना, खाना, पीना आदि क्रिया के सामान्य रूप बनते हैं।
- fo'ks"krk crkus okys 'kCnksa dks gh O;kdj.k esa fo'ks"k.k dgrs gSaA fo'ks"k.k dh ifjHkk"kk gS & laKk ;k loZuke dh fo'ks"krk] :i] jax] xq.k&nks"k] la[;k vFkok ifj.kke dks crkus okys 'kCnksa dks fo'ks"k.k dgrs gSaA ftldh fo'ks"krk crkbZ tk, ¼laKk ;k loZuke½ mls fo'ks"; dgrs gSaA

4.4 सूचक शब्द :

संज्ञा : रचना की दृष्टि से संज्ञा (सम्+ज्ञा) शब्द का अर्थ होता है सम्यक् (ठीक) ज्ञान (पहचान) कराने वाला। व्याकरण में भी यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है। इस संसार में जितनी भी वस्तुएं, स्थान, प्राणी आदि हैं उनका कोई न कोई नाम तो होगा ही। इन्हीं नामों को संज्ञा कहेंगे। इस प्रकार–किसी वस्तु, प्राणी, स्थान, गुण, भाव आदि के नाम को संज्ञा कहते हैं।

क्रिया : जिस शब्द से किसी कार्य के होने या करने का बोध हो अथवा जिस शब्द से किसी वस्तु, व्यक्ति या घटना होने (अस्तित्त्व) का बोध हो, उसे क्रिया कहते हैं।

fo'ks"k.k % fo'ks"krk crkus okys 'kCnksa dks gh O;kdj.k esa fo'ks"k.k dgrs gSaA fo'ks"k.k dh ifjHkk"kk gS & laKk ;k loZuke dh fo'ks"krk] :i] jax] xq.k&nks"k] la[;k vFkok ifj.kke dks crkus okys 'kCnksa dks fo'ks"k.k dgrs gSaA

काल : क्रिया के जिस रूप से उसके होने के समय का बोध होता है, उसे 'काल' कहते हैं। काल के तीन मुख्य भेद हैं – भूतकाल, वर्तमान काल, व भविष्यत् काल ।

वाच्य : 'वाच्य' का शब्दार्थ है बोलने योग्य या बोलने का विषय । व्याकरण में क्रिया के विधान को वाच्य कहते हैं। वाच्य में क्रिया के विधान का विषय कर्त्ता, कर्म और भाव में से कोई भी हो सकता है । अतः क्रिया के जिस रूपांतर से यह ज्ञात हो कि वाक्य में क्रिया–व्यापार का प्रधान विषय कर्त्ता, कर्म या क्रिया का भाव है, उसे वाच्य कहते हैं। प्रायः वाक्य में जिसकी प्रधानता होती है पुरुष, लिंग और वचन में क्रिया उसी का अनुसरण करती है। वाच्य के तीन भेद हैं – कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य, व भाववाच्य।

4.5 स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न :

1 वाक्य संरचना में संज्ञा की भूमिका का वर्णन करें।

2 क्रिया के प्रयोग बिना वाक्यों की संरचना असंभव है। क्या आप सहमत हैं? क्यों?

3 भाषा प्रयोग में विशषण का एक महत्वपूर्ण स्थान है। चर्चा करें।

4 वाक्य संरचना में काल व वाच्य के प्रयोगों पर टिप्पणी करें।

4.6 संदर्भित पुस्तकें :

- **हिन्दी व्याकरण**, लेखक – पं. कमला प्रसाद गुरू, 2003
- **हिन्दी का सही प्रयोग**, लेखक – नीलम मान, 2005
- **भाषा शास्त्र तथा हिन्दी भाषा की रूपरेखा**, लेखक – देवेंद्र कुमार शास्त्री, 2003

बीए मास कम्युनिकेशन, प्रथम वर्ष

हिन्दी- बीएमसी 102

खंड-सी **इकाई - 1** **अध्याय-5**

हिन्दी भाषा का विकास - प्राचीन, मध्यकालीन

लेखक : डा. मधुसूदन पाटिल, पूर्व वरिष्ठ व्याख्याता।

एस.आई.एम. शैली में परिवर्तन : डा. मनोज छाबड़ा, हिन्दी प्रवक्ता ।

अध्याय संरचनाः

इस अध्याय में हम हिन्दी भाषा का विकास का परिचय प्राप्त करेंगे। हिन्दी भाषा का प्राचीन व मध्यकालीन विकास पर विशेष जोर दिया जाएगा। इस अध्याय की संरचना इस प्रकार रहेगी :

5.0 उद्देश्य

5.1 परिचय

5.2 विषय वस्तु की प्रस्तुति

5.2.1 हिन्दी भाषा का विकास - एक परिचय

5.2.2 प्राचीन भारतीय आर्यभाषाएं

5.2.3 मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाएं

5.2.4 आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएं

5.2.5 राजभाषा, राष्ट्रभाषा, सम्पर्क भाषा

5.3 सारांश

5.4 सूचक शब्द

5.5 स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

5.6 संदर्भित पुस्तकें

5.0 उद्देश्यः

इस अध्ययाय के उद्देश्य इस प्रकार हैंः

- हिन्दी भाषा का विकास का परिचय पाना
- प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं के बारे में जानना
- मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं के बारे में जानना
- आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के बारे में जानना
- राजभाषा, राष्ट्रभाषा, सम्पर्क भाषा के बारे में जानना

5.1 परिचयः

laLd`r] ikyh] izkd`r o viHkza’k vkfn izkphu o e/;dkyhu Hkkjrh; vk;ZHkk”kkvksa ds ckn vk/kqfud Hkkjrh; vk;ZHkk”kkvksa dk vkjaHk gqvkA 2000 bZlk iwoZ ls yxHkx 1500 o”kZ rd oSfnd laLd`r o ykSfdd laLd`r dk ,dkf/kdkj jgkA blds mijkUr vxys 1500 o”kksZa rd ;kuh 1000 bZ- rd ikyh] ikzd`r o viHkza’k Hkk”kkvksa dk izpyu jgkA blds ckn yxHkx vk/kk ntZu Hkk”kkvksa dh ,d lkFk ‘kq:vkr gqbZA buesa ‘kkfey Fkha & vleh] mfM+;k] caXyk] ejkBh] xqtjkrh rFkk fgUnhA

इस अध्याय में हम हिन्दी भाषा का विकास पर विस्तार से चर्चा करेंगे। इसमें प्रमुख रूप से प्राचीन भारतीय आर्यभाषाएं तथा मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं की भी चर्चा की जाएगी। इसके उपरान्त आधुनिक समय में हिन्दी का विकास तथा हिन्दी के विवध रूप का अध्ययन करेंगे।

5.2 विषय वस्तु की प्रस्तुति :

इस अध्याय में स्वर–व्यंजन, शब्द व पद विषयों की अवधारणा पर विशेष जोर दिया जाएगा। विषयों की प्रस्तुति इस प्रकार रहेगीः

- हिन्दी भाषा का विकास – एक परिचय

- प्राचीन भारतीय आर्यभाषाएं
- मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाएं
- आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएं
- राजभाषा, राष्ट्रभाषा, सम्पर्क भाषा

5.2.1 हिन्दी भाषा का विकास - एक परिचय :

भारत में आर्यों के आगमन काल के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। सामान्यतः यह माना जाता है कि सन् 2000 से 1500 ई.पू. भारत के उत्तर पश्चिमी सीमांत प्रदेशों में आर्यों के साथ सुविकसित भाषा भारत में आई। स्थानीय जातियों की भाषा का भी उन पर प्रभाव पड़ा। भारत में आर्यों के प्रसार में कई शताब्दियां लगीं और इस कालक्रम में भाषा में अनेक परिवर्तन हुए। विकास क्रम के अनुसार भारतीय आर्यभाषा को तीन कालों में बांटा जाता है -

प्राचीन भारतीय आर्यभाषाएं : वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत - 2000 ई.पू. से 500 ई.पू.

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाएं : पालि, प्राकृत और अपभ्रंश - 500 ई.पू. से 1000 ई. तक

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएं : हिन्दी और असमी, उड़िया, बंगला, मराठी, गुजराती आदि 1000 ई. से आगे।

5.2.2 प्राचीन भारतीय आर्यभाषाएं :

अ. वैदिक संस्कृत (2000 ई.पू. से 1000 ई.पू. तक) :

वैदिक संस्कृत का प्राचीनतम रूप ऋग्वेद में मिलता है। यह मुख्य रूप से सांस्कृतिक और साहित्यिक कार्यों के लिए प्रयुक्त होती थी। ऋग्वेद का संकलन सम्पादन सप्तसिंधु प्रदेश में हुआ। ब्राह्मण ग्रंथों, आरण्यकों और उपनिष्दों की भाषा पूरे तोर पर तत्कालीन मध्यप्रदेश की आर्यभाषा है। मूल वैदिक की रक्षा के लिए 6 वेदांगों की रचना हुई। शिक्षा (उच्चारण) कल्प (यज्ञ सूत्र) व्याकरण (भाषा रूप और प्रयोग) नियुक्ति (व्युत्पति और अर्थ) ज्योतिष (कर्मकाण्ड के समय निर्धारण के लिए) छन्द (साहित्यशास्त्र) आदि ग्रंथ बने। शुद्ध आर्यों और व्रात्यों की भाषा में अन्तर आने लगा। उन्हें वैदिक व्याकरण अत्यंत जटिल जान पड़ता था । वैदिक संस्कृति को छान्द्स कहा गया है।

वैदिक संस्कृत की विशेषताएं : वैदिक भाषा की पदरचना श्लिष्ट योगात्मक थी। पद रचना में विविधता और अनेकरूपता थी। वैदिक में संगीतात्मक स्वाराघात था। अनुदात्त, उदात्त और स्वतिरत पाण्डुलिपियां स्वराघात चिह्नित मिलती हैं। स्वराघात से अर्थ परिवर्तन होता था। उपसर्ग धातु से पृथक भी प्रयुक्त होते थे। (अभि... गृहणी) वैदिक संस्कृत में तीन लिंग और तीन वचन और आठ कारक थे। ह्रस्व और दीर्घ के साथ लुप्त मात्रा का भी प्रयोग था । दो स्वरों के मध्य ड–ळा और ढ–ळाह हो जाता था। वैदिक में 14 स्वर थे। संधि नियमों में पर्याप्त शिथिलता थी। मध्यस्वरागम के भी उदाहरण मिलते हैं–पृथ्वी–पृथिवी, स्वर्ण–सुवर्ण। सर्वनामों की रूपरचना अधिक जटिल थी। आख्यात का आधार धातुएं थी जो दस गणों में विभक्त थी। प्रत्येक गण का रूपान्तर परस्मैपद में या आत्मनेपद में या उभयपद में होता था। क्रिया के बारह काल और भाव थे।

आ. लौकिक संस्कृत (1000 ई.पू. से 500 ई.पू.तक) :

if'peh vk;ZHkk"kk ij iwohZ Hkk"kkvksa ds izHkko ds QyLo:i ykSfdd laLd`r dk mn~xe gqvkA oSfnd laLd`fr ds le; gh yksdHkk"kk,a izpfyr jgha ftUgsa ikf.kfu us izkpke ¼iwohZ½ vkSj mnhpke~ ¼mŸkjh½ dgdj Li"V fd;k FkkA ml le; e/;izns'k esa tks vk;ZHkk"kk,a cksyh tk jgh Fkh muds lkekU; :i dk uke laLd`r iM+kA ;g uke ikf.kuh ¼lkroha lnh½ us fn;kA

ikf.kuh ls igys Hkh dqN fo}kuksa us ykSfdd vk;ZHkk"kk dh vusd:irk esa ,d:irk] fo"kerk esa lekurk vkSj ifjorZu esa fLFkjrk ykus dk iz;kl fd;k ijarq okLrfod oSKkfud dk;Z ikf.kuh us fd;kA buds fu;eksa dk ikyu vkt rd Hkh gksrk gSA bl Hkk"kk dk laLdkj fd;s tkus ds dkj.k bls laLd`r dgk x;kA vkpk;ksZa us ykSfdd laLd`r dk dky ikapoh 'krh bZLoh rd ekuk gS] ijUrq bldh ijEijk rc Hkh lekIr

ughaa gqbZA laLd`r dh okLrfod mUufr ekS;Z dky ds var ls vkjEHk djds ukSaoh&nloha lnh rd yxkrkj gksrh jghA rc ;gh Hkk"kk f'k{kk vkSj 'kklu dk ek/;e cuh jghA

ftruk 'kk'or vkSj mi;ksxh /kkfeZd] nk'kZfud] oSKkfud] ykSfdd vkSj yfyr lkfgR; bl Hkk"kk eas fy[kk x;k mruk lalkj dh fdlh Hkk"kk esa ughaa gSA lalkj dk lcls izkphu vkfndkO; okYehfd jkek;.k 500 bZ-iw- dk gSA egkHkkjr] iqjk.k] dkO;] ukVd vkfn xzaFk 500 bZ-iw- ls vkt rd fofPNUu :i ls viuk xkSjo LFkkfir fd, gq, gSA ;kLd] dkR;k;u] iratfy vkfn ds ys[kksa ls fl) gS fd bZlk iwoZ rd laLd`r yksdO;ogkj dh Hkk"kk FkhA laLd`r lkfgR; vk;Z tkfr vkSj Hkk"kk dk izk.k gSA ;g lkjs ns'k dh leUo; 'kfDr cudj mŸkj] nf{k.k] iwoZ] if'pe loZ= Nk xbZA laLd`r us u dsoy Hkkjrh; vfirq ;wjksih; Hkk"kkvksa dks Hkh izHkkfor fd;kA vkt dh lHkh Hkkjrh; Hkk"kkvksa dh Kku&foKku ds {ks= dh 'kCn lEink blh lzksr ls lEiUu gksrh gSA

लौकिक संस्कृत की विशेषताएं – वैदिक संस्कृत का ही विकसित उत्तरी बोलचाल का रूप लौकिक संस्कृत है। वैदिक संस्कृत में जो विविधता, अनेकरूपता व जटिलता थी वह संस्कृत में न्यूनतर होती गई। वैदिक संस्कृत की 52 ध्वनियां यहां 48 रह गईं। पाणिनी के व्यवहार का प्रभाव बढ़ गया। संहिता की भाषा का रूप निरंतर सरल होता गया। संस्कृत में वैदिक के अनेक शब्द रूपों और धातु रूपों का लोप होता गया। वैदिक में संगीतात्मक स्वराघात था। लौकिक में बलात्मक स्वराघात विकसित हुआ।

संस्कृत में कृत्रिमता के विकास के कारण 10–15 पंक्तियों के संधि–समास युक्त पद बनने लगे। स्वर केवल 12 रह गए। दीर्घ ॠ और लृ लुप्त हो गए। वैदिक की ळ और ळह लुप्त

हो गई। वैदिक संस्कृत की नासिक्य ध्वनि संस्कृत में अनुस्वार में विभक्त हो गई। संधि नियमों की अनिवार्यता हो गई। शब्दकोष में भी अन्तर हो गया।

असुर वै0 मै शक्तिशाली सं. में दैत्य हो गया। (क्षिति वैदिक में गृह संस्कृत में पृथ्वी) उपसर्गों का स्वतंत्र प्रयोग समाप्त हो गया। स्वरभक्ति का प्रयोग समाप्त हुआ। पदों का क्रम परिवर्तनीय हुआ।

पाणिनीय व्याकरण के नियमों में बंधने पर संस्कृत का विकास रुक गया। बोलचाल की जनभाषा का ऐतिहासिक व भौगोलिक विकास निरंतर होता जा रहा था। समस्त उत्तर क्षेत्र में आर्यों के प्रसार के साथ-साथ प्राचीन भारतीय आर्यभाषा के रूप में परिवर्तन होता जा रहा था। भाषा में कालगत और स्थानगत भिन्नताएं बढ़ती जा रही थीं। इस प्रकार ईसा पूर्व छठी सदी तक प्राचीन भारतीय आर्यभाषा विकास के मध्यकाल तक पहुंच गई।

5.2.3 मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएं :

मध्यकालीन आर्य भाषा की तीन स्थितियां है –

1. **प्रथम प्राकृत या पालि** (500 ई.पू. से सन् 1 ई.तक)।
2. **द्वितीय प्राकृत मध्यकालीन प्राकृत** (ईस्वी सन 1 से 500 ई.तक)
3. **तृतीय प्राकृत या अपभ्रंश** (500 ई. से 1000 ई.तक)

1. पालि का स्वरूप और विकास :

ईसा पूर्व तक संस्कृत जनभाषा और लोक व्यवहार की भाषा थी। इसके दो रूप थे – साहित्यिक और जनभाषा। साहित्यिक भाषा में परिवर्तन बहुत कम होते थे। जनभाषा वाली संस्कृत में ध्वनिभेद, शब्दभेद आदि प्रचुर मात्रा में होते रहे। प्राकृत भाषा के प्राचीन वैयाकरणों ने इसी संस्कृत में मूल भाषा प्रकृति से उत्पन्न भाषा को 'प्राकृत' कहा। डा. राजमल वोरा के अनुसार पैशाची प्राकृत का दक्षिणी रूप पालि है। मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं का युग पालि के उदय से आरम्भ होता है।

'पालि' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों के मत निम्नलिखित हैं–

1. आचार्य बुद्धघोष और आचार्य धम्मपाल ने पालि शब्द का प्रयोग बुद्धचन या मूल त्रिपिटक के लिए किया। उसी से यह शब्द पालि भाषा के लिए आया।
2. आचार्य विधुशेखर भट्टाचार्य ने पंक्ति से पालि की व्युत्पति मानी।
3. भिक्षु जगदीश कश्यप ने परियाय (बुद्ध उपदेश) से पालि का विकास माना।
4. डॉ. मैक्स वेलेसन ने पाटिल से पालि की उत्पत्ति मानी।
5. कुछ विद्वान पल्लि से और कुछ पाइ से पालि की उत्पत्ति मानते हैं।
6. पालिभाषा कोश के अनुसार 'पा' धातु से पालि (रक्षक) व्युत्पत्ति मानी।

ex/k lezkV v'kksd ds iq= egsUnz ?kkfy lkfgR; dks f=fiVd esa Hkjdj flagy ys x;s FksA vr% ogka ds ckSº bls ex/k dh Hkk"kk ekurs FksA ijarq fo}kuksa ds vuqlkj bls eFkqjk vkSj mTtSu {ks=

ds chp dh Hkk"kk ekuk x;kA ;g Hkk"kk bruh O;kid gks xbZ Fkh fd /keZizpkj ds fy, xkSre cq) ¼fuokZ.k 485 bZ-iw½ us bls viuk;kA bldh lkjh lkfgR; lEink Hkxoku cq) vkSj mudh f'k"; ijEijk }kjk iznŸk gSA jkgqy lkad`R;k;u us ^ikfy lkfgR; dk bfrgkl* eas fy[kk gS] ^izkjEHk esa ;g 'kCn ewy cq) opu ds fy, iz;qDr gksrk jgk vkSj ckn esa ;g ml Hkk"kk dk |ksrd gks x;k ftlesa cq) opu izkIr gksrs gSaA*

अपने समय में पालि का प्रचार न केवल उत्तर-दक्षिण भारत अपितु बर्मा, श्रीलंका, तिब्बत, चीन में भी था। सम्राट अशोक ने शासन और धर्म सम्बन्धी आदेश भारत के विभिन्न भागों में पहुंचाने के लिए शिलाओं स्तम्भों और भित्तियों पर खुदवाये। इन अभिलेखों पर कई प्रादेशिक बोलियों का मिश्रण है। अतः विशिष्ट बोली की वास्तविक प्रकृति नहीं जानी जा सकती । कुछ विशेषताएं निम्नलिखित हैं –

1. पालि में वैदिक संस्कृत की 5 स्वर ध्वनियां – ऋ, ॠ, लृ, ऐ, औ लुप्त हो गईं। ऋ की जगह नृत्य से नच्च, तृण- तिण हो गया।

2. संयुक्त व्यंजन से पहले का दीर्घ स्वर ह्रस्व हो गया – सुत्र-सुत्त।

3. पालि में श, ष विसर्ग लुप्त हो गये। शकुन –सकुण, विष-विस

4. पालि में व्यंजनात्मक शब्द है ही नहीं।

5. संयुक्त वर्ण से पूर्ववर्ती दीर्घ का ह्रस्व हो जाता है या संयुक्त व्यंजन में से एक का लोप हो जाता है।

जीर्ण-जिण्ण, दीर्घ-दीघ। पालि ने संयुक्त व्यंजन लगभग समाप्त कर दिये। उनकी जगह भले ही द्वित्व व्यंजन कर दिये – ज्येष्ठ-जेठ, ग्राम-गाम, स्थल-थल, सत्य-सच्च।

6. संधि- लोक भाषा में संधि की चिंता नहीं की गई। व्यंजन संधि के नियम शिथिल हैं। विसर्ग संधि नहीं है।

7. आत्मनेपद का प्रयोग प्रायः लुप्त हो गया, परस्मैपद शेष रहा।

8. इसमें संगीतात्मक और बलाघातम्क दोनों स्वराघात बने रहे।

9. सरलीकरण की जो प्रवृत्ति ध्वनियों में है, वही व्याकरण के रूपों में भी लक्षित होती है। द्विवचन समाप्त हो गया। रूप रचना में विविधता बनी रही। लिंग तीन बने रहे। विशेषण, विशेष्य के अधीन है। विभक्तियों में हेर–फेर उल्लेखनीय हैं। धम्मपद की बानगी – सब्बा दिसा सप्पुरिसो पावति।

2. मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा – प्राकृत (1 ई.सन् से 500 ई.तक) :

हेमचन्द्र, मार्कंडेय, सिंहदेव आदि आचार्य कहते हैं 'मूल भाषा संस्कृत है उससे उत्पन्न प्राकृत है। संस्कृत जनभाषा थी वही विकृत होते–होते प्राकृत प्रसिद्ध हुई। प्राच्यभाषाविद् पिशेल भी मानते हैं कि प्राकृत की जड़ जनता की बोलियों के भीतर है। प्राकृत नाम उस भाषा के लिए रूढ़ हो गया, जो पहली शती ईसवी से पांचवी–छठी सदी तक प्रमुख रूप से साहित्यिक भाषा रही। बौद्द और जैन साहित्य प्रमुख रूप से मागधी और अर्धमागधी में रचित है। गुणाढ्य की प्रसिद्ध बृहत्कथा पैशाची प्राकृत में थी। राजशेखर कृत कर्पूरमंजरी का गद्यभाग शौरसैनी प्राकृत में है। भास, कालिदास के नाटकों का गद्य शैरसेन में ही है।

हालकृत गाहा सतसई, प्रवरसेन कृत रावणवहो, वाक्पति कृत गउडवहो, जयवल्लभ कृत वज्जा लग्ग, हेमचन्द्राचार्य कृत कुमारपा चरति महाराष्ट्री प्राकृत में हैं। इसी साहित्य के आधार पर वररूचि कृत 'प्राकृत प्रकाश' और हेमचन्द्र कृत प्राकृत व्याकरण लिखे गए। प्राकृत भाषाओं की सामान्य विशेषताएं –

1. प्राकृत भी संस्कृत के तुल्य श्लिष्ट योगात्मक भाषाएं हैं।
2. संस्कृत व्याकरण को सरलीकृत किया गया।
3. शब्दरूपों और धातुरूपों की संख्या कम की गई।
4. अस्पष्टता के निवारण के लिए कारकों की सृष्टि हुई।
5. द्विवचन और आत्मनेपद का अभाव हो गया।
6. प्राचीन ध्वनियों का लोप हुआ। स्वरों में ऋ, ॠ, ऐ, औ व्यंजनों में य, श, ष विसर्ग आदि का लोप हुआ।
7. साधारणतः शब्द के अंतिम व्यंजन का लोप हो जाता है।

8. मध्यगत क, त, प का लोप हो जाता है। मध्यगत महाप्राणों ख, ग, ध आदि का लोप हो जाता है

9. कुछ धातुओं के अर्थों का भी अंतर हो गया।

10. संगीतात्मक के स्थान पर बलाघात्मक स्वर हो गए।

11. तद्भव शब्दों की संख्या अधिक है, तत्सम कम।

12. कुछ समान व्यंजनों का लोप होने से नए संयुक्त स्वर बने – आदित्यवार, आइत्त्वार, . द्यूत–जूआ।

13. श,ष का प्रायः स हुआ – शिर–सिर, षंड–संड, वेष–वेस।

14. शब्द के आदि में – य का ज और ब का व मिलता है । यश–जस, विंशति–बीस।

15. शब्द के आदि में न संयुक्त व्यंजन होते हैं न द्वित्व – स्तन–थण, क्वाथ से काढ़ा।

16. संस्कृत के दस लकार घटते–घटते पांच रह गये।

izkd`r ds Hksn & izpfyr tuinh; cksfy;ksa ds vk/kkj ij dqN oS;kdj.kksa us 27 vkSj 42 izkd`r cksfy;ka fxuk nh gSaA Hkjreqfu us lkr izkd`r ekuhaA izkd`r O;kdj.k ds lcls izeq[k vkSj izkphu oS;kdj.k oj:fp us pkj gh izkd`r ekuhaA 'kkSjlSuh] egkjk"Vªh] iS'kkph] ekx/khA vkxs ekx/kh dk ,d Hksn v/kZekx/kh Hkh ekukA vkpk;Z n.Mh us dkO;kn'kZ esa egkjk"Vªh izkd`r dks loZJs"B ekukA

(क) शौरसेनी : शूरसेन प्रदेश (मथुरा का आसपास) की भाषा रही है। पश्चिमी हिन्दी की बोलियों –ब्रज, कौरवी, कन्नौजी, हरियाणी, राजस्थानी का विकास इसी से हुआ। संस्कृत नाटकों में इसका प्रयोग स्त्री पात्रों, मध्यवर्ग के लोगों और विदूषकों से कराया गया है। प्राकृत का गद्य साहित्य शौरसेनी से मिलता है, इसमें संस्कृत के ध्वनिगत और व्याकरणगत अनेक तत्त्व सुरक्षित हैं। सरलता, सरसता, श्रवणसुखदता के कारण अधिक लोकप्रिय हुई।

इसमें भी प्राकृत की तरह अ का ओ हुआ। ख, घ, ध, का ह हुआ। मुख-मुंह, मेघ-मेह, वधू-बहू। व्यावहारिक रूपों में थोड़ी बहुत भिन्नता को छोडकर सामान्यतः प्राकृत के सभी लक्षण इसमें पाए जाते हैं। शोरसैनी से ही वर्तमान हिन्दी का विकास हुआ है। भास, कालिदास आदि के नाटकों में गद्य शौरसेनी में है।

(ख) अर्धमागधी प्राकृत : पालि जिस प्रकार गौतम बुद्ध के उपदेशों का संग्रह है उसी प्रकार अर्धमागधी महावीर स्वामी के उपदेशों का संग्रह है जो महावीर स्वामी के जीवनकाल (ई.पू. 600) के सात सौ वर्षों बाद से सम्पादित किया जाने लगा इनके अतिरिक्त पचास के लगभग जैन ग्रंथ और हैं। इसकी स्थिति मागधी और शौरसेनी के बीच में कोसल प्रदेश में रही है। इसमें मागधी के तत्त्व अधिक हैं। गद्य में मागधी और शौरसेनी व्याप्त हैं । साहित्यिक प्राकृतों में इसे सबसे प्राचीन बताया जाता है। इससे जैन इसी को आदिभाषा मानते हैं। पूर्वी हिन्द और उसकी बोलियों का विकास इसी से हुआ। आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में इसे राजपुत्र एवं श्रेष्ठियों की भाषा बताया है। कुवलयमालाकहा में अद्योतन सूरी ने 18 देशी भाषाओं का विवरण दिया है।

इसमें दंत्य ध्वनि मूर्धन्य हो जाती है। स्थित-ठिय। ष, श का स हो जाता है। श्रावण-सावन। य का ज हो जाता है - यौवन -जोव्वण। संयुक्त व्यंजनों में स्वरभक्ति के द्वारा विच्छेद हो होता है। स्नान-सिनान। स्पर्श का लोप होकर य श्रुति-सागर-सायर। इसमें आसपास की कई बोलियों के तत्त्व अपनाए जाने के कारण रूपों में विविधता अधिक है।

मागधी प्राकृत - यह मगध की राजभाषा थी। सम्राट अशोक के समय इसका भौगोलिक विकास हुआ। लंका में पालि को ही मागधी माना जाता है क्योंकि पालि मगध से ही वहां गई थी । भरत के नाट्यशास्त्र के अनुसार यह अन्तःपुर के नौकर, अश्वपालक आदि की भाषा थी । मार्कंडेय के अनुसार भिक्षु और राक्षस इसका प्रयोग करते थे। अश्वघोष के नाटकों में पुरानी मागधी प्राकृत के नमूने मिलते हैं। लोक व्यवहार की मागधी से ही भोजपुरी, मैथिली, बंगला, उड़िया, असमी विकसित हुई हैं।

अ का ए, र का ल, ष, श और स का श, ज का य हो जाना इसकी पहचान है । जैसे देव : -देवे, राजा-लाया, पुरुष-पुलिशे, जानाति-याणादि। संयुक्त व्यंजनों में शुष्क-शुस्क, कष्ट से कस्ट। द्य का य हो जाता है - अद्य-अय्य, मद्य-मय्य् । क्ष का क्ख, भिक्षु-भिक्खु। पूर्वी

हिन्दी की भाषाओं और बिहारी की बोलियों के विकास की दृष्टि से मागधी का महत्त्व है। साहित्य अधिक नहीं है। अन्य विशेषताएं सामान्य प्राकृत की तरह हैं।

3. अपभ्रंश (ई.सं. 500 से 1000) :

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा की तीसरी अवस्था अपभ्रंश कहलाई। पतंजलि ने संस्कृत के मानक शब्दों से अशुद्ध, संस्कारच्युत, भ्रष्ट शब्दों को अपभ्रंश की संज्ञा दी। गुर्जर, आभीर, जाट आदि जातियां बाहर से आकर पश्चिमी भारत में बस गयी थीं और भारतीय आर्य भाषा और संस्कृत में दीक्षित नहीं हो पाई थीं, उनकी भाषा को अपभ्रष्ट माना जाता था। जिस समय विभिन्न प्राकृतों को साहित्यिक ग्रंथों की भाषा बनने का गौरव प्राप्त हो रहा था उसी समय बोलचाल की भाषाओं का निरन्तर विकास हो रहा था। प्राकृत की तुलना में जिस भाषा में ध्वन्यात्क और व्याकरणिक परिवर्तन हो रहा था उसे संस्कृत पंडितों ने अपभ्रष्ट (अपभ्रंश) नाम दे दिया था।

अपभ्रंश शब्द का प्रथम प्रयोग आचार्य चडि (पतंजलि पूर्व) ने किया है। उनके बाद पतंजलि, भर्तहरि, भामह, दण्डी आदि ने अपभ्रंश का उल्लेख किया । अपभ्रंश के सबसे प्राचीन उदाहरण भरतमुनि (400 ई.पू.) के नाट्यशास्त्र में मिलते हैं। दण्डी (सातवीं सदी) के समय इसका प्रयोग आरम्भ हो गया था। अपभ्रंश की प्रमुख रचनाएं रविषेणाचार्य कृत पउमचरिउ, पुष्पदंतकृत महापुराण, विद्यापति की कीर्तिलता, अद्यहमाण-संदेश रासक। स्वयंभू और पुष्पदंत अपभ्रंश के दो प्रमुख कवि हैं। कुछ विद्वानों ने अपभ्रंश को ही देश, भाषा, देशी अवहट्ठ में कहा है । हिन्दी कवियों ने भी भाषा, भाखा, देसिल बअना आदि शब्दों का प्रयोग किया है।

बारहवीं सदी के अंत तक अपभ्रंश लोकभाषा न रहकर साहित्यरूढ भाषा बन चुकी थी। इसी समय आचार्य हेमचन्द्र ने अपभ्रंश व्याकरण लिखा। जैसे ही इसे व्याकरण का अनुशासन स्वीकार करना पड़ा वैसे ही जनभाषाएं प्रबल होने लगीं। ईसा की तेरहवीं सदी से आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के प्रारंभिक साहित्यिक ग्रंथ मिलने लगते हैं। अपभ्रंश साहित्य का विकास मालवा, गुजरात, राजस्थान में हुआ। अतः इस प्रदेश की अपभ्रंश तत्कालीन साहित्यिक भाषा बन गई।

अपभ्रंश मध्यकाल और आधुनिक काल की संक्राति कालीन भाषा है । अतः वह अपने प्राचीन रूप संस्कृत से स्वयं को मुक्त कर रही थी और साथ ही आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं

के स्वरूप का निर्माण कर रही थी। अपभ्रंश काल में भारतीय आर्यभाषा संश्लिष्ट रूप त्यागकर विश्लेषात्मक बन गई। यह संस्कृत और प्राकृत की तरह व्याकरीकरण न होकर व्याकरण के जटिल नियमों से मुक्त हो गई। यह उकारबहुला भाषा थी। यह प्रवृत्ति ब्रज और अवधि को मिली है। शब्द एवं धातुरूपों में नये–नये प्रयोग कर अपभ्रंश ने हिन्दी तथा आधुनिक आर्यभाषाओं के विकास की आधारभूमि उपस्थित कर दी। अपभ्रंश का साहित्यिक क्षेत्र भी मुख्यता वही मध्यदेश है जो हिन्दी का जन्मस्थान है। अतः कुछ विद्वानों ने अपभ्रंश को पुरानी हिन्दी कहा है।

अपभ्रंश की विशेषताएं :

1. भाषा श्लिष्ट योगात्मक से वियोगात्मक होने लगी।

2. वैदिक संगीतात्मक स्वर के स्थान पर बलाघात स्वर हो गया।

3. संस्कृत में ऋ के स्थान पर अ, इ, उ, ए और रि हो गया। जैसे -
कृष्ण-कण्ह, कृत-किय, पृच्छ-पुच्छ, गृह-गेह,. ऋण-रिण

4. स्वरों के अनुनासिक रूप -जाउं, करउं/अकारण अनुनासिकता पक्षि-पंख, अश्रु-आंसू।
निरनुनासिकीकरण सिंह-सीह, विंशति-बीस।

5. उकारबहुलता की प्रवृत्ति इसी से ब्रज और अवधी को मिली-मनु, कारण, चलु।

6. व्यंजन के सरलीकरण के लिए स्वरभक्ति वर्ष-वरिस, स्त्री-इत्तिअ।

7. स्वरलोप पकी प्रवृत्ति - अहं-हउं। स्त्रीलिंग शब्दों का अंत्य स्वर लोप-लज्जा-लाज। स्वर गुच्छों की संख्या में वृद्धि - अई, अउ, आइ, आउ।

8. सामान्यतः अपभ्रंश ट वर्ग प्रधान भाषा है, ण भी अधिक है।

9. न का ण, य का ज, श, ष का स हुआ। नगर (णयर) यदि (जइ) केश-केस, शूकर-सूअर।

10. शब्द मध्य में च, ग, क, का, अ, या, य हुआ -वचन-वयण, नगर-णयर, कोकिल-कोयल। मध्यावती ख, घ, ध का ह हो गया- मुख-मुह, मेघ-मेह, दधि-दहि। ट का ड, ठ का ढ हुआ - घट-घड, पठ-पढ़। अंत्य व्यंजन का लोप-जगत्-जग।

11. य्, र्, ल्, व् की अधिक क्षति हुई और उसके स्थान पर द्वित्व की प्रवृत्ति बनी- चक्र-चक्क, मार्ग-मग्ग, पक्व-पक्क, स्वर्ग-सग्ग।

12. त्य का च्च, द्य का ज्ज - सत्य, सच्च, अद्य का अज्ज।

13. उच्चारण से अधिक व्याकरकिण कोटियों में परिवर्तन हुए। अपभ्रंश में दो ही लिंग और दो ही वचन रह गये। लिंग निर्णय अत्यंत जटिल है।

14. कारकीय प्रयोग सरल हो गए - को, का, के, की, से, लिए आदि से एक ही ढंग के रूप बने।

15. विशेषण - अइस, जइस, तइस, कइस।

16. क्रिया रूप- बोल्ल, उट्ठ, बइट्ठ।

17 काल रचना – वर्तमान – हउं चलउं, तुहुं चलहि, ओह चलइ। भूतकाल सर्वत्र चलिअ, सुणिअ। यह व्याकरण में सरलीकरण का उत्तम उदाहरण है।

18. तद्भव शब्दों की संख्या सर्वाधिक। ऐसे शब्दों में ट वर्ग की बहुलता अपभ्रंश की मुख्य विशेषता स्पष्ट करती है।

उदाहरण – कहउं संगहबि हत्थ– कहता हूं जोडकर हाथ।

अपने स्वरूप निर्माण की प्रवृत्ति में स्वतंत्रता अपनाए जाने के कारण अपभ्रंश ने अपनी व्याकरणिक विशेषताओं की दृष्टि से अलग प्रकृति की रचना की। उसने प्राकृत् की ध्वन्यात्मक प्रवृत्तियों को विकसित करने के साथ नई प्रवृत्तियों को भी जन्म दिया। मध्यकालीन आर्यभाषा में जिस आयोगात्मक स्वरूप का प्रारम्भ हुआ वह अपभ्रंश में पूर्णतया विकसित हुआ। अपभ्रंश के सभी रूपों में सरलता आ गई। यह उकारबहुला भाषा बन गई ।

कालरचना की जटिलता समाप्त हो गई। विभक्तियों की अस्पष्टता दूर करने के लिए परसर्गों का प्रयोग हुआ। साथ ही देशज शब्दों और धातुओं को पर्याप्त मात्रा में स्वीकार किया। आयोगात्मक प्रवृत्ति होने के कारण अपभ्रंश मूलतः व्याकरण प्रधान भाषा नहीं रही और उसमें व्यापक रचनात्मक स्वतंत्रता आ गई।

5.2.4 आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएं – हिन्दी भाषा का आधुनिक विकास :

अ. खड़ी बोली की विशेषताएं और स्वरूप विकास :

खड़ी बोली शब्द का प्रयोग दो अर्थों में होता है। एक साहित्यिक हिन्दी खड़ी बोली के अर्थ में और दूसरे दिल्ली मेरठ के आसपास की लोक–बोली के अर्थ में। खड़ी बोली में खड़ी शब्द का अर्थ भी विवादास्पद है। तासी ने खड़ी का अर्थ खरी अर्थात् शुद्ध माना, ग्राहम बेली में अधिकता से प्रयुक्त खड़ी पाई (छोटा, बड़ा, खरा, खोटा) से जोड़ा तथा ब्रज की अपेक्षा उसके ध्वन्यात्मक प्रभाव की कर्कशता से जोड़ा। खड़ी बोली या कौरवी का उद्भव शौरसैनी अपभ्रंश के उत्तरी रूप में हुआ। इसका क्षेत्र देहरादून का मैदानी भाग, सहारनपुर से मुजफ्फरनगर, मेरठ, दिल्ली, अम्बाला, बिजनौर, रामपुर तथा मुरादाबाद है।

हिन्दी, उर्दू, हिन्दुस्तानी तथा दक्खिनी एक सीमा तक खड़ी बोली पर आधारित हैं। खड़ी बोली के नमूने हिन्दी साहित्य के हर काल की कविता में मिलते हैं। दिल्ली–मेरठ की बोली को

ही खड़ी बोली कहा गया है। 19वीं सदी के प्रारम्भ में जो भाषा अस्तित्त्व में आई उसके चार रूप रहे हैं। पहली वह खड़ी बोली थी जिसमें ब्रजभाषा का मिश्रण था। दूसरा रूप वह था जिसमें ब्रज के साथ राजस्थानी का भी मिश्रण था। तीसरा रूप तत्सम प्रधान अवधी मिश्रित खड़ी बोली का था। चौथी वह खड़ी बोली थी जिसमें तत्सम्-तद्भव के साथ अरबी फारसी के शब्दों का मिश्रण था। वस्तुतः 19वीं सदी का आरम्भ खड़ी बोली का प्रस्तावना काल था। यह भाषा हो जाने पर भी मूल नाम खड़ी बोली से छुटकारा नहीं पा सकी।

उच्चारणगत विशेषताएं :

1. स्वर बहुत दीर्घ नहीं हैं। अतः दीर्घ स्वरों के बाद भी व्यंजन का द्वितव रूप होता है, जैसे गाड्डी, बेट्टा।
2. शब्दांत के ह्रस्व स्वर दीर्घ बोले जाते हैं - पशु,-पशू, निधि-निधी।
3. आदि अक्षरों में स्वरलोप की प्रवृत्ति - अंगूठा-गूंठा, इकट्ठा-कट्ठा।
4. औ की ओ ध्वनि सुनाई देती है - औरत-ओरत, और-ओर।
5. मूर्धन्य ध्वनियों की अधिकता - लेणा, देना, केला, बालक।
6. ड़ के स्थान पर ड तथा ढ़ के स्थान पर ढ - बडा, पढणा।
7. म्ह, न्ह, ल्ह की निराली ध्वनियां - म्हारा, न्हाणा, पढणा।
8. महाप्राण के अल्पप्राण करने की प्रवृत्ति में भी - मैंबी, होठ - होट, भूख-भूक।

व्याकरणिक विशेषताएं :

1. हरियाणवी-पंजाबी के प्रभाव स्वरूप स्त्रीलिंग रूप - मालन, धोबन।
2. कारक चिह्नों में विविधता - कर्त्ता -नै, कर्म-को, कूं, करण - अपादान-से, सै, सूं सम्प्रदान -कू ने , लिए, सम्बन्ध - का, के, की, अधिकरण - में, पै

सर्वनाम - मुझ और तुझ का उच्चारण - मुज, तुज। वह के स्थान पर ओ, ऊ यह के स्थान पर यो, यू, कौनके लिए कोण, कुण, महारा, थारा । वे-वै।

क्रिया रूप – सहायक क्रिया वर्तमान में मानक हिन्दी की तरह – हूं, हैं, हो, है। भूतकाल में एकवचन में था, हा बहुवचन में था, हे। भविष्य के रूप–हुंगा, होंगे। भूतकालिक रूप्–रह्या, उठ्या, बोल्या। मारता हूं का मारूं। मारता था के स्थान पर मारूं था।

क्रिया विशेषण – इब, इब्बी, कद, इदर, उदर, नहीं के स्थान पर नईं, नीं। अवधी की तरह 'हर' का प्रयोग – बाबूहर आंगे।

कुछ निराले शब्द – कुवाड़, गंठा, चोक्खा, टूम, ब्या।

हिन्दु या हिन्दवी या दखनी, हिन्दुस्तानी, रेख्ता, रेख्ती, हिन्दी, हिन्दुस्तानी खड़ी बोली के ही विभिन्न रूप हैं। डॉ0 भोलानाथ तिवारी के मतानुसार ''पंजाबी, हरियाणवी, ब्रज और दिल्ली की खड़ी बोली – इन तीनों की विशेषताओं का मिश्रित रूप जो दिल्ली में राजभाषा फारसी की कोमल छाया में विकसित हुआ, आज की मानक हिन्दी खड़ी बोली है जिसकी तीन शैलियां हिन्दुस्तानी, उर्दू, हिन्दी है।

आधुनिक युग (सन् 1900 से आगे) आधुनिक युग साहित्यिक खड़ी बोली हिन्दी का युग है। भारतेन्दु युग में ब्रजभाषा और खड़ी बोली का मिश्रित प्रयोग है लेकिन खड़ी बोली के वेगपूर्ण उत्थान, प्राबल्य और मानकीकरण के सामने मिश्रित भाषा का रूप समाप्त हो गया। राजनीतिक परितवर्तनों के कारण 19वीं सदी के आरम्भ से ही मध्यप्रदेश की भाषा हिन्दी प्रभावित हुई। खड़ी बोली को फिर से हिन्दी साहित्य में लाने का श्रेय इस युग में अंग्रेजों को जाता है। इन लोगों ने खड़ी बोली गद्य को प्रोत्साहित किया ।

इस सन्दर्भ में कलकता के फोर्ट विलियम कॉलेज का योगदान उल्लेखनीय है। ईसाई मिशनरियों ने बाइबिल के अनुवाद और प्रचारात्मक ग्रंथ हिन्दी गद्य में प्रकाशित किये। जॉन गिल क्राइस्ट की अध्यक्षता में फोर्ट विलियम कॉलेज के चारों लेखकों ने खड़ी बोली की अनेक शैलियों की नींव रखी। इन्शाअल्ला खां ने हिन्दुस्तानी रूप की स्थापना की। 'ठेठ हिन्दी की ठाठ' में अयोध्यासिंह उपाध्याय ने इसका प्रयोग किया। लल्लूलाल जी ने दिल्ली–आगरा की खड़ी बोली में 'प्रेमसागर' लिखा। सदल मिश्र की भाषा व्यावहारिक बोलचाल की हिन्दी है। सदा सुखलाल की भाषा संस्कृतनिष्ठ थी। राजा शिव प्रसाद सितारे–हिन्द का प्रयत्न था कि हिन्दी और उर्दू में अन्तर न रहे। राजा लक्ष्मणसिंह तत्सम प्रधान खड़ी बोली के समर्थक थे।

खड़ी बोली हिन्दी का गद्य साहित्य में प्रचार उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में हुआ। इसका श्रेय साहित्य क्षेत्र में भारतेन्दु को और धर्म के क्षेत्र में स्वामी दयानन्द को है। खड़ी बोली का परिनिष्ठित रूप क्रमशः विकसित हुआ। उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में फोर्ट विलियम कॉलेज वालों की हिन्दी और भारतेन्दु युगीन लेखकों की हिन्दी में विशेष अन्तर नहीं है।

18वीं और 19वीं सदी में बहुत से मुसलमान कवियों ने काव्य रचना करके खड़ी बोली के उर्दू रूप को परिमार्जित साहित्यिक रूप दिया। जिनमें ग़ालिब, इंशा, मीर, उल्लेखनीय हैं। प्रेमचन्द, सुदर्शन, अश्क आदि ने कथा साहित्य में खड़ी बोली के उर्दूनिष्ठ रूप को अपनाकर सफलता प्राप्त की। प्रगतिवादी कवियों ने गद्य और पद्य दोनों में इसे महत्त्वपूर्ण स्थान देकर लोकप्रिय बनाया।

खड़ी बोली के साहित्यिक रूप का स्थिरीकरण ओर आदर्शीकरण करने का दायित्व महावीरप्रसाद द्विवेदी ने निभाया था। उन्होंने अनुभव किया कि भाषा की एकरूपता और परिनिष्ठता के लिए खड़ी बोली की एकछत्र सत्ता को मानना पड़ेगा और आंचलिक बोलियों को छोड़ना पड़ेगा। द्विवेदी जी ने भाषागत दोषों को दूर किया। इस युग में काव्य भाषा परिष्कार में मैथिलीशरण गुप्त का योगदान उल्लेखनीय है। छायावादी कवियों ने खड़ी बोली को काव्योपयुक्त सूक्ष्मता प्रदान करने में अप्रतिम योगदान दिया।

खड़ी बोली को परिनिष्ठत साहित्यिक रूप देने में नागरी प्रचारिणी सभा काशी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग और विश्वविद्यालयों के हिन्दी विभागों का योगदान महत्त्वूर्ण है। प्रेमचन्द, प्रसाद, निराला, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी और अज्ञेय का गद्य साहित्य साहित्यिक हिन्दी के रूप में विश्वस्तर पर प्रतिष्ठित है।

वर्तमान व्यक्तिवादी युग में हिन्दी साहित्य में जितने साहित्यकार हैं उतनी ही विविध शैलियां हैं जो साहित्यिक हिन्दी को शिखर पर स्थापित करने में सक्षम हैं।

5.2.5 राजभाषा, राष्ट्रभाषा, सम्पर्क भाषा :

सामान्य भाषा के अन्तर्गत भाषा के विविध रूप आते हैं। ये रूप मुख्यतः चार आधारों पर आधारित है–इतिहास, भूगोल, प्रयोग और निर्माता। कालक्रम में भाषा में भेद उत्पन्न होता है और भेद के आधार पर भाषा में रूपान्तरण होता है। भारत में पहले संस्कृत बोली जाती थी फिर

पालि, फिर प्राकृत और फिर अपभ्रंश भाषा के ये रूप ऐतिहासिक हैं। इन्हीं के विकसित आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के पंजाबी, मराठी, बंगाली, गुजराती आदि रूप भौगोलिक हैं। तीसरा आधार प्रयोग है – प्रयोग कौन करता है, किस विषय के लिए साधु या असाधु आदि। इसी आधार पर जातीय भाषा, साहित्यिक भाषा, शुद्ध-अशुद्ध, राजभाषा, सम्पर्क, व्यावसायिक भाषा।

तत्त्वतः प्रयोग के अन्तर्गत-प्रयोग क्षेत्र, साधुता और प्रचलन के ये तीन उप आधार हैं। चौथा आधार है निर्माता। यदि भाषा का निर्माता समाज है, वह परम्परागत रूप से चली आ रही है तो वह सामान्य भाषा है और यदि एक दो व्यक्तियों ने उसे निर्मित किया तो वह कृत्रिम भाषा कहलाती है जैसे गुप्त। गुप्तचर-क्रांतिकारी, अपराधी (दामोदार) आदि। इस प्रकार भाषा के सैंकड़ों भेद किए गए हैं जिनमें हिन्दी भाषा के प्रमुख चार रूप हैं –

(अ) सम्पर्क भाषा : सुब्रमण्यम भारती ने एक सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी को अपनाने का सुझाव दिया था जिसे उन्होने 1906 में इंडिया नामक पत्र में लिखा था– ''भारत विभिन्न क्षेत्रों का देश है, सभी क्षेत्रों की अलग-अलग भाषाएं है, लेकिन पूरे भारत के लिए आम भाषा-कॉमन लैंग्वेज आवश्यक है।

सम्पर्क भाषा से अभिप्राय है देश के विभिन्न क्षेत्रों के बीच सम्पर्क का काम करने वाली भाषा। भारत में केवल हिन्दी ही देश के अधिकांश भागों में अधिकतर लोगों द्वारा बोली और समझी जाती है। संविधान की आठवीं अनुसूची में उल्लिखित 18 भाषाएं हिन्दी को छोड़कर सीमित क्षेत्र में बोली जाती हैं। हिन्दी की भूमिका राजभाषा के रूप में होने के साथ-साथ सम्पर्क भाषा भी है जो सम्पूर्ण देश को लोगों के जोड़े रखने का काम करती है।

सम्पर्क भाषा हिन्दी के विविध क्षेत्र हैं। हिन्दी भाषा भारतीय समाज में सुदीर्ध समय से सम्पर्क भाषा रही है। आज भी हमारे सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन के कार्यकलापों की प्रमुख भाषा है। वाणिज्य, व्यापार, पर्यटन, धार्मिक, सांस्कृतिक यात्राओं, रेडियो, टी.वी. सिनेमा आदि मनोरंजन तथा अन्य प्रकार के कार्यक्रमों, राष्ट्रीय महोत्सव आदि में व्यापक रूप में प्रचलित वैचारिक आदान-प्रदान की भाषा है।

प्रशासनिक क्षेत्र में सम्पर्क के रूप में हमारी विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका में हिन्दी का प्रयोग किया जाता है। शैक्षिक क्षेत्र में भी सम्पर्क की भाषा हिन्दी ही है। सम्पूर्ण देश में शिक्षा व्यवस्था में सम्पर्क सूत्र स्थापित करना होता है जिससे एक क्षेत्र में शिक्षा प्राप्त

करने वाले व्यक्ति दूसरे क्षेत्र में रोज़गार प्राप्त कर सकें या अखिल भारतीय स्तर की सेवाओं में नौकरी पा सकें।

भारत जैसे बहुभाषी देश में सम्पर्क भाषा का बहुत महत्त्व है। 1961 की जनगणना के अनुसार देश में मातृभाषा के रूप में 1652 भाषाएं बोली जाती थीं। जनता को दैनिक आवश्यकताओं से लेकर राष्ट्रभाषा तक के कार्यों के लिए एक जैसी भाषा की जरूरत पड़ती है जो वहां के विभिन्न भाषाओं के बोलनेवालों के सम्पर्क का माध्यम बन सके। यहां कन्याकुमारी से कश्मीर तक और द्वारका से अरूणाचल तक अनेक भाषाओं और बोलियों के प्रयोग करने वाले लोग रहते हैं। वे तीर्थाटन, व्यापार, शिक्षा, सामाजिक और राजनीतिक कार्यकलापों के लिए पूरे देश में यात्राएं करते हैं। इनमें परस्पर वैचारिक सम्पर्क और आदान-प्रदान की सम्पर्क भाषा हिन्दी ही है।

स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व भी हिन्दी के माध्यम से ही भारत के अनेक संतो, सुधारकों, मनीषियों और नेताओं ने अपने विचारों का प्रचार किया था। संतों ने सांस्कृतिक एकता को आधार बनाकर काव्य रचना की थी जो सर्वत्र समान रूप से समादृत होती थी। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सम्पर्क भाषा हिन्दी का महत्त्व भारत में था और है।

(आ) **राष्ट्रभाषा** : आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है-उसी भाषा का गौरव सबसे अधिक हो सकता है और वही राष्ट्रभाषा कहला सकती है जिसको सब जनता समझती हो और जिसका अस्तित्त्व सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हो।

प्रत्येक समुन्नत, स्वतंत्र व स्वाभिमानी देश की अपनी राष्ट्रभाषा है। इंग्लैण्ड, अमरीका, रूस, चीन, जापान सभी देशों में वहीं की व्यापक बहुप्रचलित भाषा राष्ट्रभाषा के रूप में व्यवहृत होती है। भारत में युग-युग से मध्यप्रदेश की भाषा समूचे राष्ट्र की माध्यम बनती रही है। संस्कृत, पालि, प्राकृत और हिन्दी कमशः प्रत्येक युग में समूचे देश में प्रयुक्त होती रही हैं।

दक्षिण के आचार्यों ने हिन्दी के आदिकाल से अनुभव किया था कि इस भाषा के माध्यम से वे सारे देश की जनता तक अपना संदेश पहुंचा सकते हैं। वल्लभाचार्य, विट्ठलनाथ, रामानुजाचार्य, रामानन्द आदि इसकी राष्ट्रीय महत्ता को समझकर हिन्दी को व्यवहार में लाते रहे। महाराष्ट्र के नामदेव, गुजरात के नरसी मेहता, राजस्थान के दादू और रज्जब, पंजाब के गुरू

नानक, असम के शंकरदेव, बंगाल के चैतन्य महाप्रभु, उत्तरी और दक्षिणी सूफी संतों ने हिन्दी को ही अपने धर्म, संस्कृति और साहित्य का माध्यम बनाया। मुसलमान बादशाहों के काल में भी हिन्दी राष्ट्रभाषा के रूप में सर्वमान्य थी।

कम्पनी सरकार ने शासकीय कार्य के लिए हिन्दुस्तानी सिखाने के लिए कलकता में फोर्ट विलियम कॉलेज खोला था। वह इसी की सार्वजनिकता का प्रमाण है कि आधुनिक भाषाओं में हिन्दुस्तानी ही एक ऐसी भाषा है जिसके बिना कोई सार्वदेशिक कार्य नहीं हो सकता। भारतीय भाषाओं के सबसे बडे भाषाविज्ञानी जॉर्ज ग्रियर्सन ने हिन्दी को भारत की सामान्य भाषा कहा है।

देशव्यापी राष्ट्रीय आन्दोलन के सभी नेताओं ने हिन्दी के प्रयोग को अनिवार्य बताया। राजा राममोहन राय ने कहा कि इस समग्र देश की एकता के लिए हिन्दी अनिवार्य है। ब्रह्म समाज के बंगाली नेता केशवचन्द्र ने भारतीय एकता कैसे हो विषय पर लिखते हुए एकमात्र हिन्दी का पक्ष लिया है। स्वामी दयानन्द ने सारा कार्य हिन्दी में किय और वे इस आर्य भाषा को देशोन्नति का मुख्य आधार मानते थे। थियोसॉफिकुल सोसायटी की संस्थापिका एनी बेसन्ट ने कहा था कि हिन्दी का प्रचार सबसे अधिक है।

लोकमान्य तिलक ने भारतवासियों से हिन्दी सीखने का आग्रह किया था। सावरकर, गोखले, कालेलकर आदि मराठी देशभक्त साहित्यकारों का कहना था कि 'राष्ट्रभाषा प्रचार एक राष्ट्रीय कार्यक्रम है।' गुजरात की आवाज को स्वामी दयानन्द ने ऊंचा किया। उनके स्वर में स्वर मिलाकर राष्ट्रभाषा प्रचार के कार्य को महात्मा गांधी ने आगे बढ़ाते हुए कहा था कि हिन्दी को हम राष्ट्रभाषा मानते हैं। के एम.मुशी का मत है कि "भारत का भविष्य के निर्माण राष्ट्रभाषा के उद्भव और विकास के साथ सम्बद्ध है।" महर्षि अरविन्द ने कहा था, "अपनी-अपनी मातृभाषा की रक्षा करते हुए हिन्दी को सामान्य भाषा के रूप में जानकर हम प्रान्तीय भेदभाव नष्ट कर सकते हैं।"

इसी प्रकार के विचार रवीन्द्रनाथ टैगोर, सरोजिनी नायडू आदि देशभक्तों ने समय-समय पर व्यक्त किये। आचार्य क्षितिमोहन सेन ने कहा "हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए जो अनुष्ठान हुए उनको मैं संस्कृति का राजसूय यज्ञ समझता हूं। बंगाल के प्रसिद्ध भाषाविज्ञानी डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी का मत था कि, हिन्दी भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा है, यह एक स्वतः सिद्ध बात है।" वस्तुतः हिन्दी एकमात्र भारतीय भाषा है जिसमें उस भाषा क्षेत्र से बाहर के साहित्यकारों ने

विपुल साहित्य लिखा, जिसकी सूची बहुत लम्बी है। यह बात एक स्वर से मानी जा चुकी है, कि स्वतंत्र और जनतंत्रात्मक देश की एक राष्ट्रभाषा होनी चाहिए। वह भाषा जन-जन की ही हो सकती है, क्योंकि वही उनके संस्कारों, भावों और विचारों की निजी भाषा है। हिन्दी भारत की संस्कृति और चेतना की भाषा है।

स्वातंत्र्योत्तर युग में राष्ट्रभाषा हिन्दी को इस अधिकार से वंचित करने के लिए अंग्रेजी मानसपुत्रों के द्वारा जो षड्यंत्र किये जा रहे हैं, उनको ध्वस्त करने के लिए प्रत्येक स्वतंत्रता प्रिय और राष्ट्रवादी भारतीय को प्रयत्नशील रहना चाहिए।

(ई) राजभाषा : राजभाषा सामान्यतः राजकाज की या राजकीय कार्य की भाषा होती है। किसी राष्ट्र में प्रशासनिक व्यवस्था के लिए जिस भाषा का प्रयोग किया जाता है उसे राजभाषा कहते हैं। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार ''राजभाषा उसे कहते हैं जो केन्द्रीय और प्रादेशिक सरकारों द्वारा पत्र व्यवहार, राजकार्य और सरकारी लिखापढ़ी के काम में लायी जाये। '' भारत जैसे जनतंत्रात्मक दुहरे शासन पद्धतिवाले राष्ट्रों में राजभाषा की स्थिति दो प्रकार की है, प्रथम केन्द्रीय राजभाषा जिसे भारतीय संविधान में संघ की राजभाषा कहा गया और दूसरी राज्यों की राजभाषा।

केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रशासनिक कार्यों के लिए जिस भाषा का प्रयोग किया जाता है उसे राजभाषा कहते हैं। प्रशासनिक रूप में इस भाषा का महत्त्व सम्पूर्ण राष्ट्र में समान रहता है। स्वाधीन राष्ट्रों में बहुसंख्यक जन के द्वारा व्यवहृत होने वाली भाषा को राजभाषा का गौरव प्रदान किया जाता है। संविधान में हिन्दी को राजभाषा का जो गौरवपूर्ण पद प्राप्त हुआ है उसका यही रहस्य है। दुर्भाग्य की बात है कि अभी तक हिन्दी भारतीय संविधान के पृष्ठों पर ही राजभाषा है, व्यावहारिक रूप में अंग्रेजी का प्राधान्य है।

इस प्रसंग में डॉ0 देवेन्द्रनाथ शर्मा का कथन है, ''राजभाषा का प्रयोग मुख्यतः चार क्षेत्रों में अभिप्रेत है- शासन, विधान, न्यायपालिका और कार्यपालिका। इन चारों में जिस भाषा का प्रयोग हो उसे राजभाषा कहेंगे। यह कार्य अब तक अंग्रेजी द्वारा होता रहा है। उसी का स्थान राजभाषा के रूप में हिन्दी को देना है। राजभाषा का यही अभिप्राय और उपयोग है।''

आधुनिक काल में राष्ट्रीय चेतना के विकास के साथ स्वभाषा को राजपद दिलाने की मांग समय-समय पर उठती रही। भारतेन्दु ने आह्वान किया था- 'निजभाषा उन्नति अहै, सब उन्नति

को मूल।' तब अदालतों में उर्दू की जगह हिन्दी को स्थान दिलाने के लिए उन्होने लिखा था, ''सभी सभ्य देशों की अदालतों में उनके नागरिकों की बोली और लिपि का प्रयोग किया जाता है। यही ऐसा देश है जहां अदालती भाषा न तो शासकों की मातृभाषा है और न प्रजा की। ''पं. मदनमोहन मालवीय के प्रयत्न से 1901 में युक्त प्रांत की अदालती भाषा के रूप में उर्दू के साथ हिन्दी को समान अधिकार मिला। राष्ट्रभाषा होने के नाते अनेक वर्षों तक इस देश की राजभाषा के रूप में मान्यता पाने के लिए संघर्ष किया। यह संघर्ष हिन्दी प्रांतों में उर्दू के विरुद्ध और अखिल भारतीय स्तर पर अंग्रेजी विरुद्ध रहा।

1947 में भारत स्वतंत्र हुआ और 14 सितम्बर 1949 को स्वाधीन भारत के संविधान में हिन्दी संघ की राजभाषा और देवनागरी राजलिपि स्वीकृत की गयी । आशा यह थी कि जिन कार्यों के लिए अंग्रेजी का प्रयोग होता रहा उनमें हिन्दी को ग्रहण किया जायेगा किन्तु संविधान में कहा गया कि अगले 15 वर्ष के लिए (26 जनवरी 1965) तक अंग्रेजी भाषा का प्रयोग उन कार्यों के लिए होता रहेगा जिनके लिए पहले होता रहा है। वस्तुतः यहीं से दुविधा शुरू हुई। संविधान ने अनुच्छेद 351 के द्वारा केन्द्रीय सरकार को राजभाषा हिन्दी के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य सौंपा जो उसे 15 वर्षों में कर लेना चाहिए था, लेकिन दुर्भाग्य से यह भी पूरा नहीं हुआ।

26 जनवरी 1965 के बाद की वास्तविकता यह है कि उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार और राजस्थान में हिन्दी एकमात्र राजभाषा है। हिमाचल और हरियाणा में कागजों पर हिन्दी है, व्यवहारतः राजकीय कार्यों के लिए अंग्रेजी का प्रयोग जारी है। केन्द्र में भी हिन्दी को जो स्थान प्राप्त होना चाहिए था वह नहीं हुआ। अंग्रेजी को 1963 के भाषा विधेयक द्वारा अनिश्चित काल के लिए हिन्दी के साथ सहचरी भाषा के रूप में जारी रखा गया। इसके साथ अंग्रेजी के पोषक पं. जवाहरलाल नेहरू के इस आश्वासन को लेकर बड़ी-बड़ी मांगें की जा रही हैं कि जब तक अहिन्दी राज्य सहमत नहीं होंगे, अंग्रेजी को राजभाषा के पद से हटाया नहीं जाएगा।

शब्दार्थ :
अपभ्रंश – विकृत भाषा, साधु भाषा – शुद्ध भाषा, उदीच्य – उत्तरी, प्रतीच्य – पश्चिमी, प्राच्य – पूर्वी।

5.3 सारांश :

- सामान्यतः यह माना जाता है कि सन् 2000 से 1500 ई.पू. भारत के उत्तर पश्चिमी सीमांत प्रदेशों में आर्यों के साथ सुविकसित भाषा भारत में आई। स्थानीय जातियों की भाषा का भी उन पर प्रभाव पड़ा। भारत में आर्यों के प्रसार में कई शताब्दियां लगीं और इस कालक्रम में भाषा में अनेक परिवर्तन हुए।
- वैदिक संस्कृत का प्राचीनतम रूप ऋग्वेद में मिलता है। यह मुख्य रूप से सांस्कृतिक और साहित्यिक कार्यों के लिए प्रयुक्त होती थी। ऋग्वेद का संकलन सम्पादन सप्तसिंधु प्रदेश में हुआ। ब्राह्मण ग्रंथों, आरण्यकों और उपनिष्दों की भाषा पूरे तोर पर तत्कालीन मध्यप्रदेश की आर्यभाषा है। मूल वैदिक की रक्षा के लिए 6 वेदांगों की रचना हुई।
- पश्चिमी आर्यभाषा पर पूर्वी भाषाओं के प्रभाव के फलस्वरूप लौकिक संस्कृत का उद्गम हुआ। वैदिक संस्कृति के समय ही लोकभाषाएं प्रचलित रहीं जिन्हें पाणिनि ने प्राचाम (पूर्वी) और उदीचाम् (उत्तरी) कहकर स्पष्ट किया था। उस समय मध्यप्रदेश में जो आर्यभाषाएं बोली जा रही थी उनके सामान्य रूप का नाम संस्कृत पड़ा। यह नाम पाणिनी (सातवीं सदी) ने दिया।
- e/;dkyhu vk;Z Hkk"kk dh rhu fLFkfr;ka gS & izFke izkd`r ;k ikfy ¼500 bZ-iw- ls lu~ 1 bZ-rd½( f}rh; izkd`r e/;dkyhu izkd`r ¼bZLoh lu 1 ls 500 bZ-rd½( o r`rh; izkd`r ;k viHkza'k ¼500 bZ- ls 1000 bZ-rd½A

5.4 सूचक शब्द :

हिन्दी भाषा का विकास : सामान्यतः यह माना जाता है कि सन् 2000 से 1500 ई.पू. भारत के उत्तर पश्चिमी सीमांत प्रदेशों में आर्यों के साथ सुविकसित भाषा भारत में आई। स्थानीय जातियों की भाषा का भी उन पर प्रभाव पड़ा। भारत में आर्यों के प्रसार में कई शताब्दियां लगीं और इस कालक्रम में भाषा में अनेक परिवर्तन हुए। विकास क्रम के अनुसार भारतीय आर्यभाषा को तीन कालों में बांटा जाता है – प्राचीन भारतीय आर्यभाषाएं (वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत – 2000 ई.पू. से 500 ई.पू.); मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाएं : (पालि, प्राकृत और अपभ्रंश – 500 ई.पू. से 1000 ई. तक); व आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएं : (हिन्दी और असमी, उड़िया, बंगला, मराठी, गुजराती आदि 1000 ई. से आगे) ।

वैदिक संस्कृत (2000 ई.पू. से 1000 ई.पू. तक) : वैदिक संस्कृत का प्राचीनतम रूप ऋग्वेद में मिलता है। यह मुख्य रूप से सांस्कृतिक और साहित्यिक कार्यों के लिए प्रयुक्त होती थी। ऋग्वेद

का संकलन सम्पादन सप्तसिंधु प्रदेश में हुआ। ब्राह्मण ग्रंथों, आरण्यकों और उपनिषदों की भाषा पूरे तोर पर तत्कालीन मध्यप्रदेश की आर्यभाषा है। मूल वैदिक की रक्षा के लिए 6 वेदांगों की रचना हुई।

लौकिक संस्कृत (1000 ई.पू. से 500 ई.पू.तक) : पश्चिमी आर्यभाषा पर पूर्वी भाषाओं के प्रभाव के फलस्वरूप लौकिक संस्कृत का उद्गम हुआ। वैदिक संस्कृति के समय ही लोकभाषाएं प्रचलित रहीं जिन्हें पाणिनि ने प्राचाम (पूर्वी) और उदीचाम् (उत्तरी) कहकर स्पष्ट किया था। उस समय मध्यप्रदेश में जो आर्यभाषाएं बोली जा रही थी उनके सामान्य रूप का नाम संस्कृत पड़ा। यह नाम पाणिनी (सातवीं सदी) ने दिया।

अपभ्रंश : मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा की तीसरी अवस्था अपभ्रंश कहलाई। व्याडि और पतंजलि ने संस्कृत के मानक शब्दों से अशुद्ध, संस्कारच्युत, भ्रष्ट शब्दों को अपभ्रंश की संज्ञा दी। गुर्जर, आभीर, जाट आदि जातियां बाहर से आकर पश्चिमी भारत में बस गयी थीं और भारतीय आर्य भाषा और संस्कृत में दीक्षित नहीं हो पाई थीं, उनकी भाषा को अपभ्रंष माना जाता था।

5.5 स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न :

1. आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का परिचय दीजिए।
2. राजभाषा समस्या पर विचार कीजिए।
3. राष्ट्रभाषा की सर्वव्यापकता पर अपने विचार लिखें।
4. सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी का परिचय दें।
5. हिन्दी भाषा के विकास पर टिप्पणी लिखें।

5.6 संदर्भित पुस्तकें :

- **शुद्ध हिन्दी**, लेखक – डा. हरदेव बाहरी, 2004
- **हिन्दी व्याकरण**, लेखक – पं. कमला प्रसाद गुरू, 2003
- **भाषा शास्त्र तथा हिन्दी भाषा की रूपरेखा**, लेखक – देवेंद्र कुमार शास्त्री, 2003

बीए मास कम्युनिकेशन, प्रथम वर्ष

हिन्दी- बीएमसी 102

खंड-सी इकाई - 2 अध्याय-6

प्रयोजनमूलक हिन्दी

लेखक : डा. मधुसूदन पाटिल, पूर्व वरिष्ठ व्याख्याता।

एस.आई.एम. शैली में परिवर्तन : डा. मनोज छाबड़ा, हिन्दी प्रवक्ता ।

अध्याय संरचनाः

इस अध्याय में हम प्रयोजनमूलक हिन्दी का परिचय प्राप्त करेंगे। तकनीकी शब्दों, कार्यालयीन भाषा, व पत्र-लेखन पर विशेष जोर दिया जाएगा। इस अध्याय की संरचना इस प्रकार रहेगीः

6.0 उद्देश्य

6.1 परिचय

6.2 विषय वस्तु की प्रस्तुति

6.2.1 प्रयोजनमूलक हिन्दी : एक परिचय

6.2.2 तकनीकी शब्द

6.2.3 कार्यालयीन भाषा

6.2.4 पत्र-लेखन

6.3 सारांश

6.4 सूचक शब्द

6.5 स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

6.6 संदर्भित पुस्तकें

6.0 उद्देश्यः

इस अध्याय के उद्देश्य इस प्रकार हैंः

- प्रयोजनमूलक हिन्दी का परिचय प्राप्त करना
- तकनीकी शब्दों का जायजा लेना

- कार्यालयीन भाषा के बारे में जानना
- पत्र–लेखन के बारे में जानना

6.1 परिचयः

वार्तालाप जैसे आम संचार के अलावा भाषा का प्रयोग कई विशेष संचार परिस्थितियों में किया जाता है। विभिन्न व्यवसायों में तथा अलग–अलग उद्देश्यों की पूर्ति हेतु भाषा का प्रयोजनमूलक प्रयोग किया जाता है। प्रयोजनमूलक भाषा का अभिप्राय विशेष उद्देश्यों की पूर्ति से संबंधित है। साथ ही विभिन्न व्यवसायों से जुड़ने के कारण प्रयोजनमूलक भाषा में व्यावहारिकता पाई जाती है।

भाषा का प्रयोजनमूलक प्रयोग संबंधित व्यावसायिक क्षेत्र व उद्देश्यों के कारण विविधताओं से परिपूर्ण होता है। प्रयोजनमूलक भाषा अल्प असावधानी के कारण कृत्रिम या अस्वाभाविक लग सकती है। इस कारण प्रयोजनमूलक या व्यावहारिक भाषा में निश्चित ढांचा और शैली संबंधित नियमों के साथ–साथ सरलता व स्पष्टता का कठोर अनुपालन करना आवश्यक होता है।

6.2 विषय वस्तु की प्रस्तुति :

इस अध्याय में स्वर–व्यंजन, शब्द व पद विषयों की अवधारणा पर विशेष जोर दिया जाएगा। विषयों की प्रस्तुति इस प्रकार रहेगीः

- प्रयोजनमूलक हिन्दी : एक परिचय
- तकनीकी शब्द
- कार्यालयीन भाषा
- पत्र–लेखन

6.2.1 प्रयोजनमूलक हिन्दी – एक परिचय :

आधुनिक विचारों को व्यक्त करने वाली भाषा के रूप में हिंदी को विकसित करने के साथ–साथ इसे भारत की समग्र संस्कृति का समर्थ संवाहक माध्यम बनाना है। इसके अलावा इसे विभिन्न व्यवसायों तथा काम–धंधों के लिए सेवा माध्यम के रूप में भी विकसित करना है। सामाजिक, सांस्कृतिक एवं व्यावहारिक इन व्यापक एवं जटिल वास्तविकताओं के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी

के विभिन्न प्रयोजनगत–शैली भेदों के लिए शिक्षण सामग्री का निर्माण और शिक्षण विधि के वैज्ञानिक एवं प्रभावशाली साधनों के विकास का कार्य कितना महत्त्वपूर्ण, दुष्कर और श्रमसाध्य है, इसकी चर्चा करने की आवश्यकता नहीं। इसके तो हम–आप–सभी भुक्तभोगी हैं।

इन विभिन्न सत्रों में हुई चर्चा–परिचर्चा के परिणामस्वरूप जो सवाल ऊपर उभरकर सामने आए वे सभी प्रायः एक–दूसरे से जुडे थे। पहला अहम सवाल तो यही था कि ''प्रयोजनमूलक हिंदी'' क्या है ? इस प्रश्न के सन्दर्भ में श्री सत्यनारायण का विचार था , जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उपयोग में लाई जाने वाली हिंदी ही ''प्रयोजनमूलक हिंदी'' है।

भाषा के दो पक्ष या प्रकार्य होते हैं। एक का संबंध हमारी सौंदर्यपरक अनुभूति का आलंबन होताप है। यह आत्मकेंद्रित और आत्मसुख का उपकरण होता है। दूसरे का संबंध हमारी सामाजिक आवश्यकता और जीवन की उस व्यवस्था से जुडा होता है, जो व्यक्तिपरक होकर समाज सापेक्ष होता है और जिसका संबंध मूलतः हमारी जीविका के साथ रहता है और उसके निमित जो सेवा माध्यम के रूप में प्रयुक्त होता है।

भाषा व्यवहार का यह दूसरा पक्ष ही भाषा का प्रयोजनमूलक संदर्भ है। अतः प्रयोजनमूलक हिंदी का तात्पर्य हिन्दी के उन विविध रूपों से है जो सेवा माध्यम के रूप में सामने आता है। सच तो यह है कि हमारा शिक्षित वर्ग अंग्रेजी भाषा का प्रयोग मूलतः भाषा के इस प्रयोजन पक्ष को लेकर ही करता रहा है।

भारतीय भाषाओं को एक तरफ उसने सौंदर्यानुभूति एवं सांस्कृतिक मूल्यों के संवाहक के रूप में स्वीकार किया, उसे अपनी जातीय परंपरा और विगत ऐश्वर्य के स्मृति चिन्ह के रूप में माना, पर सामाजिक चेतना, लोक व्यवहार, उच्च शिक्षा तंत्र और जीविकोपार्जन के लिए वह अंग्रेजी भाषा को आदर्श के रूप में स्वीकार करता रहा। अब स्थिति यह है कि हिंदी प्रदेशों में हिंदी सांस्कृतिक चेतना का माध्यम है और बल यह दिया जा रहा है कि जीवन की अन्य आवश्यकताओं के लिए भी उनके प्रयोग का विस्तार हो, पर अहिंदी–भाषी प्रांतों में अगर हिंदी का प्रयोग स्वीकार्य होगा तो केवल अपने प्रयोजनमूलक पक्ष में ही अन्यथा सांस्कृतिक चेतना और साहित्यिक परंपरा के लिए उनके पास अपने प्रदेश की भाषाएष हैं ही, जिनमें से कुछ किसी भी प्रकार हिंदी से कम विकसित नहीं हैं।

इस बात को आगे बढ़ाते हुए डॉ0 गोपाल शर्मा ने बताया कि प्रायः हम भाषा और साहित्य को अभिन्न मानने की भूल कर बैठते हैं। यह तथ्य भुला दिया जाता है कि साहित्येतर संदर्भों में भी भाषा का प्रयोग हो सकता है। सच तो यह कि भाषा के इन्हीं सामान्य प्रयोगों के आधार पर आगे चलकर साहित्य की भाषा संवेदनशील और सक्षम होती है। संस्कृत शिक्षा का आधार भी यही था। पाणिनि के अष्टाध्यायी के आधार पर पहले भाषा पर अधिकार प्राप्त कराया जाता था। साहित्य तो आनुषंगिक रूप के बाद में पढ़ाया जाता था।

प्रयोजनमूलक हिंदी को अनुवाद की समस्या से जोड़कर चर्चा को श्री रघुवीर सहाय ने एक नया संदर्भ दिया। उनका कथन था कि हिंदी से प्रयोजनमूलक रूप का विकास विधाओं के उत्पादन और वितरण से जुड़ा हुआ है। भारतवर्ष में प्रौद्योगिकी बड़े पैमाने पर बाहर से लाई गई है। इस प्रौद्योगिकी का स्वभाव ही ऐसा है कि वह अधिकतर केन्द्रित करती है। समाज में भाषा की प्रयोजनमूलकता तभी सिद्ध होगी जब अधिकारों का विकेंद्रीकरण हो। आजकल भाषा संबंधी जो भी योजनाएं बनाई जा रही हैं वे अंग्रेजी भाषा की मात्रा प्रतिछाया हैं।

वस्तुतः अपनी प्रकृति में वह अंग्रेजी ही है, पर अपने ऊपरी आवरण के फलस्वरूप कही जाती है हिंदी। अतः इस रूप में हिंदी के विकास का यत्न अंग्रेजी जानने वालों तक सीमित करने की गहरी साजिश से जुड़ा हुआ है। वैज्ञानिक विषयों के अनुवाद का कार्य तभी सार्थक होगा जब उसका प्रयोग अंग्रेजी जानने वाले एक संक्षिप्त वर्ग तक ही सीमित न रह जाए।

श्री सहाय ने जोरदार शब्दों में यह बात कही की निरी विशेषज्ञता के आधार पर भाषा का कोई ढांचा खडा नहीं किया जा सकता। आधार तो लोग ही होते हैं। जिस भाषा के बोलने वाले बहुत हों परंतु उसके विशेष प्रयोजनों के ग्राहक कम हों, उसमें पहली आवश्यकता असंतुलन को दूर करने की है।

6.2.2 तकनीकी शब्द :

निर्माण की निष्प्रयोजनता को अपने ढंग से स्पष्ट करते हुए उनका यह कहना था कि कर्मियों को जिस प्रयोजन के लिए भाषा चाहिए वह उस भाषा से पूरा हो जाता है जो उन्हें काम के साथ दी जाती है। उनके लिए विशेषज्ञों द्वारा दी गई शब्दावली की जरूरत नहीं। ये विशेषज्ञ तो किसी समय एक ऐसे परिवर्तन की आशा में शब्दावली बना रहे हैं जो शब्दकोश के कारण नहीं आएगा।

उनमेंयह परिवर्तन शब्दकोश निर्माण की कृत्रिम प्रक्रिया के बाहर से आएगा, अतः सारा प्रयत्न अधूरा, तर्कहीन और अवैज्ञानिक है।

प्रो. महाले, श्री सुरेन्द्र बालपुरी, डॉ. कृष्ण गोपाल रस्तोगी, डॉ. उमाशंकर आदि के अपने विचार वयक्त करने के बाद अपने सत्र के अध्यक्ष श्री रमाप्रसन्न ने अपना प्रभावशाली व्यक्त देकर सबको चमत्कृत कर दिया। उन्होंने भाषण में कहा कि 'प्रयोजनमूलक' शब्द पर उन्हें आपत्ति है। 'प्रयोजनमूलक' विशेषण से लगता है जैसे कोई ऐसा भी हिंदी है जिसे 'निष्प्रयोजनपरक' कहा जा सकता है।

इस संदर्भ में 'व्यावहारिक' हिन्दी का प्रयोग अधिक उपयुक्त हो। एक वक्ता के वक्तव्य का उन्होंने जोरदार विरोध किया कि हिंदी के प्रचार-प्रसार का घात शत्रु को नौकरशाही वर्ग हैं। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में यह जानना चाहा-जनता हिंदी है, इसका प्रमाण क्या है?

चाहे नाई, मामूली दुकानदार, छोटे-बड़े व्यापारी भी विज्ञापन और साइनबोर्ड पर हम राह चलते जब निगाह डालते हैं उसे ही लिखा पाते हैं। विवाह और मुंडन ऐसे सांस्कृतिक पर्व पर जो निमंत्रण पत्र भेजते हैं उनकी भाषा अंग्रेजी ही रहती है। दूसरी तरफ जब हम सरकारी और गैर सरकारी संस्थाओं की निविदा और विज्ञप्तियों की भाषा पर दृष्टि डालते हैं तो एक ऐसी हिंदी का उसमें प्रयोग पाते हैं जिसका अर्थ प्राणायाम प्रयत्नों के बावजूद सामान्य जनता नहीं जान पाती।

इनकी भाषा अंग्रेजी के मूल की प्रतिछवि ही बनकर रह गई है। यह सही है कि साहित्य के बिना भाषा का अपना रंग नहीं उत्भरता और शक्ति का अपना स्रोत नहीं फूट पाता। भाषा हमेशा सरल ही हो-ऐसा भी आवश्यक नहीं । पर भाषा अपनी हो, उसको मातृभाषा के रूप में स्वीकार करने वाले उसी में सोचें-समझें, यह अत्यंत आवश्यक है। पर आज के भारतीय समाज के बुद्धिजीवी वर्ग की स्थिति और विडंबना ही यह है कि हम सोचते किसी दूसरी भाषा में हैं और आग्रह रखते हैं अपनी तथाकथित मातृभाषा पर।

प्रो. श्रीवास्तव ने अपने आधार लेख में बताया कि भाषाविज्ञान में आज भाषा को देखने-परखने की दो दृष्टियां है -भाषावैज्ञानिक या विवरणात्मक और समाजपरक या प्रयोजनवादी। प्रयोजनवादी दृष्टि यह मानकर चलती है कि भाषा, समाजसापेक्ष होती है, अतः अपने व्यहृत रूप में वह अनिवार्यतः वैविध्यपूर्ण है। भाषा व्यवहार की इस विविधता को पकड़ने के लिए विद्वारों ने

'रजिस्टर' अथवा 'प्रयोगक्षेत्र' (डोमेन) की संकल्पना की है। ये दोनों संकल्पनाएं इस सामान्य तथ्य का उद्घाटन करती हैं कि वस्तुतः लोग भाषा से क्या काम लेते हैं।

यह एक सामान्य बात है कि भाषा रूपों का गहरा संबंध इस बात से है कि कौन, किससे, किस भाषा में कब और किसलिए बात कर रहा है। इसमें किसी भी उपकरण के बदल जाने से भाषा-भेद का आ जाना स्वाभाविक है। समाज के विभिन्न सदस्य अपने दैनिक व्यवहार में समाज अनुमोदित एक निश्चित परिपाटी के साथ विभिन्न रूपों में भाषा का प्रयोग करते हैं और इस व्यवहार में किंचित भी परिवर्तन आने पर भाषा-प्रयोग 'अस्वाभाविक' और 'कृत्रिम' लगने लगता है।

शैली-भेद हर जीवंत भाषा की नियति है, पर बहु-भाषावादी संचार-व्यवस्था में शैली-भेद का स्थान भाषा-भेद ले लेता है। भारतवर्ष में बहु-भाषावादिता का मूलाधार लोगों द्वारा घर तथा बाहर की जिंदगी में दो भिन्न भाषाओं का प्रयोग किया जाना है। वह भारत की ही नहीं, अपितु सुदूरपूर्व के सभी देशों की विशेषता है कि वे स्थानीय मूल्यों और सामाजिक आचरण के क्षेत्र में घरेूल और बाहरी जीवन के बीच एक स्पष्ट विभाजक रेखा मानते हैं।

अन्य भाषा के रूप में हिंदी के व्यवहार क्षेत्र की चर्चा करते हुए प्रो. श्रीवास्वत ने यह बताया कि उसका प्रयोग न तो घरेलू जीवन क्षेत्र में हो सकता है और न स्थानीय व्यवहार-क्षेत्र में ही। दक्षिण या अन्य अहिंदी क्षेत्रों में हिंदी का प्रयोजनपरक व्यवहार का क्षेत्र तो वही होगा जिसकी प्रकृति अखिल भारतीय हो और जो अपने मूल्य में घरेलू और स्थानीय रंगों से मुक्त हो। अगर वह सावधानी हमने न बरती तो सीधे वहां की घरेूल और क्षेत्रीय भाषाओं की प्रतिद्वंद्विता की उलझन में पड़ जाएगी।

उनका यह भी कहना था कि देश की एकता को खंडित करने वाली भाषिक प्रवृत्तियां इस बात पर आधरित होती हैं कि उस देश की आर्थिक और राजनीतिक प्रगति का स्तर क्या है और किसी भाषा के सदस्य होने के कारण व्यक्ति अपने सामाजिक उत्थान की सीढ़ी पर चढ़ने में कितनी रूकावट पाता है।

हिंदी के प्रयोग के लिए ऐसे अंतर-क्षेत्रीय व्यवहार रूपों (रजिस्टर) को निकालना होगा जो घरेलू और सीानीय सामाजिक मूल्यों से न टकराएं और जो किसी भी व्यक्ति के विकास में बाधक न हों, अहिंदी-भाषी अन्य भाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग एक निश्चित संदर्भ में एक निश्चित

प्रयोजन के लिए करता है। अतः भाषा–शिक्षण में भी उसे हमें 'उपकरणवादी' विधि, मातृभाषा की सत्ता को पहले स्वीकार कर किन्हीं विशेष क्षेत्रों में भाषा–प्रयोग के लिए अन्य भाषा की शिक्षा अनिवार्य मानती है।

हमें हिन्दी, अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के स्थान पर नहीं चाहिए और न हम हिंदी सीखने वालों की सामाजिक अस्मिता को ही हिंदी की प्रभुता से जकड़ना चाहते हैं। हिंदी का प्रयोग अखिल भारतीय स्तर पर संवादिता को कायम करने के लिए है, वह अंतरक्षेत्रीय सामाजिक गत्यात्मकता को एक रूप देने के लिए है।

प्रयोजनमूलक हिंदी के शैक्षिक संदर्भ पर अपने आधार लेख में डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा और डॉ. सुरेश कुमार ने यह संकेत दिया कि प्रयोजनमूलक हिंदी का क्षेत्र बहुत विस्तृत है पर शिक्षा की सुविधा की दृष्टि से उन्हें कुछ वर्गों में विभाजित किया जा सकता है, जैसे बोलचाल की सर्वसामान्य हिन्दी, कार्यालयी हिंदी, तकनीकी हिंदी, वाणिज्यिक हिंदी, उच्च (साहित्यिक) हिंदी आदि। इनके लिए अलग–अलग पाठ्यसामग्री बनाने की आवश्यकता पर उन्होंने बल दिया। हिंदी के ऐतिहासिक विकास के संदर्भ में उन्होंने यह संकेत दिया कि भारतवर्ष में हिंदी फैली ही अपने इस प्रयोजनवादी लक्ष्य को लेकर। अपने प्रसार में वह कभी कर्मिकों का उपकरण बनी, कभी प्रभाव संचार का साधन रही और कभी विदेशों से आए वर्ग और पराजित भारतीय समाज के बीच की मध्यस्थ भाषा बनी। हिंदी भाषा और उनकी बोलियों तथा बोली और उनकी साहित्यिक शैलियों की चर्चा करते हुए उन्होंने यह कहा कि उनके बीच का अंतर बहुत ही सतही है।

प्रयोजनमूलक हिंदी की शिक्षण –सामग्री और शिक्षण –विधि की चर्चा करते हुए उन्होंने यह बताया कि केन्द्रीय हिंदी संस्थान ने इस दिशा में काफी काम किया है। कार्यालयी हिंदी के लिए उसने परिष्कृत पाठ भी बनाए हैं, पर हिंदी के महत्त्व और कार्य की विविधता को देखते हुए यह 'बहुत' ही 'कम' है।

6.2.3 कार्यालयीन भाषा :

कार्यालयीन भाषा के निम्नलिखित पहेलुओं के बारे में जानेंगे :

- पारिभाषिक शब्दों की अधिकता
- प्रचलित ढांचे को बदलने की कठिनाई

- मानसिकता
- संकल्पवाची शब्दों की समस्या
- मानकभाषा के निर्धारण में बाधा
- अशुद्धता
- पारस्परिक दुर्बोधता

1. पारिभाषिक शब्दों की अधिकता :

विभिन्न मंत्रालयों एवं विभागों के कारण कार्यालयीन हिन्दी में पारिभाषिक शब्दों की अधिकता हो गई है। हिन्दी के साथ एक बड़ी समस्या यह भी उत्पन्न हो गई है कि इसकी पारिभाषिक शब्दावली में भी पर्यायवाची शब्दों का प्रचलन हो गया है। इससे शब्दों की संख्या तो बढ़ी ही है, भाषा-प्रयोग में भी द्विविधा की स्थिति उत्पन्न हो जाती है । उदाहरणार्थ :

- संचिका और मिसिल अनुस्मारक और स्मारपत्र
- लेखा और खाता
- प्रशाखा और प्रभाग आदि।

चूंकि शब्द-कोश में एक शब्द के अनेक पर्याय दिए गए हैं- और प्रयोक्ता स्वेच्छया उनमें से कोई शब्द उतार लेते हैं, इसलिए एकरूपता नहीं आ रही है।

2. प्रचलित ढांचे को बदलने की कठिनाई :

सामान्य प्रशासन को लेकर विधि, न्याय बैंक, आदि सभी क्षेत्रों में सैंकड़ों वर्षों से जो पद्धति चली आ रही है, उसको बदलना एक कठिन कार्य अवश्य है। बिना पद्दति को बदले नयी भाषा के प्रयोग में असुविधा होगी । फिर, आलसी होना भी मनुष्य का एक प्रधान लक्षण है। नयी पद्दति अथवा नए शब्दों के प्रयोग के लिए अतिरिक्त अभ्यास का प्रयोजन पड़ता ही है, जिसके लिए लोग सामान्यतया तैयार नहीं रहते। बिल्कुल नई पद्दति चालू करने में समय, चिन्तन और धन का प्रयोजन पड़ता है। अतएव, प्रचलित ढांचे को तुरन्त बदलना सम्भव नहीं होता, उसमें धीरे-धीरे परिवर्तन लाना ही उचित और व्यावहारिक होता है।

3. मानसिकता :

हर क्रिया मूलतः मन से आरम्भ होती है। अतएव जब तक विभिन्न कार्यालयों के कर्मचारी और अधिकारी अंग्रेजी-प्रयोग की अपनी मानसिकता नहीं बदलते, हिन्दी के व्यवहार में वे यदि स्वाभाविक नहीं, तो कृत्रिम
कठिनाई का अनुभव करते ही रहेंगे।

4. संकल्पवाची शब्दों की समस्या :

हिन्दी में संकल्पवाची शब्दों का निर्माण और निर्धारण सम्यक्रूपेण नहीं हो पा रहा है। रिकार्ड के लिए अभिलेख का प्रयोग हो रहा है । यह तो विडम्बना ही है न।

5. मानकभाषा के निर्धारण में बाधा :

मानक हिन्दी किसे मानें, यह अब भी विवाद का विषय है। इसके मूल में भी क्षेत्रीय भावना काम करती है। हिन्दी वाक्यों को शुद्ध रूप में कौन उच्चरित करता है ? यह प्रश्न क्षेत्रीय आधार पर उत्तरित नहीं हो सकता। काशी, प्रयाग, लखनऊ, अलीगढ़, दिल्ली, मेरठ, ग्वालियर, पटना अथवा इसी प्रकार क्षेत्र-विशेष के आधार पर हिन्दी-उच्चारण को पृथक्-पृथक् रूप में आदर्श मानने से 'अराजकता का खतरा' बना ही रहेगा।

6. अशुद्धता :

कामकाजी हिन्दी में - शुद्धतर-अशुद्धता का ध्यान वहां विशेष रूप से रखा ही जाएगा, जहां पारिभाषिक अथवा संकल्पवाची शब्दों का प्रयोग किया जाता है। बैंक में सभी प्रकार की लिखित सामग्री (इंस्ट्रूमेंट) को 'लिखत' कहते हैं । पर उसके लिए 'लिखितक' शब्द शुद्ध और सम्यक् होगा । इसी प्रकार हर विभाग में प्रचलित पारिभाषिक शब्दों की शुद्धता का परीक्षण अपेक्षित है।

7. पारस्परिक दुर्बोधता :

टिप्पणी और आलेखन में शब्दकोष को देखकर कभी-कभी ऐसे प्रयोग किए जाते हैं, जिन्हें अन्य सम्बद्ध व्यक्ति समझ ही नहीं पाते। भाषा तो विचारों के पारस्परिक आदान-प्रदान और समझ की वस्तु है। जब बात ही समझ में न आए तब भाषा-प्रयोग की सार्थकता ही क्या रह जाएगी ?

समाधान :

1. पारिभाषिक शब्दों में पर्यायवाची शब्दों का प्रावधान न हो। पारिभाषिक शब्दों के निश्चित क्षेत्र और सुनिश्चित अर्थ हों। या, वो 'यह' शब्द अथवा 'वह' शब्द जैसा विकल्प न रहे। जैसे, बैंक में लेखा का क्षेत्र और अर्थ पृथक होगा, खाता से।

2. शब्दों के साथ लिंग-निर्देश और प्रयोग-निर्देशन भी रहे।

3. प्रोन्नति के लिए सभी अधिकारियों और कर्मचारियों के लिए हिन्दी की परीक्षा अनिवार्य की जाए।

4. विभागीय प्रशिक्षण के समय हिन्दी भाषा का भी शिक्षण हो।

5. सभी लेखन-सामग्री (स्टेशनरी) हिन्दी में उपलब्ध रहे, कम से कम देवनागरी लिपि में अवश्य लिखित हो।

6. पत्र-व्यवहार और आवेदन पत्र के साथ कार्यालय-ज्ञापन, ज्ञापक, कार्यालय-आदेश, परिपत्र (सर्कुलर-लेटर), सामान्य सरकारी पत्र (ऑर्डिनरी ऑफिस लेटर) आदि के हिन्दी नमूने प्रस्तुत रहें।

7. मूल प्रश्न है अंग्रेजी के स्थान पर हिंदी को प्रतिष्ठित करने का । इसमें सबसे सहायक अनुवाद होगा।

प्रस्तुत सन्दर्भ में अनुवाद का अर्थ है भाषान्तर। इसके लिए निम्नांकित बातें ध्यातव्य हैं :

अ) प्रत्येक कार्यालय के सम्बद्ध विषयों का सम्यक् बोध।

आ) स्रोत भाषा का अच्छा ज्ञान।

इ) लक्ष्यभाषा पर पूर्णाधिकार

सम्प्रति विभिन्न विभागों और कार्यालयों में शब्दकोशों को देखकर अनुवाद किए जाते हैं और फिर अपना कार्य-सम्पादन कर लिया जाता है। शब्दकोषों में पर्यायों को देने की बीमारी है ।

संक्षेप में, कार्यालयीन हिन्दी के सम्बन्ध में निम्नांकित बातों पर विशेष ध्यान देना हैः

क) एक वस्तु के लिए एक ही नियत पारिभाषिक शब्द हो। टिप्पण और प्रारुपण में पारिभाषिक शब्दों के अतिरिक्त अधिकारी एवं सहायक को भाषा-प्रयोग की छूट मिलनी चाहिए। यदि टिप्पण अथवा प्रारुपण तैयार करते समय कोई सटीक हिन्दी-शब्द स्मरण न हो, तो अंग्रेजी शब्द को ही देवनागरी-लिपि में लिख कर देने की स्वतंत्रता रहनी चाहिए।

ख) कामकाजी हिन्दी के लिए हिन्दी–भाषामंडल से शब्दों का चयन हो। यदि सही शब्द का चुनाव न हो रहा हो, तो संस्कृत का आधार ग्रहण कर नए शब्दों का निर्माण कर लिया जाए और वह सबके लिए आवश्यक रूप से मान्य हो जाए। प्रयोग की दृष्टि से शब्द के रूप, लिंग और वाक्य–संघटन बिल्कुल शुद्ध हों।

ग) अंग्रेजी के उन शब्दों को तत्काल हटाने की चिन्ता नहीं होनी चाहिए जो सामान्य लोगों के लिए भी बोधगम्य हैं।

घ) हिन्दी के अपने पदबन्ध और वाक्य–संरचनाएं हैं, साथ ही उसकी अपनी अभिव्यंजनाए एवं भंगिमाएं भी । भाषा–प्रयोग के समय इसका ध्यान रखना होगा।

ड) पदनाम और प्रारूप में क्रमशः परिवर्तन हो।

च) वस्तुवाचक शब्द और व्यापार (क्रिया), संकल्पना आदि के संकेतक शब्द पृथक–पृथक और सुनिश्चित हों। ऐसा होने से हिन्दी के प्रयोग में सम्बद्ध व्यक्तियों को सुविधा होगी और सामान्य लोग भी उसे आसानी से समझ जाएंगे।

छ) सबसे बड़ी बात है हिन्दी में काम करने की आदत डालने की। अभ्यास से कोई काम कठिन नहीं रह जाता। फिर, हिन्दी भाषा तो सरल है। बहुत कम अभ्यास और परिश्रम से इसका सही और शुद्ध प्रयोग किया जा सकता है।

6.2.4 पत्र–लेखन :

भाषा का प्रयोग परस्पर सम्पर्क के लिए मौखिक या लिखित रुप में होता है। रेडियो, टेलीफोन आदि मौखिक रूप के उदाहरण है और निबन्ध, पत्र आदि लिखित रूप के। भिन्न–भिन्न प्रशासनिक, तकनीकी, सामाजिक, व्यावसायिक तथा शैक्षिक संस्थाएं इतनी विस्तारयुक्त तथा जटिल हो चुकी हैं कि इन्हें परस्पर संबद्ध रखने तथा इनके कार्यों को सुचारु रूप से चलाने के लिए पत्र–लेखन की शैली को समझना तथा उसमें कुशलता प्राप्त करना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो गया है। राजनैतिक, व्यावसायिक, सांस्कृतिक तथा शैक्षिक कार्यों के लिए एक ही परिवार या समुदाय के सदस्य एक स्थान से कहीं दूर दूसरे स्थान को जाते हैं उनमें परस्पर सम्पर्क का सुगम माध्यम पत्र–लेखन ही है। पत्र के माध्यम से शब्द ही संदेशों तथा विचारों के वाहक बनते है।

पत्र–लेखन के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण बात यह है कि पत्र–लेखन के द्वारा जो कुछ भी कहना चाहता है उसे पढ़कर ठीक वही आशय लिया जा सके। अतः अच्छे पत्र की विशेषता यह है कि उसे सरल, स्पष्ट, संक्षिप्त तथा विषयसापेक्ष भाषा में लिखा गया हो। यहां इन गुणों का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है :

क) सरलता : 'सरलता' से तात्पर्य ऐसे शब्दों के प्रयोग से है जो व्यावहारिक स्तर पर प्रयुक्त होते हैं तथा जिनके द्वार आपेक्षित अर्थ को सहज ही ग्रहण कर लिया जाता है। वाक्य न तो अनावश्यक रूप से छोटे हों साथ ही वे परस्पर गुंथे हुए हों ताकि अर्थ–ग्रहण में बाधा न आए।

ख) स्पष्टता : 'स्पष्टता' से तात्पर्य यह है कि अपने विचारों को इस ढंग से लिखा जाए कि पढते समय अर्थ स्पष्ट रूप से समझ में आ जाए। सार्थक और उपयुक्त शब्द–योजना एवं उपयुक्त विराम–चिह्नों का ध्यान रखना अर्थ की स्पष्टता के लिए आवश्यक है।

ग) संक्षिप्तता : जो कुछ भी मन में आए वह सभी पत्र में लिख देना कोई अच्छा गुण नहीं है। सम्भव है कि इससे पत्र में विस्तार तथा अस्पष्टता आ जाए। इसलिए पत्र संक्षिप्त और स्पष्ट होना चाहिए। संक्षिप्तता से तात्पर्य यह है कि पत्र में आशय से सम्बन्धित जितने भी वाक्य लिखे जाएं उनमें से कोई भी अनावश्यक न हो। यदि किसी वाक्य या वाक्यांश को हटा देने से अर्थ के स्पष्टीकरण में बाधा आए तो यह समझना चाहिए कि पत्र का वह अंश आवश्यक है।

घ) विषय-सापेक्षता : जिस उद्देश्य से पत्र लिखा जा रहा है उसी का बोध पत्र की सामग्री से होना चाहिए। स्पष्टता और संक्षिप्तता का यदि पूर्ण ध्यान रखा जाए तो विषय की सापेक्षता अवश्य सम्भव हो सकती है।

पत्र-रचना के प्रकार :

मुख्य रूप से पत्र निम्नलिखित प्रकार के हो सकते हैं :

1. **निजी या वैयक्तिक पत्र :** इस श्रेणी के पत्र पारिवारिक या वैयक्तिक समाचारों तथा समस्याओं से संबंधित होते हैं। सामान्यतः परिवार के सदस्यों, संबंधियों, मित्रों तथा परिचितों को इस प्रकार के पत्र लिखे जाते हैं।

2. **व्यावहारिक पत्र :** निमंत्रणपत्र, प्रार्थनापत्र या समाचार पत्र के सम्पादक को लिखे जाने वाले पत्र इस कोटि में आते हैं।

3. **व्यावसायिक पत्र :** व्यापारियों, प्रकाशकों, व्यावसायिक संस्थाओं आदि के मध्य होने वाले पत्रचार की गणना व्यावसायिक पत्रों के अन्तर्गत की जाती है।

4. **कार्यालय पत्र :** कार्यालय या प्रशासन के सम्बन्धित अधिकारियों द्वारा परस्पर लिखे गए पत्र अथवा उनके द्वारा किसी अन्य को लिखे जाने वाले कार्यालयीय पत्रों की सीमा में आते हैं। प्रशासन की जटिल व्यवस्था के कारण विभिन्न मंत्रालयों के अंतर्गत कई विभाग होते हैं। इन विभागों तथा मन्त्रालयों के मध्य लिखित पत्र सामान्य प्रकार के नहीं होते, अपितु अपनी एकाधिक शैलियों के कारण भिन्न-भिन्न नामों से जाने जाते है, जैसे सरकारी पत्र, अर्ध-सरकारी पत्र, ज्ञापन आदि।

पत्र के अंग :

पत्र लिखने के उद्देश्य पर ध्यान से विचार करें तो यह स्पष्ट होगा कि उसका मुख्य अंग वह विषय है जिसे प्राप्तकर्त्ता तक पहुंचाना है। परन्तु यदि किसी कागज पर केवल इसी सामग्री को लिखकर भेज दिया जाए तो यह समझने में कठिनाई हो सकती है कि पत्र कहां से आया है, कब भेजा गया था, क्या उसी के पास भेजा गया है और भेजनेवाले से उसके संबंध किस प्रकार के हैं। अतः पत्र के कलेवर के अतिरिक्त ऐसी सूचनाएं भी उसमें यथास्थान होनी चाहिए जिनसे कि

प्रेषक तथा प्राप्तकर्त्ता के मध्य स्पष्ट सम्पर्क स्थापित हो सके। आजकल किसी भी व्यक्ति या संस्था के पास अनेकानेक पत्र आते रहते हैं और यदि उनमें मुख्य कलेवर के अतिरिक्त अन्य संबंधित सूचनाएं न दी गई हों तो यह पता ही न चल पाएगा कि पत्र किसने लिखा है और उससे किस प्रकार सम्पर्क स्थापित किया जाए। पत्र के मुख्य कलेवर के साथ–साथ जो अन्य अंग अपेक्षित होते हैं, यहां उनका विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है :

1. **पत्र–प्रेषक का नाम तथा दिनांक** : पारिवारिक, व्यावसायिक, सम्पादक के नाम लिखे गए तथा कतिपय सरकारी पत्रों में इन्हें पत्र के दाएं कोने में ऊपर की ओर लिखते हैं । कुछ सरकारी पत्रों, आवेदनों तथ

निमंत्रण–पत्रों में इन्हें पत्र के अन्त में बाईं ओर कोने में दिनांक के नीचे लिखते हैं।

2. **प्राप्तकर्त्ता का पद तथा पता** : पारिवारिक पत्रों तथा निमन्त्रण पत्रों के अतिरिक्त सभी प्रकार के पत्रों में इन्हें संबोधन के ऊपर लिखते हैं। अन्तर्देशीय पत्रों में इन्हीं को पत्र के बाहर निर्धारित स्थान पर भी लिखा जाता है।

3. **संबोधन तथा अभिवादन** : प्रेषिती (जिसके पास पत्र भेजा जा रहा है) के प्रति विशिष्ट सामाजिक संबंध के अनुसार लिखे जाने वाले आदर–सूचक, विनम्रता –बोधक या स्नेह–सूचक शब्द 'संबोधन–शब्द' कहलाते हैं। संबोधन के नीचे वाली पंक्ति में संबोधन से संबंधित अभिवादन के शब्द लिखते हैं । यह पारिवारिक पत्रों की एक ऐसी विशेषता है जिसे अन्य वर्गों के पत्रों में नहीं लिखा जाता। जिन पत्रों में इन्हें लिखते हैं उनमें इन्हें पते तथा दिनांक के नीचे वाली पंक्ति में बाईं ओर लिखते हैं।

4. **पत्र का कलेवर** : अभिवादन के शब्दों के आगे पूर्ण विराम का प्रयोग करके अगली पंक्ति से मूल सामग्री लिखनी शुरू की जाती है। कुछ लोग अभिवादन वाली पंक्ति में आगे मूल सामग्री लिखना शुरू कर देते हैं, किंतु यह पद्धति ठीक नहीं है। मूल सामग्री की समाप्ति पर अगली पंक्ति में कुछ शब्द या वाक्य लिखने की भी परम्परा है। जैसे– सधन्यवाद, धन्यवाद, कष्ट के लिए क्षमा करें, शेष फिर, पत्रेत्तर शीघ्र दीजिएगा आदि।

5. **स्वनिर्देश तथा हस्ताक्षर** : पत्र के कलेवर की समाप्ति पर दाहिनी ओर कोने पर पत्र–लेखक प्राप्तकर्त्ता के साथ अपने संबंध के अनुसार स्वनिर्देश लिखकर (आपका...... तुम्हारा...... आदि)

उसके नीचे हस्ताक्षर करता है। परीक्षा में आपेक्षित गोपनीयता को दृष्टि में रखते हुए परीक्षार्थियों को चाहिए कि वे यहां अपना

नाम न लिखकर क. ख. ग. लिखें।

पत्र–लेखन के उदाहरण :

<u>**निमंत्रण–पत्र**</u>

30, राबर्ट्सगंज,

इलाहाबाद।

श्री/श्रीमती ....

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि जगदीश्वर की अनुकम्पा से मेरे चिरंजीव संजीव का शुभ विवाह दिल्ली निवासी श्री सीताराम जी की सुपुत्री आयुष्मती कुमारी रेखा से मंगलवार 15 सितम्बर 1981 को होना निश्चित हुआ है। आपसे साग्रह अनुरोध है कि इस शुभ अवसर पर सपरिवार आकर वर–वधू को आशीर्वाद प्रदान करें।

दर्शनाभिलाषी

प्रेमप्रकाश।

कार्यक्रम

14 सितम्बर, 1981 (सोमवार) : सायं छह बजे–इलाहाबाद से दिल्ली

के लिए बारात का प्रस्थान।

15 सितम्बर, 1981 (मंगलवार) : प्रातः दिल्ली में ए–81 सरोजिनी नगर में ठहरने की व्यवस्था

रात्रि 10 बजे : विवाह–संस्कार

16 सितम्बर, 1981 (बुधवार) : विदा–प्रातः 7 बजे

व्यावसायिक पत्र

नौकरी पाने के लिए आवेदन-पत्र

सेवा में

प्रिंसिपल महोदय,

दयानन्द डिग्री कॉलेज,

हरिद्वार।

आदरणीय महोदय,

सविनय निवेदन है कि 10 जून 1981 के दैनिक 'नवभारत टाइम्स' में प्रकाशित विज्ञापन के आधार पर मैं आपके कॉलेज में हिन्दी के प्राध्यापक-पद के लिए अपनी सेवाएं प्रस्तुत कर रहा हूं । मेरी योग्यता तथा शिक्षण-अनुभव का विवरण इस प्रकार है :

1. एम.ए.प्रथम श्रेणी 1976 ई. इलाहाबाद विश्वविद्यालय
2. अध्यापन का अनुभव - तीन वर्ष, क्षत्रिय कॉलेज, फेजाबाद।
3. शोधकार्य - पी-एच.डी. के लिए अध्ययन - कार्य चल रहा है।

इस योग्यता तथा अनुभव के अतिरिक्त क्रिकेट, बैडमिंटन, टेनिस तथा कुश्ती में मेरी विशेष रूचि है। कॉलेज में पढ़ते हुए इन खेलों में मैने पदक भी प्राप्त किए थे। मेरी आयु छब्बीस वर्ष है। आशा है आप मुझे अपने कॉलेज मे सेवा करने का अवसर प्रदान कर कृतार्थ करेंगे।

प्रमाण पत्रों की सत्यापित प्रतिलिपियां इस आवेदन-पत्र के साथ संलग्न हैं।

संलग्न :

8 प्रतिलिपियां।

दिनांक : 11 जून, 1981 आपका विश्वासभाजन

पता : 11/5 साहबगंज, लखनऊ धीरेन्द्र कुमार

पुस्तक विक्रेता को पत्र

व्यवस्थापक,

पीताम्बर पब्लिशिंग हाऊस,

करोलबाग,

नई दिल्ली–110005

प्रिय महोदय,

कृपया वी.पी.पी. के द्वारा निम्नलिखित पुस्तकों की एक–एक प्रति भेज दें। विश्वास है, आप इन पर उचित कमीशन अवश्य देंगे।

1. भाषा–कौशल –सुरेशचन्द्र गुप्त।
2. संस्कृति के चार अध्याय– दिनकर।
3. ध्रुवस्वामिनी – जयशंकर प्रसाद
4. गीतांजलि – रवीन्द्रनाथ टेगोर।
5. नेशनल बुक टस्ट द्वारा बच्चों के लिए प्रकाशित पुस्तकों का पूरा सैट।

आशा है आप इन पुस्तकों को यथाशीघ्र भेज देंगे। अपने यहां से प्रकाशित हिन्दी पुस्तकों का सूची–पत्र भी भेजने का कष्ट करें।

सधन्यवाद,

भवदीय

सुभाष जैन

दिनांक : 3 मार्च 1991 जैन बुक डिपो

फरीदाबाद (हरियाणा)

कार्यालयीय पत्र

शिकायती पत्र

सेवा में

विद्युत निरीक्षक,

विद्युत विभाग, सहारनपुर।

महोदय,

सविनय निवेदन है कि हमारे मोहल्ले में लगभग एक सप्ताह से बिजली का संचार ठीक तरह से नहीं हो रहा है। रोशनी कभी कम और कभी ज्यादा होती रहती है । फलस्वरूप अध्ययन में कठिनाई होती है और आंखों पर इसका कुप्रभाव पड़ता है। अतः आपसे अनुरोध है कि इसे ठीक करा दें । जिस खम्बे से मेरे घर में बिजली का कनेक्शन दिया गया है, उसका नम्बर बारह है।

कष्ट के लिए क्षमाप्रार्थी हूं।

दिनांक : 24 अप्रैल, 1981

पता : 141 ए, नारायण नगर, आपका विश्वासभाजन,

सहारनपुर कमल किशोर

<u>पोस्टमास्टर के नाम पत्र</u>

सेवा में

पोस्ट मास्टर,

जनरल पोस्ट ऑफिस, नागपुर।

महोदय,

निवेदन है कि मैं किसी कार्य से लगभग एक माह के लिए नागपुर से बाहर जा रहा हूं। इसलिए अनुरोध है कि मेरी डाक एक माह तक अर्थात् 30 जून 1981 तक निम्नलिखित पते पर पुनः प्रेषित कर दी जाया करें :

हिमांशु अग्रवाल

द्वारा–ग्रीन होटल,

101, अकबर मार्ग, हैदराबाद

भवदीय

दिनांक : 25 मई, 1981 हिमांशु अग्रवाल

वर्तमान पता : 21 बी, तांत्या नगर, नागपुर।

<u>शासकीय पत्र</u>

संख्या - बा.स.11/15/80/2112

स्वास्थ्य मंत्रालय,

भारत सरकार, नई दिल्ली।

8 जुलाई 1980

प्रेषक :

कृष्णबिहारी सिंह

उपसचिव, भारत सरकार।

सेवा में

मुख्य सचिव - आसाम,

सचिवालय, गोहाटी

विषय : बाढ़-पीड़ितों को चिकित्सकीय सहायता।

महोदय,

आपके पत्र-संख्या 9/7क/80 दिनांक 26 जून 1980 के उत्तर में मुझे आपको यह सूचीत करने का निर्देश हुआ है कि स्वास्थ्य मंत्रालय में विदेशों से उपहार-स्वरूप प्राप्त औषधियां प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। बाढ़-पीड़ित क्षेत्रों में संक्रामक रोगों की रोकथाम के लिए ये औषधियां आपकी सरकार के पास शीघ्र ही भेजी जा रही हैं। कृपया अविलम्ब सूचीत करें कि ये औषधियां किन-किन केन्द्रों में कितनी-कितनी मात्रा में भेजी जाएं।

भवदीय,

कृष्णबिहारी सिंह

उपसचिव, भारत सरकार

निम्नलिखित को प्रतिलिपि सूचनार्थ प्रेषित :

1. रैडक्रास संस्था, गोहाटी।
2. गोहाटी मैडिकल कॉलेज।

6.3 सारांश :

- प्रयोजनमूलक हिंदी का तात्पर्य हिन्दी के उन विविध रूपों से है जो सेवा माध्यम के रूप में सामने आता है। सच तो यह है कि हमारा शिक्षित वर्ग अंग्रेजी भाषा का प्रयोग मूलतः भाषा के इस प्रयोजन पक्ष को लेकर ही करता रहा है।
- भाषा के दो पक्ष या प्रकार्य होते हैं। एक का संबंध हमारी सौंदर्यपरक अनुभूति का आलंबन होताप है। यह आत्मकेंद्रित और आत्मसुख का उपकरण होता है। दूसरे का संबंध हमारी सामाजिक आवश्यकता और जीवन की उस व्यवस्था से जुड़ा होता है, जो व्यक्तिपरक होकर समाज सापेक्ष होता है और जिसका संबंध मूलतः हमारी जीविका के साथ रहता है और उसके निमित जो सेवा माध्यम के रूप में प्रयुक्त होता है।
- यह एक सामान्य बात है कि भाषा रूपों का गहरा संबंध इस बात से है कि कौन, किससे, किस भाषा में कब और किसलिए बात कर रहा है। इसमें किसी भी उपकरण के बदल जाने से भाषा-भेद का आ जाना स्वाभाविक है। समाज के विभिन्न सदस्य अपने दैनिक व्यवहार में समाज अनुमोदित एक निश्चित परिपाटी के साथ विभिन्न रूपों में भाषा का प्रयोग करते हैं और इस व्यवहार में किंचित भी परिवर्तन आने पर भाषा-प्रयोग 'अस्वाभाविक' और 'कृत्रिम' लगने लगता है।
- मानक हिन्दी किसे मानें, यह अब भी विवाद का विषय है। इसके मूल में भी क्षेत्रीय भावना काम करती है। हिन्दी वाक्यों को शुद्ध रूप में कौन उच्चरित करता है ? यह प्रश्न क्षेत्रीय आधार पर उत्तरित नहीं हो सकता। काशी, प्रयाग, लखनऊ, अलीगढ़, दिल्ली, मेरठ, ग्वालियर, पटना अथवा इसी प्रकार क्षेत्र-विशेष के आधार पर हिन्दी-उच्चारण को पृथक्-पृथक् रूप में आदर्श मानने से 'अराजकता का खतरा' बना ही रहेगा।
- कामकाजी हिन्दी में - शुद्धतर-अशुद्धता का ध्यान वहां विशेष रूप से रखा ही जाएगा, जहां पारिभाषिक अथवा संकल्पवाची शब्दों का प्रयोग किया जाता है। बैंक में सभी प्रकार की लिखित सामग्री (इंस्ट्रूमेंट) को 'लिखत' कहते हैं । पर उसके लिए 'लिखितक' शब्द शुद्ध और सम्यक् होगा । इसी प्रकार हर विभाग में प्रचलित पारिभाषिक शब्दों की शुद्धता का परीक्षण अपेक्षित है।

6.4 सूचक शब्द :

प्रयोजनमूलक भाषा : भाषा का प्रयोजनमूलक प्रयोग संबंधित व्यावसायिक क्षेत्र व उद्‌देश्यों के कारण विविधताओं से परिपूर्ण होता है। प्रयोजनमूलक भाषा अल्प असावधानी के कारण कृत्रिम या अस्वाभाविक लग सकती है। इस कारण प्रयोजनमूलक या व्यावहारिक भाषा में निश्चित ढांचा और शैली संबंधित नियमों के साथ-साथ सरलता व स्पष्टता का कठोर अनुपालन करना आवश्यक होता है।

तकनीकी शब्द : निर्माण की निष्प्रयोजनता को अपने ढंग से स्पष्ट करते हुए उनका यह कहना था कि कर्मियों को जिस प्रयोजन के लिए भाषा चाहिए वह उस भाषा से पूरा हो जाता है जो उन्हें काम के साथ दी जाती है। उनके लिए विशेषज्ञों द्वारा दी गई शब्दावली की जरूरत नहीं। ये विशेषज्ञ तो किसी समय एक ऐसे परिवर्तन की आशा में शब्दावली बना रहे हैं जो शब्दकोश के कारण नहीं आएगा। उनमेंयह परिवर्तन शब्दकोश निर्माण की कृत्रिम प्रक्रिया के बाहर से आएगा, अतः सारा प्रयत्न अधूरा, तर्कहीन और अवैज्ञानिक है।

पारिभाषिक शब्दों की अधिकता : विभिन्न मंत्रालयों एवं विभागों के कारण कार्यालयीन हिन्दी में पारिभाषिक शब्दों की अधिकता हो गई है। हिन्दी के साथ एक बड़ी समस्या यह भी उत्पन्न हो गई है कि इसकी पारिभाषिक शब्दावली में भी पर्यायवाची शब्दों का प्रचलन हो गया है। इससे शब्दों की संख्या तो बढ़ी ही है, भाषा-प्रयोग में भी द्विविधा की स्थिति उत्पन्न हो जाती है ।

प्रचलित ढांचे को बदलने की कठिनाई : सामान्य प्रशासन को लेकर विधि, न्याय बैंक, आदि सभी क्षेत्रों में सैंकड़ों वर्षों से जो पद्धति चली आ रही है, उसको बदलना एक कठिन कार्य अवश्य है। बिना पद्दति को बदले नयी भाषा के प्रयोग में असुविधा होगी । फिर, आलसी होना भी मनुष्य का एक प्रधान लक्षण है। नयी पद्धति अथवा नए शब्दों के प्रयोग के लिए अतिरिक्त अभ्यास का प्रयोजन पड़ता ही है, जिसके लिए लोग सामान्यतया तैयार नहीं रहते। बिल्कुल नई पद्धति चालू करने में समय, चिन्तन और धन का प्रयोजन पड़ता है।

6.5 स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न :

1 हिन्दी भाषा में तकनीकी शब्दों की उपयोगिता तथा प्रयोग के बारे में विस्तार से लिखें।

2 राजकीय या कार्यालयीन भाषा के विभिन्न पहलुओं के बारे में विस्तार से लिखें।

3 पत्रलेखन में प्रयुक्त भाषा संबंधी प्रयोगों पर टिप्पणी लिखें।

4 प्रयोजनमूलक हिन्दी में सरलता, स्पष्टता, संक्षिप्ता आदि का क्या महत्व है? विस्तार से बताएं।

6.6 संदर्भित पुस्तकें :

- **शुद्ध हिन्दी**, लेखक – डा. हरदेव बाहरी, 2004
- **हिन्दी व्याकरण**, लेखक – पं. कमला प्रसाद गुरू, 2003
- **अच्छी हिन्दी**, लेखक – रामचंद्र वर्मा, 2003
- **हिन्दी का सही प्रयोग**, लेखक – नीलम मान, 2005
- **भाषा शास्त्र तथा हिन्दी भाषा की रूपरेखा**, लेखक – देवेंद्र कुमार शास्त्री, 2003

बीए मास कम्युनिकेशन, प्रथम वर्ष

हिन्दी- बीएमसी 102

खंड-दी **इकाई - 1** **अध्याय-7**

संचार भाषा

(पत्रकारिता, दृश्य-श्रव्य अवयव, विज्ञापन की भाषा)

लेखक : डा. मधुसूदन पाटिल, पूर्व वरिष्ठ व्याख्याता।

एस.आई.एम. शैली में परिवर्तन : डा. मनोज छाबड़ा, हिन्दी प्रवक्ता।

अध्याय संरचना :

इस अध्याय में हम संचार भाषा की चर्चा करेंगे। अध्याय में पत्रकारिता, दृश्य-श्रव्य अवयव, विज्ञापन की भाषा पर विशेष जोर दिया जाएगा। इस अध्याय की संरचना इस प्रकार रहेगीः

7.0 उद्देश्य

7.1 परिचय

7.2 विषय वस्तु की प्रस्तुति

7.2.1 संचार भाषा

7.2.2 पत्रकारिता की भाषा

7.2.3 रेडियो की भाषा

7.2.4 टेलीविजन की भाषा

7.2.5 विज्ञापन की भाषा

7.3 सारांश

7.4 सूचक शब्द

7.5 स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

7.6 संदर्भित पुस्तकें

7.0 उद्देश्यः

इस अध्ययाय के उद्देश्य इस प्रकार हैंः

- संचार भाषा का जायजा लेना
- पत्रकारिता की भाषा के बारे में जानना
- रेडियो की भाषा के बारे में जानना
- टेलीविजन की भाषा का जायजा लेना
- विज्ञापन की भाषा का जायजा लेना

7.1 परिचयः

कहा जाता है कि संचार द्वारा प्रतिभागियों में सूचना, अर्थ तथा भाव आदि सांझे किए जाते हैं। किन्तु संचार घटित होने हेतु प्रतिभागियों में बहुत कुछ सांझा होना आवश्यक है। संचार की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता या कारक भाषा है। यह भी कहा जा सकता है कि भाषा संचार का सबसे प्रमुख साधन है।

जनसंचार संचार का एक औपचारिक व बहुआयामी स्वरूप है। तदनुसार जनसंचार में प्रयुक्त भाषा भी बहुआयामी होती है। जनसंचार की भाषा में सरलता, स्पष्टता, संक्षिप्तता आदि की आवश्यकता होती है। जनसंचार के क्षेत्र में – विशेषकर पत्रकारिका में – भाषा पाठक, दर्शक व श्रोताओं को संदेशों या संचार सामग्रियों के साथ जोडने का काम करती है। इसके साथ–साथ पत्रकारिता में प्रयुक्त भाषा पाठक, दर्शक व श्रोताओं के सूचना व समझ के स्तर में बढ़ोतरी लाने में मददगार साबित होती है।

इस अध्याय में हम पत्रकारिता, दृश्य–श्रव्य अवयव, व विज्ञापन की भाषा की चर्चा करेंगे।

7.2 विषय वस्तु की प्रस्तुति :

इस अध्याय में संचार भाषा की चर्चा करेंगे। विषयों की प्रस्तुति इस प्रकार रहेगीः

- संचार भाषा
- पत्रकारिता की भाषा
- रेडियो की भाषा
- टेलीविजन की भाषा
- विज्ञापन की भाषा

7.2.1 संचार भाषा :

संचार शब्द – 'कम्युनिकेशन' के अनुवाद के रूप में प्रयुक्त है। संचार वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा अपने विचारों, भावों, उद्देश्यों का आदान–प्रदान किया जाता है। संचार प्रक्रिया का उच्चतम एवं आधुनिक स्तर जनसंचार है। भाषा उच्चतम स्तर तक मानवीय प्रेरणात्मक मांगों को अभिव्यक्त करने का शक्तिशाली माध्यम है।

संचार भाषा साहित्यिक भाषा न होकर व्यावहारिक एवं प्रयोजनमूलक होती है। इसका सीधा सम्बन्ध पाठक, श्रोता, दर्शक के वर्ग, शिक्षा, क्षेत्र एवं रुचि के साथ होता है। भाषिक माध्यम मौखिक अथवा लिखित होने के कारण प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष सभी स्थितियों में सम्प्रेषणीय होता है।

7.2.2 पत्रकारिता की भाषा :

पत्रकारिता की भाषामुद्रा लोकहितैषी होती है। वह केवल सूचनात्मक एवं ज्ञानात्मक नहीं संवदेनात्मक एवं संवादात्मक भी होती है। समाज का भाषा–संस्कार पत्रकारिता के महत्त्वपूर्ण प्रयोजनों में से एक है। इसके प्रति भारतेन्दु युगीन पत्रकारों से जागरूकता आरम्भ हुई थी परवर्तीकाल में भाषा की शुद्धता व स्तरीयता के प्रश्न को लेकर इतिहास प्रसिद्ध विवाद जन्मा था महावीर प्रसाद द्विवेदी और बालमुकुन्द गुप्त के मध्य। आज व्यावसायिकता के दौर में पत्रकार भाषा विषयक गुरुतर दायित्व के प्रति लापरवाह हैं।

भाषा के अविकसित रूप और भदेस भंगिमा को संस्कारित करने की ओर प्रवृत्त नहीं हैं। विनोबा भावे ने रेखांकित किया था, "शब्दों की अधोगति समाज की चारित्रिक गिरावट का सूचक है।" बीसवीं सदी की प्रौद्योगिकी की क्रांति का प्रभाव हमारे सामाजिक राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन पर काफी गहरा है।

इलेक्ट्रॉनिकी के चमत्कार कम्पयूटर ने जनसंचार माध्यमों को द्रुततर बना दिया है। मुद्रण, रेडियो, टीवी, टेलिप्रिंटर, फैक्स आदि में कम्पयूटर की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। कम्पयूटर के लिए भाषा की सुनिश्चितता एवं एकरूपता अनिवार्य है। मानवीकरण कम्प्यूटरी भाषा की प्रमुख एवं प्रथम आवश्यकता है।

संचार माध्यमों के साथ-साथ भाषा का भी आधुनिकीकरण होता है। इसी के कारण हिन्दी में नवीन शब्द, अर्थ और शैलियां विकसित हुई हैं ।

इलेक्ट्रॉनिक संचार माध्यमों ने दिक्-काल की सीमाओं को पार कर लिया है। इसकी प्रकृति त्रिदिशीय है-लोकवादी, राष्ट्रीयवादी एवं अन्तराष्ट्रीयवादी। इसके उदाहरण हैं - कचहरी-न्यायालय-कोर्ट, चुनाव-निर्वाचन-इलेक्शन। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में भाषा में उपलब्ध शब्दों को पारिभाषिक कर दिया गया है -ऑल इंडिया रेडियो-आकाशवाणी । नए शब्द निर्माण-दूरभाष, टेलीविजन । आगत शब्दों को यथावत स्वीकार-रेडियो, टेलीविजन। शब्दों का अनुकूलित करना-अकादमी, तकनीक। भिन्न स्रोतीय शब्दों का संकर हो जाना-शेयरधारी, फाइल, चित्र फिल्मोत्सव।

7.2.3 रेडियो की भाषा :

श्रव्य-संचार माध्यम रेडियो में व्याकरणिक शुद्धता के साथ उच्चारणगत शुद्धता पर अधिक बल दिया जाता है। प्रसारण को अधिकाधिक जीवंत एवं प्रभावशाली बनाने के लिए बलाघात, अनुतान, मात्रा, विराम आदि के उचित प्रयोग पर यथेष्ट ध्यान दिया जाता है। रेडियो की भाषा जनसाधारण की भाषा होती है परंतु प्रशाधन, विधि, बैंक, शिक्षा, खेलकूद, स्वास्थ्य, विज्ञान, कृषि, प्रौद्योगिकी आदि से सम्बन्धित प्रसारणों में भारत सरकार के वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा निर्मित हिन्द शब्द यथावत् प्रयुक्त होते हैं। इसे हिन्दी भाषी प्रबुद्ध जन ही समझ सकते हैं। समय सीमा के कारण दीर्घ पदबंध भी भाषा को दुर्बोध बनाते हैं।

रेडियो के विभिन्न कार्यक्रमों में हिन्दी के विभिन्न शैली रूप प्रयुक्त होते हैं। वार्ता का वाचन एकालाप की तरह होता है। समाचार वाचन रूढ़िबद्ध होता है। परिचर्चा में बोलचाल की सामान्य हिन्दी तत्सम, देशज, अंग्रेजी-अरबी फारसी मिश्रित होती है।

7.2.4 टेलीविजन की भाषा :

वर्तमान युग में टेलीविजन सर्वाधिक प्रभावशाली दृश्य-श्रव्य संचार माध्यम है। इसमें हिन्दी की प्रवृत्ति- लोकवादी, राष्ट्रीयवादी एवं अन्तर्राष्ट्रीयवादी मिलती है, जिससे प्रसारित कार्यक्रमों का अधिकाधिक लाभ जनसामान्य को हो सके। टेलीविजन में संदर्भानुसार हिन्दी का मौखिक तथा

वाचिक रूप प्रयुक्त होता हैं जिसमें औपचारिक शैली होती है। धारावाहिकों में बोलचाल का घरेलू रूप प्रयुक्त होता है।

श्रव्य-दृश्य माध्यम की सीमाएं अधूरे वाक्यों और वाक्यांशों में प्रकट होती हैं। इनमें अंग्रेजी शब्दों को न केवल यथावत् स्वीकार किया गया है अपुित अवमिश्रण भी मिलता है – सीधा प्रसारण-लाइव, चैनल, मार्केटिंग, समाचार-बुलेटिन, समाचार एजेंसी, नेटवर्क-कार्यक्रम।

मीडिया ने हिन्दी को अहिन्दी भाषी क्षेत्रों तक पहुंचा दिया है और उसकी लोकप्रियता में अभिवृद्धि हुई है। हिन्दी सिनेमा, संगीत, धारावाहिक आदि क्षेत्रीय भाषााओं से भी अधिक लोकप्रिय हो रहे हैं। दक्षिण में हिन्दी विरोध के बावजूद लोकप्रियता बढ़ी है। आलोचनात्मक दृष्टि से देखें तो धारावाहिकों, विज्ञापनों, फिल्मों में प्रायः हिन्दी का सहज-स्वाभाविक रूप नहीं होता।

'हिंग्लिश' जैसे कृत्रिम नाम पर मिलावट के दर्शन होते हैं। विखंडित और विकृत भाषा रूप को कुतर्कों द्वारा सही सिद्ध करने की कोशिश की जाती है। मीडियाई हिन्दी का स्वरूप हिन्दी की प्रवृत्ति के प्रतिकूल एवं कृत्रिम है। विश्व बाजार का हित अंग्रेजी में है

अतः खिचड़ी भाषा जनता के सामने परोसना जनभाषा को कुसंस्कारित करना है और पूंजीपति वर्ग के अधीन ये माध्यम यह भूमिका बखूबी निभा रहे हैं।

7.2.5 विज्ञापन की भाषा :

विज्ञापनी भाषा सम्पूर्णतः व्यावसायिकता द्वारा निर्देशित-प्रभावित है। यह उपभोक्तावादी मानसिकता के अनुसार अपरम्परित भाषा प्रयोग के कारण ध्यानाकषर्ण का केन्द्र है। इसमें व्याकरणिक नियमों की निबन्धता होती है। इस भाषा में अभिधात्मक, लाक्षणिक एवं व्यंजनात्मक तीनों शक्तियों-शैलियों का यथावसर प्रयोग होता है । इस भाषा में ध्वन्यात्मक उतार-चढ़ाव, पत्रानुकूलता, संगीतमयता व सुमधुरता का सम्न्वय होता है। भाषा को आकर्षक बनाने के लिए अनौपचारिक शैली के साथ व्यावहारिक सरलता अधिक महत्त्वपूर्ण होती है।

विज्ञापनी भाषा की विशेषताएं –

- आकर्षण क्षमता,
- स्मरणीयता,
- पठनीयता,

- प्रभावशीलता,
- विश्वसनीयता,
- विक्रयशीलता,
- नियमनिर्बन्धता,
- परम्परामुक्तता,
- जीवंतता एवं
- प्रयोजनपरकता

दूरसंचार माध्यमों में टेलिग्राम, टेलिप्रिंटर, टेलिफोन, फैक्स आदि आते हैं जिनमें जनसाधारण की उपयोगिता एवं सुविधा की दृष्टि से टेलिफोन एवं टेलिग्राम की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। तार की भाषा लिखित होती है जिसमें 'मितव्ययिता' का ध्यान रखा जाता है लेकिन उस सीमा तक जहां सम्प्रेषण बाधित न हो।

यहां क्रिया पदबन्धों का प्रायः लोप होता है – पिताजी अस्वस्थ, अस्पताल में। अभीष्ट की सूचना इस भाषा का मुख्य उद्देश्य होता है। टेलिफोन की हिन्दी में निकटता, वैयक्तिता एवं आत्मीयता आवश्यक है। यह सामान्य बोलचाल की भाषा होती है लेकिन औपचारिक शिष्टाचारयुक्त और संक्षिप्ततायुक्त होनी आवश्यक है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि संचार माध्यमों की हिन्दी का विषय क्षेत्र बहुआयामी है जिसे बहुभाषिक जनसमाज तक पहुंचाने के लिए सम्प्रेषणीय बनाना आवश्यक है । इस दृष्टि से संचारभाषा हिन्दी में संक्षिप्तता, सुबोधता, सम्प्रेषणीयता आदि विशेषताएं होनी आवश्यक हैं।

शब्दार्थ :

सम्प्रेषण – विचारों का पहुष्चाना, मितव्ययिता – कम से कम भाषा प्रयोग, सुबोधता – सरलता से समझना, निर्बन्धता – मुक्तता।

7.3 सारांश :

- संचार वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा अपने विचारों, भावों, उद्देश्यों का आदान-प्रदान किया जाता है। संचार प्रक्रिया का उच्चतम एवं आधुनिक स्तर जनसंचार है। भाषा उच्चतम स्तर तक मानवीय प्रेरणात्मक मांगों को अभिव्यक्त करने का शक्तिशाली माध्यम है।
- संचार भाषा साहित्यिक भाषा न होकर व्यावहारिक एवं प्रयोजनमूलक होती है। इसका सीधा सम्बन्ध पाठक, श्रोता, दर्शक के वर्ग, शिक्षा, क्षेत्र एवं रुचि के साथ होता है। भाषिक माध्यम मौखिक अथवा लिखित होने के कारण प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सभी स्थितियों में सम्प्रेषणीय होता है।
- पत्रकारिता की भाषा केवल सूचनात्मक एवं ज्ञानात्मक नहीं संवदेनात्मक एवं संवादात्मक भी होती है। समाज का भाषा-संस्कार पत्रकारिता के महत्त्वपूर्ण प्रयोजनों में से एक है।
- श्रव्य-संचार माध्यम रेडियो में व्याकरणिक शुद्धता के साथ उच्चारणगत शुद्धता पर अधिक बल दिया जाता है। रेडियो की भाषा जनसाधारण की भाषा होती है परंतु प्रशाधन, विधि, बैंक, शिक्षा, खेलकूद, स्वास्थ्य, विज्ञान, कृषि, प्रौद्योगिकी आदि से सम्बन्धित प्रसारणों में भारत सरकार के वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा निर्मित हिन्द शब्द यथावत् प्रयुक्त होते हैं।
- रेडियो के विभिन्न कार्यक्रमों में हिन्दी के विभिन्न शैली रूप प्रयुक्त होते हैं। वार्ता का वाचन एकालाप की तरह होता है। समाचार वाचन रूढ़िबद्द होता है। परिचर्चा में बोलचाल की सामान्य हिन्दी तत्सम, देशज, अंग्रेजी-अरबी फारसी मिश्रित होती है।
- वर्तमान युग में टेलीविजन सर्वाधिक प्रभावशाली दृश्य-श्रव्य संचार माध्यम है। इसमें हिन्दी की प्रवृत्ति- लोकवादी, राष्ट्रीयवादी एवं अन्तर्राष्ट्रीयवादी मिलती है, जिससे प्रसारित कार्यक्रमों का अधिकाधिक लाभ जनसामान्य को हो सके। टेलीविजन में संदर्भानुसार हिन्दी का मौखिक तथा वाचिक रूप प्रयुक्त होता हैं जिसमें औपचारिक शैली होती है। धारावाहिकों में बोलचाल का घरेलू रूप प्रयुक्त होता है।
- विज्ञापनी भाषा की विशेषताएं हैं - आकर्षण क्षमता, स्मरणीयता, पठनीयता, प्रभावशीलता, विश्वसनीयता, विक्रयशीलता, नियमनिर्बन्धता, परम्परामुक्तता, जीवंतता एवं प्रयोजनपरकता आदि ।

- o संचार माध्यमों की हिन्दी का विषय क्षेत्र बहुआयामी है जिसे बहुभाषिक जनसमाज तक पहुंचाने के लिए सम्प्रेषणीय बनाना आवश्यक है । इस दृष्टि से संचारभाषा हिन्दी में संक्षिप्तता, सुबोधता, सम्प्रेषणीयता आदि विशेषताएं होनी आवश्यक हैं।

7.4 सूचक शब्द :

संचार भाषा : संचार भाषा साहित्यिक भाषा न होकर व्यावहारिक एवं प्रयोजनमूलक होती है। इसका सीधा सम्बन्ध पाठक, श्रोता, दर्शक के वर्ग, शिक्षा, क्षेत्र एवं रुचि के साथ होता है। भाषिक माध्यम मौखिक अथवा लिखित होने के कारण प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सभी स्थितियों में सम्प्रेषणीय होता है।

पत्रकारिता की भाषा : पत्रकारिता की भाषा केवल सूचनात्मक एवं ज्ञानात्मक नहीं संवदेनात्मक एवं संवादात्मक भी होती है।

रेडियो की भाषा : श्रव्य-संचार माध्यम रेडियो में व्याकरणिक शुद्धता के साथ उच्चारणगत शुद्धता पर अधिक बल दिया जाता है। प्रसारण को अधिकाधिक जीवंत एवं प्रभावशाली बनाने के लिए बलाघात, अनुतान, मात्रा, विराम आदि के उचित प्रयोग पर यथेष्ट ध्यान दिया जाता है। रेडियो की भाषा जनसाधारण की भाषा होती हैं।

टेलीविजन की भाषा : वर्तमान युग में टेलीविजन सर्वाधिक प्रभावशाली दृश्य-श्रव्य संचार माध्यम है। इसमें हिन्दी की प्रवृत्ति- लोकवादी, राष्ट्रीयवादी एवं अन्तर्राष्टन्नीयवादी मिलती है, जिससे प्रसारित कार्यक्रमों का अधिकाधिक लाभ जनसामान्य को हो सके। टेलीविजन में संदर्भानुसार हिन्दी का मौखिक तथा वाचिक रूप प्रयुक्त होता हैं जिसमें औपचारिक शैली होती है।

विज्ञापनी भाषा की विशेषताएं : विज्ञापनी भाषा की विशेषताएं हैं - आकर्षण क्षमता, स्मरणीयता, पठनीयता, प्रभावशीलता, विश्वसनीयता, विक्रयशीलता, नियमनिर्बन्धता, परम्परामुक्तता, जीवंतता एवं प्रयोजनपरकता आदि ।

7.5 स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न :

1. संचार भाषा की विशेषताएं स्पष्ट करें।
2. वर्तमान पत्रकारिता की भाषा विषयक विशेषताएं स्पष्ट करें।

3. आधुनिक विज्ञापन में भाषा-प्रयोग का वैशिष्ट्य स्पष्ट करें।
4. आम संचार की भाषा व पत्रकारिता में प्रयुक्त भाषा में क्या अंतर है? विस्तार से लिखें।
5. समाचार पत्र व रेडियो में प्रयुक्त भाषा में समानताएं व अंतर बताएं।
6. रेडियो व टेलीविजन में प्रयुक्त भाषा में समानताएं व अंतर बताएं।

7.6 संदर्भित पुस्तकें :

- **शुद्ध हिन्दी**, लेखक - डा. हरदेव बाहरी, 2004
- **हिन्दी व्याकरण**, लेखक - पं. कमला प्रसाद गुरू, 2003
- **अच्छी हिन्दी**, लेखक - रामचंद्र वर्मा, 2003
- **हिन्दी का सही प्रयोग**, लेखक - नीलम मान, 2005
- **भाषा शास्त्र तथा हिन्दी भाषा की रूपरेखा**, लेखक - देवेंद्र कुमार शास्त्री, 2003

बीए मास कम्युनिकेशन, प्रथम वर्ष

हिन्दी– बीएमसी 102

खंड–दी **इकाई – 2** **अध्याय–8**

भाषा, बोली और प्रादेशिक बोलियां

लेखक : डा. मधुसूदन पाटिल, पूर्व वरिष्ठ व्याख्याता।

एस.आई.एम. शैली में परिवर्तन : डा. मनोज छाबड़ा, हिन्दी प्रवक्ता ।

अध्याय संरचनाः

इस अध्याय में हम भाषा और बोली, प्रादेशिक बोलियों का परिचय प्राप्त करेंगे। भाषा और बोली, प्रादेशिक बोलियों का वर्गीकरण पर विशेष जोर दिया जाएगा। इस अध्याय की संरचना इस प्रकार रहेगी :

8.0 उद्देश्य

8.1 परिचय

8.2 विषय वस्तु की प्रस्तुति

8.2.1 आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएं

8.2.2 आधुनिक भारतीय आयभाषाओं का वर्गीकरण

8.2.3 हिन्दी की उपभाषाएं और उनकी बोलियां

8.3 सारांश

8.4 सूचक शब्द

8.5 स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

8.6 संदर्भित पुस्तकें

8.0 उद्देश्यः

इस अध्ययाय के उद्देश्य इस प्रकार हैंः

- आधुनिक भारतीय आयभाषाओं (1000 ई. से बीसवीं सदी) का जायजा लेना

o आधुनिक भारतीय आयभाषाओं का वर्गीकरण के बारे में जानना

o हिन्दी की उपभाषाएं और उनकी बोलियां के बारे में जानना

8.1 परिचय :

Hkkjro”kZ esa 22 ekU;rk izkIr Hkk”kk,a gSaA bu Hkk”kkvksa dks jktHkk”kk dk ntkZ fn;k x;k gSA Hkk”kkvksa ds vykok Hkkjr esa lSdM+ksa cksfy;ka rFkk gtkjksa izknsf’kd cksfy;ka o micksfy;ka gSaA ns’k ds vyx&vyx izkarksa esa fofHkUu HkkSxksfyd o vU; lewgksa esa bu Hkk”kkvksa rFkk cksfy;ksa dh ‘kq:vkr gqbZA nf{k.k Hkkjr esa nzkfoM+ lewgksa us pkj Hkk”kkvksa dh ‘kq:vkr dh FkhA mRrj&e/; rFkk iwoZ Hkkjr ds fofHkUu izkarksa esa yxHkx ,d ntZu Hkk”kk,a ‘kq: gqbZaA iatkc esa xq:eq[kh ;k iatkch Hkk”kk dk izkjaHk yxHkx ikap lkS o”kZ igys gqvkA

इन प्रमुख भाषाओं के अतिरिक्त देश के भिन्न-भिन्न प्रांतों में सैकड़ों बोलियां तथा हजारों उपबोलियां प्रचलित हैं। इन भाषाओं व बोलियों का विकास सदियों पहले प्रचलित अपभ्रंश शैलियां तथा जनभाषाओं के मिलने से हुआ। इस अध्याय में हम भारत में प्रचलित प्रमुख भाषाओं के साथ-साथ बोलियों, प्रादेशिक बोलियों तथा उपबोलियों के बारे में चर्चा करेंगे।

8.2 विषय वस्तु की प्रस्तुति :

इस अध्याय में हम भारत में भाषाओं के साथ-साथ प्रचलित प्रमुख बोलियों, तथा प्रादेशिक बोलियों के बारे में चर्चा करेंगे। विषयों की प्रस्तुति इस प्रकार रहेगीः

o आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएं (1000 ई. से बीसवीं सदी)

o आधुनिक भारतीय आयभाषाओं का वर्गीकरण

o हिन्दी की उपभाषाएं और उनकी बोलियों

8.2.1 आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएं (1000 ई. से बीसवीं सदी) :

सन् 1000 ई. के आसपास पूरे उत्तरपूर्व और पश्चिम भारत में अपभ्रंश भाषा विकसित हो चुकी थी यह अपभ्रंश स्थानीय बोलियों के सम्पर्क में आई जिसके कारण उसके विभिन्न रूप हुए। ग्यारहवीं शताब्दी के आरम्भ में अपभ्रंश से जनभाषाओं के मिलने से आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का विकास हुआ। तेरह आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएं प्रमुख मानी जाती हैं जिनका विकास विभिन्न अपभ्रंशों से हुआ।

1. **असमी** : मागध अपभ्रंश के पूर्वोत्तरी रूप से विकसित सम प्रदेश की भाषा है। इस पर बंगला तिब्बती, बर्मी, नगा आदि भाषाओं का भी प्रभाव पड़ा है। हेम सरस्वती द्वारा तेरहवीं सदी में रचित 'प्रहलाद चरित्र' असमिया काव्य की प्राचीनतम रचना है। माधवदेश शंकरदेव, पीताम्बर प्रख्यात प्राचीन साहित्यकार हैं। इसकी लिपि प्राचीन नागरी के पूर्वी रूप से विकसित है। जिस पर बंगला का अधिक प्रभाव है।

2. **उड़िया** : मागधी अपभ्रंश के दक्षिण रूप से विकसित उड़िया प्रदेश की भाषा है। बीम्स के अनुसार उड़िया बंगा से पूर्व अस्तित्त्व में आई थी । उड़िया लिपि का विकास ब्राह्मी की उत्तरी शैली से माना जाता है। इसके वर्ण प्रायः वर्तुलकार होते हैं। द्रविड़ प्रभाव के कारण कठिन हो गई है इसमें तेलुगु और मराठी के पर्याप्त शब्द मिलते हैं।

लुइपा, बलरामदास, सारलादास उड़िया के प्रसिद्ध साहित्यकार हैं। आधुनिक युग में भी इसमें पर्याप्त रचनाकार रचनारत हैं। ओड्र जाति की भाषा होने के कारण इसे ' ओड्री' भी कहते हैं। उत्कल जाति की भाषा होने के कारण इसे 'उत्कली' भी कहा जाता है ।

3. **बंगला** : मागधी अपभ्रंश के पूर्वी रूप से विकसित बंगला प्रदेश की भाषा है। इसकी साहित्यिक भाषा को 'साधु भाषा' कहते हैं। इसमें संस्कृत शब्दों की अधिकता है। इसके लिखित और उच्चरित रूप में अंतर होता है। लिखा छवि, रवि जाता है परंतु बोला छोबी, रोबी, जाता है । अधिकतर अ, आ को ओ, व को ब बोला जाता है। यह भाषा साहित्यिक दृष्टि से अयंत समृद्ध है।

चंडीदास, कृत्तिवास (रामायण) रवीन्द्रनाथ ठाकुर, बंकिमचन्द्र, शरतचन्द्र इसके श्रेष्ठ साहित्यकार रहे हैं। बंगला की लिपि को प्राचीन नागरी के कुटिल रूप से विकसित माना जाता है।

बंगला का प्रामाणिक भाषावैज्ञानिक अध्ययन डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी ने ‘बंगाली का उद्भव और विकास’ ग्रंथ में किया है।

4. बिहारी : वस्तुतः बिहारी भाषा नहीं अपितु बिहार प्रदेश में बोली जाने वाली बोलियों के समूह का नाम है। इसमें भोजपुरी, मैथिली, मगही बोलियां प्रमुख हैं। यह मागध अपभ्रंश के पश्चिमी रूप से विकसित है। इसका क्षेत्र बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश है। बिहारी की लिपि नागरी है।

भोजपुरी बिहार के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग में बोली जाती है। राहुल सांकृत्यायन ने भोजपुरी की रचनाएं की हैं। मागधी में केवल लोक साहित्य उपलब्ध होता है। मैथिली में विरचित विद्यापति की कृतियां हिन्दी साहित्य की विशिष्ट उपलब्धि मानी जाती हैं। आधुनिक युग में नागार्जुन इसके श्रेष्ठ साहित्यकार रहे हैं।

5. पूर्वी हिन्दी : अर्धमागधी अपभ्रंश से विकसित पूर्वी हिन्दी क्षेत्र के पूर्वी भाग की भाषा है । इसमें अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी बोलियां प्रमुख हैं। अवधी अवध प्रदेश की प्रमुख व प्रचलित बोली है। इसमें तुलसीदास की ‘‘रामचरितमानस’’ और जायसी की ‘पदमावत्’ जैसी श्रेष्ठ कृतियां हैं। बघेलखण्ड में प्रचलित बघेली पर अवधी का बहुत प्रभाव है। छत्तीसगढ़ी में लोक साहित्य की बहुलता है। पूर्वी हिन्दी की लिपि देवनागरी है। डा. बाबूराम सक्सेना ने अवधी का प्रामाणिक भाषावैज्ञानिक अध्ययन ‘अवधी का विकास’ में किया है

6. पश्चिमी हिन्दी : यह शौरसेनी अपभ्रंश से विकसित पश्चिमी हिन्दी क्षेत्र की भाषा है। इसमें मुख्य रूप से पांच बोलियां हैं– खड़ी बोली, ब्रज, बांगरू, कन्नौजी और बुन्देली । खड़ी बोली (कौरवी) अपने साहित्यिक नाम हिन्दी से प्रसिद्ध है, भारत की राजभाषा है। इसका साहित्य निरन्तर प्रगति की ओर है। इसका अरबी–फारसी शब्दों से युक्त रूप उर्दू है। दोनों का मिला–जुला रूप हिन्दुस्तानी कहलाता है। ब्रजभाषा अपनी कोमलता के कारण सैंकड़ों वर्ष कविता की भाषा रही।

सूर, बिहारी, घनानन्द, रखसान,रहीम आदि इसके श्रेष्ठ कवि रहे। बांगरू या हरियाणवी पर राजस्थानी और पंजाबी का प्रभाव है। अवधी और ब्रज के मध्य कन्नौजी का क्षेत्र है। चिंतामणि, मतिराम, भूषण इसी क्षेत्र के कवि हैं। बुन्देली में लोकसाहित्य है। पश्चिमी हिन्दी की लिपि देवनागरी है।

7. पहाड़ी : नये मतानुसार शौरसेनी अपभ्रंश से विकसित (पुराना मत खस) पहाड़ी भाषा हिमाचल प्रदेश के भद्रवाह के उत्तर पश्चिम से लेकर नेपाल के पूर्वी भाग तक की भाषा है। इसके पश्चिमी, मध्य और पूर्वी तीन रूप हैं। पश्चिमी शिमला के निकटवर्ती भाग की भाषा है। मध्य पहाड़ों की कुमांउनी और गढ़वाली कुमाउं गढ़वाल में प्रचलित है। पूर्वी पहाड़ी नेपाली नेपाल की राजभाषा है। पहाड़ी में लोकसाहित्य अधिक है। इसकी प्रमुख लिपि देवनागरी है।

8. राजस्थानी : शौरसेनी अपभ्रंश के नागर पूर्वोत्तर रूप से विकसित राजस्थानी प्रदेश की भाषा है । इसके अन्तर्गत जयपुरी, मारवाड़ी, मालवी और मेवाती बोलियां प्रमुख हैं। जयपुरी मे दादू का साहित्य उपलब्ध है। मारवाड़ी में रासो साहित्य मिलता है। मालवी में चन्द्रसखी की रचनाएं प्रसिद्ध हैं। मेवाती पर हरियाणा का प्रभाव लक्षित होता है। राजस्थानी की लिपि नागरी है। व्यक्तिगत व्यवहार में महाजनी लिपि का प्रयोग भी किया जाता है। पुरानी मारवाड़ी ही डिंगल है।

9. गुजराती : शौरसेनी अपभ्रंश के नागर के पश्चिमी रूप से इसका विकास हुआ है। यह गुजरात, काठियावाड़ और कच्छ में बोली जाती है। इसमें तेरहवीं सदी में साहित्य रचना होने लगी थी । इसके साहित्यकारों में विनयचंद्र सूरी, नरसी मेहता के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

डा. धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार 'गुजराती पहले देवनागरी लिपि में लिखी जाती थी किंतु अब गुजराती में कैथी से मिलते जुलते देवनागरी के बिगड़े रूप का प्रचार हो गया है, यही गुजराती लिपि कहलाती है। यहां पारसी, अरबी, तुर्क आदि के बसने के कारण विदेशी शब्दों की अधिकता है ।

10. मराठी : महाराष्ट्री अपभ्रंश से विकसित यह महाराष्ट प्रदेश की भाषा है। मराठी में संस्कृत शब्दों की अधिकता है। भौगोलिक समीपता के कारण इसे द्रविड़ परिवार की भाषाओं ने प्रभावित किया है। इसकी चार बोलियां मुख्य हैं। देसी या दक्षिणी, कोंकणी, नागपुरी, बरारी। पूना की भाषा साहित्यिक है।

मराठी के प्राचीन संतों-ज्ञानेश्वर, एकनाथ, नामदेव, तुकाराम, रामदास का साहित्य अत्यंत समृद्ध है। आधुनिक साहित्य की दृष्टि से भी यह समृद्ध भाषा है। कोंकणी आठवीं अनुसूची की मान्यता प्राप्त भाषाओं में सम्मिलित हैं। इसकी लिपि देवनागरी ही है।

11. पंजाबी : पैशाची अपभ्रंश से विकसित यह भाषा पंजाब प्रदेश के पूर्वी भाग की भाषा है। इसे सिक्खी, खालसी या गुरमुखी कहते हैं। इसके पंजाबी व डोगरी दो रूप हैं। डोगरी जम्मू में बोली

जाती है। पंजाबी का साहित्य बारहवीं सदी से ही उपलब्ध है जिसमें प्राचीन कवि गुरु नानक, गुरु अर्जुनदेव का साहित्य समृद्ध है। आधुनिक साहित्यकारों में अमृता प्रीतम, भाई वीरसिंह, महीपसिंह आदि प्रसिद्ध हैं। इसकी लिपि 'गुरमुखी' है। पाकिस्तान में यह फारसी में लिख जाती है । डोगरी टाकर लिपि में लिखी जाती है।

12. **लहंदा** : लहंदा का अर्थ ही पश्चिमी है। पैशाची अपभ्रंश से विकसित यह पंजाब प्रदेश के पश्चिमी भाग की भाषा है । इसे जटकी, दिलाही या हिन्दीकी भी कहा जाता है। यह भी साहित्यिक भाषा नहीं है अपितु इन्हीं बोलियों का सामूहिक नाम है। इसमें 'जन्मासखी' नामक ग्रंथ उपलब्ध होता है। इसका शब्द भण्डार और व्याकरण पंजाबी से भिन्न है। इसकी लिपि लण्डा है। पाकिस्तान में इसके लिए फारसी लिपि का प्रयोग होता है। इसमें सिक्खों का वार्ता साहित्य व लोकगीत आदि भी मिलते हैं।

13. **सिन्धी** : ब्राचड़ अपभ्रंश से विकसित यह प्राचीन सिंध प्रदेश की भाषा है। विभाजन के बाद इसके बोलने वाले पंजाब, दिल्ली, बम्बई में बस गये हैं। इसकी पांच बोलियां हैं। बिचौली, सिरैकी, लाड़ी, थरेली, कच्छी बिचौली ही साहित्यिक भाषा बनी। चौदहवीं सदी से सिंधी में साहित्य रचना मिलती है। प्राचीन कवियों में अब्दुल करीम, शाह लतीफ, शाह अमीन के नाम उल्लेखनीय हैं।

यह फारसी और गुरुमुखी लिपि में लिखी जाती है। इसमें अरबी-फारसी के शब्दों का अधिक प्रभाव है। सिंधी की लिपि भी लण्डा ही थी, जिसे गुरु अंगददेव ने गुरुमुखी में विकसित कर दिया। सिंधी अब आठवीं अनुसूची की मान्यता प्राप्त अठारह भाषाओं में से एक है।

8.2.2 आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का वर्गीकरण :

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का वर्गीकरण करने वाले भाषा वैज्ञानिकों में हार्नले, जॉर्ज ग्रियसर्न, डा. सुनीतिकुमार चटर्जी और धीरेन्द्र वर्मा हैं जिन्होंने वर्गीकरण के विभिन्न रूपों में विचार किया है । इनमें जार्ज ग्रियसर्न तथा डा. सुनीतिकुमार चटर्जी का वर्गीकरण ही उल्लेखनीय है व मान्य है। हिन्दी के विद्वानों में धीरेन्द्र वर्मा डा. भोलानाथ तिवारी, डा. हरदेव बाहरी, पं. सीताराम चतुर्वेदी आदि प्रमुख हैं।

हार्नले ने भारत में आर्यों के दो बार आगमन को लेकर आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का वर्गीकरण किया । उन्होने भारतीय आर्यभाषाओं का चार वर्गों में वर्गीकरण किया। उनके अनुसार आर्यों की एक शाखा ईरान काबुल होते हुए पंजाब में बसी। वे बहिरंग वर्ग के कहलाए। दूसरी बार आर्य गिलगित कश्मीर होकर आये तो वे अंतरंग वर्ग के कहलाए। हार्नले के चार वर्ग निम्नलिखित हैं :

1. पूर्वी गौडियन - पूर्वी हिन्दी, बिहारी, बंगला, असमी, उड़िया।
2. पश्चिमी गौडियन - पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती, सिंधी, पंजाबी।
3. उत्तरी गौडियन - गढ़वाली, नेपाली, पहाड़ी।
4. दक्षिणी गौडियन - मराठी।

जॉर्ज ग्रियर्सन ने हार्नले के अंतरंग- बहिरंग वर्गीकरण को आधार मानकर अपना वर्गीकरण प्रस्तुत किया। उन्होंने पहला वर्गीकरण सन् 1920 में प्रस्तुत किया। इसके तीन वर्ग हैं।

1. बाहरी उपशाखा
2. मध्यवर्ती उपशाखा
3. भीतरी उपशाखा

बाहरी उपशाखा :

क- पश्चिमोत्तरी समुदाय : लहंदा, सिंधी।

ख- दक्षिणी समुदाय : मराठी।

ग - पूर्वी समुदाय : उड़िया, बंगाली, असमी, बिहारी।

मध्यवर्ती उपशाखा :

मध्यवर्ती समुदाय - पूर्वी हिन्दी।

3. भीतरी उपशाखा :

क. केन्द्रीय समुदाय : पश्चिमी हिदी, पंजाबी, गुजराती, भीली, खानदेशी।

ख. पहाड़ी समुदाय : पूर्वी, मध्य, पश्चिमी।

जॉर्ज ग्रियर्सन का दूसरा वर्गीकरण 1931 में प्रस्तुत हुआ।

क. मध्यदेशी

ख. अन्तर्वती

ग. बहिरंग

मध्यदेशी :

पश्चिमी हिन्दी।

अन्तर्वती :

1. पश्चिमी हिन्दी से घनिष्ठतावाली : पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती, पहाड़ी

2. बहिरंग से सम्बद्ध : पूर्वी हिन्दी ।

बहिरंग :

1. पश्चिमोत्तरी – लहंदा, सिंधी ।

2. दक्षिणी –मराठी ।

3. पूर्वी – बिहारी, बंगला, उड़िया, असमी ।

जॉर्ज ग्रियर्सन का वर्गीकरण इतिहास, ध्वनि रूप या व्याकरण और शब्द समूह पर आधारित है डॉ सुनीतिकुमार चटर्जी ने इन तीनों की आलोचना की और अपना वर्गीकरण किया। उन्होंने भौगोलिक दृष्टि से बारह आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं को पांच वर्गों में रखा–

क. उदीच्य (उत्तरी वर्ग) –सिंधी, लहंदा, पंजाबी ।

ख. प्रतीच्य (पश्चिमी वर्ग)– गुजराती, राजस्थानी ।

ग. मध्यदेशीय – पश्चिमी हिन्दी ।

घ. प्राच्य – पूर्वी हिन्दी, बिहारी, बंगला, उड़िया, असमी।

ड. दक्षिणी– मराठी।

भारत के हृदय देश मध्यदेश को मानकर उसकी चारों दिशाओं को दृष्टि में रखकर डॉ. चटर्जी ने वर्गीकरण कर दिया। यह ग्रियसर्न के वर्गीकरण का ही थोड़ा परिवर्तित रूप है। इसका कोई मौलिक और ठोस आधार चटर्जी ने अपने ग्रंथ में नहीं दिया। डॉ. चटर्जी पहाड़ी को राजस्थानी का रूपांतर मानते हैं। डॉ. धीरेन्द्रवर्मा ने हिन्दी के प्रमुख रूपों को मध्यदेशीय मानते हुए अपना वर्गीकरण प्रस्तुत किया –

क. उदीच्य – सिंधी, लहंदा, पंजाबी।

ख. प्रतीच्य – गुजराती।

ग. मध्यदेशीय– हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, बिहारी।

घ. प्राच्य – बंगला, उड़िया, असमी।

ड. दक्षिणात्य – मराठी।

पं. सीताराम चतुर्वेदी ने सम्बधसूचक परसर्गों के आधार पर निम्नलिखित वर्गीकरण प्रस्तुत किया, जैसे–

का– हिन्दी, पहाड़ी, जयपुरी, भोजपुरी।

दा– पंजाबी, लहंदा।

जो– सिन्धी, कच्छी।

नो– गुजराती।

अर– बंगाली, उड़िया, असमी।

डा. हरदेव बाहरी ने हिन्दी और हिन्दीतर वर्ग बनाए हैं –

क. हिन्दी वर्ग – पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, राजस्थानी, बिहारी, पहाड़ी।

उन्होंने हिन्दीतर वर्ग में निम्नलिखित उपवर्ग प्रस्तुत किए –

क. पूर्वी उपवर्ग – बंगला, असमी, उड़िया।

ख. पश्चिमी उपवर्ग – गुजराती, पंजाबी, सिंधी।

ग. उत्तरी उपवर्ग – नेपाली।

घ. दक्षिणी उपवर्ग – मराठी, सिंहली।

वस्तुतः वर्गीकरण का आशय भाषाओं की मूलभूत विशेषताएं स्पष्ट करने से है। डा. भोलानाथ तिवारी का विचार है कि उपर्युक्त वर्गीकरण इस दृष्टि से पर्याप्त नहीं है। प्रवृत्तियों और ध्वनि या व्याकरण सम्बन्धी विषमताएं बहुत हैं । परिणामतः डा. भोलानाथ तिवारी द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण अपभ्रंशों से उत्पत्ति के आधार पर है और अधिक सरल प्रतीत होता है।

क. मध्य – शौरसैनी – पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती।

ख. पूर्वीय – मागधी – बिहारी, बंगला, असमी, उड़िया।

ग. मध्यपूर्वीय – अर्धमागधी, पूर्वी हिन्दी।

घ. दक्षिणी – महाराष्ट्री, मराठी।

ड. पश्चिमोत्तरी – ब्राचड़, पैशाची, सिंधी, लहंदा, पंजाबी।

8.2.3 हिन्दी की उपभाषाएं और उनकी बोलियां :

पूर्वी तथा पश्चिमी हिन्दी की प्रमुख बोलियां –

भौगोलिक दृष्टि से हिन्दी का क्षेत्र उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में नर्मदा तक है जिसे मध्यदेश कहा गया था। जॉर्ज ग्रियसर्न ने इस समस्त भूभाग को पश्चिमी पूर्वी क्षेत्र में विभाजित किया है। भाषावैज्ञानिक दृष्टि से हिन्दी प्रदेश की बोलियों को पश्चिमी हिन्दी और पूर्वी हिन्दी इन दो वर्गों में रखा गया है। यह वर्गीकरण जॉर्ज ग्रियर्सन का है। इसकी पुष्टि डा. धीरेन्द्र वर्मा और डा. उदयनारायण तिवारी ने की है।

पश्चिमी और पूर्वी हिदी में तात्विक भेद है। पश्चिमी हिन्दी शौरसेनी अपभ्रंश से उद्‌भूत है और पूर्वी हिन्दी, अर्धमागधी से । पश्चिमी हिन्दी के अन्तर्गत आने वाली प्रमुख बोलियां है – खड़ी बोली, हरियाणी, ब्रज, कनौजी, बुन्देली, दखनी। इसके क्षेत्र हैं – हरियाणा, दिल्ली, पश्चिमी उत्तर प्रदेश (कानपुर तक) मध्यप्रदेश के ग्वालियर, भोपाल और बुन्देलखण्ड, दक्षिण भारत में हैदराबाद। पूर्वी हिन्दी के अन्तर्गत तीन प्रमुख बोलियां हैं – अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी। इसमें है– अवधी उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिले में, मध्य प्रदेश का बघेलखण्ड और छत्तीसगढ़।

अ. पश्चिमी हिन्दी की प्रमुख बोलियां –

1. खड़ी बोली (कौरवी, हिन्दुस्तानी)– वर्तमान साहित्यिक और सामान्य हिन्दी और उर्दू दोनों इसी खड़ी बोली पर आधारित हैं। खड़ी बोली के विकास का आधार शौरसेनी अपभ्रंश है जिसने राजनीकि प्रभावों के कारण जनभाषा खड़ी बोली का रूप ग्रहण कर लिया था। इसमे अरबी–फारसी के शब्दों का अनायास समावेश हो गया था। खड़ी बोली गंगा और यमुना के उत्तरी देआब अर्थात् देहरादून के मैदानी भाग, सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, मेरठ, बुलंदशहर से लेकर पश्चिम में यमुना नदी के पास अम्बाला, दक्षिणपूर्व में बिजनौर, मुरादाबाद, रामपुर तक बोली जाती है।

विशिष्टता और पहचान की दृष्टि से कहा जा सकता है कि खड़ी बोली विशेषण अकारांत प्रधान है। भला, छोटा, बड़ा, खोटा आदि। ऐ, औ का उच्चारण - ए, ओ सुनाई देता है। बेठ, पेर ओर। स्वरमध्य द्वित्व व्यंजन- बापू-बाप्पू, बेटा-बेट्टा। खड़ी बोली के क्रिया रूप साहित्यिक हिन्दी के समान हैं, परंतु उच्चारण से या सै होता है। भूतकालिक कृदन्तीय रूप - रह्या, उठ्या। पूर्वकालिक क्रिया में कर की अपेक्षा के का प्रयोग -सुनके, उठके। एक आदमी के दो बेटे थे।

2. **हरियाणी -** इसे ग्रियर्सन ने बांगरू कहा परंतु लोकप्रचलित नाम हरियाणी है। इसमें लिखित साहित्य का अभाव है। लोकगीत अवश्य प्रकाशित हुए । वर्तमान हरियाणा राज्य और दिल्ली प्रदेश की बोली यही है। रोहतक, करनाल, जींद, हिसार के भाग इसमें आते हैं । ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से हरियाणा प्राचीन काल से महत्त्वपूर्ण रहा है।

खड़ी बोली और हरियाणी की ध्वनियां प्रायः सामान है। लेकिन ध्वनि विकास की दृष्टि से हरियाणी, पंजाबी और कौरवी के बीच की स्थिति में है। पंजाबी का प्रभाव - करता करदा, आंदा-जांदा

- स्वरलोप की प्रवृत्ति - नाज, ठा।
- ल के स्थान पर व्यंजन - बादल, काल, बालक।
- न का ण में परिवर्तन - अपणा, होणा, जाणा।
- द्वित्व व्यंजनों का प्रयोग सर्वाधिक - दोन्नों, मैंने - मन्ने, तूने-तन्ने।
- एक माणस के दो छोरे थे।

3. **ब्रज -**ग्रिसर्सन ने ब्रज को पश्चिमी हिन्दी की प्रतिनिधि बोली कहा है। महाभारत काल में ब्रज चारागाहबोधक था, भागवत में मथुरा भूमि हुआ। शौरसेनी प्राकृत से उत्पन्न सभी बोलियों में ब्रजभाषा मुख्य उत्तराधिकारिणी है। ब्रज की उपबोलियां (नैनीताल की)-(भुक्सा) (मैनपुरी बदायूं बरेली)- (अन्तर्वेदी) । इसका केन्द्र मथुरा है। दक्षिण में भरतपुर, धौलपुर, उत्तर में गुडगांव, उत्तर प्रदेश में अलीगढ़, आगरा, बुलन्दशहर, एटा, मैनपुरी, बदायूं, बरेली । हिन्दी की बोलियों में सर्वाधिक साहित्य सम्पन्न है।

अकारान्त प्रधान बोली - आयो, खायो, जायो। संज्ञा, विशेषज्ञ व क्रियापद प्रायः ओकारान्त।

भलो, छोटो, बडो, खरो।

- मूर्धन्य ण ष का अभाव – इनके स्थान पर न और स का प्रयोग
- ड़ और ल के स्थान पर र का प्रयोग – लड़का–लरिका, बिगड़ा–बिगरो, झगड़ा–झगरो, दुबला–दूबरो।
- ऊष्म ध्वनियों में केवल 'स' – बिसेस।
- व्यंजन द्वित्व में अनेक उदाहरण –बादशाह–बास्सा।
- ह का लोप – बारह–बारा, साहूकार–साउकार, बहू–बउ।
- सर्वनाम मैं –हां।
- एक जन के दो छोरा है।

4. **कन्नौजी** – फर्रुखाबाद जिले के कन्नौज नगर के नाम पर ही इस क्षेत्र की बोली का नाम कन्नौजी हुआ। यह कान्यकुब्ज प्रदेश की राजधानी रहा। ब्रज और कन्नौजी के साम्य के कारण इसे ब्रज की उपबोली भी माना जाता है। यह विशुद्ध रूप से इटावा, फर्रुखाबाद, शाहजहांपुर में बोली जाती है। विस्तार की दृष्टि से कानुपर, हरदोई, पीलीभीत जिले इस बोली के अन्तर्गत आते हैं। साहित्यिक गतिविधियों का केन्द्र रहते हुए भी साहित्यकारों ने ब्रज में ही रचना की। ब्रज के गयो, भयौ कन्नौजी मे गओ, भओ हो जाते हैं। ब्रज का सोवत कन्नौजी में सोउत।

पश्चिमी हिन्दी की अन्य बोलियों की अपेक्षा कन्नौजी में महाप्राणीकरण की प्रवृत्ति अधिक–मकबरा–मखबरा, वक्त–बखत, दुपहर–दुफैर, मचलना–मछलना।

- न के स्थान पर प्रायः ल का प्रयोग – जन्म–जलम, हलुमान, मलेजर।
- व्यंजन द्वित्व–थक गया –
- थग्गओ, दूध नहीं पिया– दुन्नाइपिओ।
- क्रियार्थक संज्ञा– करिबो, चलिबो। एक जने के दोए लड़िक हते।

5. **बुंदेली** – बुंदेल राजपूतों का प्रदेश होने के कारण स क्षेत्र को बुंदेलखण्ड और इसकी भाषा को बुंदेलखण्डी या बुंदेली कहा जाता हैं इसके अन्तर्गत उत्तर प्रदेश में बांदा का पश्चिमी भाग, जालौन, हमीरपुर, झांसी, मध्यप्रदेश का ग्वालियर, भोपाल, ओरछा, होशंगाबाद, सागर। इसके केशव, पद्माकर, ठाकुर जैसे कवि ब्रजभाषा में ही रचना करते रहे। बुन्देली और ब्रज में घनिष्ठ सम्बन्ध ही नहीं बल्कि ब्रज, बुन्देली से प्रभावित है।

- संज्ञा के दीर्घान्त रूप – धुरवा, चिरइया, बिलइया।
- सम्प्रदान कारक – को (ग्वालियर, भिंड, मुरैना, झांसी)।
- खों– (गुना, विदिशा, सागर)।
- सहायक क्रिया – था, थी, थे, हतो, हती, हते।
- स्वरमध्य र का लोप – मोओ, तुमाओ, हमाओ (ब्रज–मोरो, तुमारो, मारो)।
- लिखित में र सुरक्षित है उच्चरित में लुप्त – गारी–गाई, कारी माटी–काई माटीं।
- ड़ और ढ़ के स्थान पर र का प्रयोग – भाड़ो–भारौ, दौड़–दौर।

6. **दक्खिनी (हिंदवी)** – चौदहवीं सदी के पूर्वार्ध में दिल्ली के सुल्तानों ने कुरु प्रदेश के लोगों को दक्षिण में दौलताबाद के आसपास बसाया। धीरे–धीरे दक्षिण में स्वतंत्र राज्य स्थापित हुए – गुलबर्ग, बीजापुर, गोलकुण्डा, बीदर, बरार। औरंगजेब ने इन्हें नष्ट कर दिया। 1723 में पुनः हैदराबाद में निजाम राज्य की स्थापना हुई। इनकी भाषा हिन्दी है और बोली दक्खिनी। इसमें खुसरो और कुली कुतुबशाह जैसे श्रेष्ठ कवि हुए। दक्खिनी और कौरवी में बहुत कम अन्तर है।

- दीर्घ स्वर ह्रस्व– अदमी, अस्मान।
- क का उच्चारण ख – शौक–सौख, बखत।
- दो मूर्धन्य ध्वनियां साथ हों तो एक दन्तय हो जाती है – डाट–दात, ठण्डी–थंडी।
- व्यंजन द्वित्व–सुक्का, फिक्का, हत्ती।
- महाप्राण अल्पप्राण हो जाती है – समझ–समज, पीछे–पिचे, मुझ–मुज, जीभ–जीब, भी–बी।
- बहुवचन में पंजाबी प्रभाव – एसियां औरतां बातां करतीं।
- एक आदमी के दो बेटे थे।

आ. पूर्वी हिन्दी की बोलियां–

1- vo/kh & v/kZekx/kh ls fodflr iwohZ fgUnh dh cksfy;ksa esa loZiz/kku vkSj izfrfuf/k cksyh gSA v;ks/;k dk izns'k dksly jkT; ds vUrxZr Fkk blfy, vo/kh dks dkslyh Hkh dgk tkrk gSA y[kheiqj&[khjh] cgjkbp] xksaMk] y[kuÅ] lhrkiqj] mUuko] QStkckn]

lqyrkuiqj] jk;cjsyh] bykgkckn esa vo/kh cksyh tkrh gSA iwohZ vo/kh dk {ks= xksaMk QStkckn gSA if'peh vo/kh dk {ks= y[kuÅA cSlokM+h dk {ks= cSlokM+k] mUuko] jk;cjsyh gSA izsek[;ku ijEijk esa tk;lh] jkeHkfDr 'kk[kk eas rqylhnkl] vk/kqfud dky esa }kfjdk izlkn feJ ¼d`".kk;u½ vkfn mYys[kuh; dfo;ksa dh lkfgfR;d Hkk"kk vo/kh jgh gSA

- विशेषण अकारान्त प्रधान – भल, छोट, बड़, खोट।
- या, वा, इया वाले रूप का अधिक प्रयोग – हमार, अमितभवा, बजरिया।
- विदेशी शब्दों में – रजिस्टरवा, पिंसिलिया।
- अवधी के विशिष्ट अव्यय – कालि, बेगि, पुनि, जिनि (मत), अरु, बरु (भले)।
- संज्ञार्थक क्रिया – देखब, करब।
- ण की जगह न या ड़– लछमन, भूसड़। ष की जगह स –रिसि बिस्वामित्र।
- एक मनई के दुई बेटवे रहिन।

2. **बघेली** – बारहवीं सदी में सोलंकी राजपूत व्याघ्रदेव ने बघेलखंड की स्थापना की थी जिससे प्रदेश का नाम बघेलखण्ड और बोली का नाम बघेली है। रीवा इसका केन्द्र है। लोकगीतों और लोककथाओं का संग्रह है । स्वतंत्र भाषा वैज्ञानिक ग्रंथ नहीं है।

- अवधी और बघेली में अन्तर – अवधी की ए ओ ध्वनियां य और व हो जाती हैं । पेट–प्याट, मोर–म्वार (मेरा), घोड़–घ्वाड़
- बघेली में व का म रूप – चरावै–चरामै, धरावै–धरामैं।
- भविष्यका के लिए अवधी में जइबो–करिबो, बघेली में जइहौं, करिहौं।
- एक मनई के दूई लरिका रहैं।

3. **छत्तीसगढ़ी** – मध्य प्रदेश के पूर्वोत्तर में पलामू (बिहार) की सीमा से लेकर दक्षिण में बस्तर तक, पश्चिम में बघेलखण्ड को छूता हुआ पूर्व में उड़ीसा की सीमा तक फैला हुआ जो क्षेत्र है उसमें रायगढ़, सारंगढ़, खैरागढ़ आदि 36 (छत्तीस) गढ़ बने थे। इस कारण भूखण्ड को छत्तीसगढ़ और बोली को छत्तीसगढ़ी कहते हैं। चेदी राजाओं के नाम पर चेदीशगढ़ लोक में छत्तीसगढ़ बन

गया। इसके अन्तर्गत सरजुगा, रायपुर, रायगढ़, बिलासपुर, दुर्ग आते हैं। इस पर मराठी, तेलुगु, उड़िया का प्रभाव है। बोली का रूप मौखिक लोककथाओं और गीतों में सुरक्षित है। छत्तीसगढ़ी में ष का उच्चारण ख के रूप में – बिख, श के स्थान पर स–खुसी और स के स्थान पर छ –छीता (सीता)

- अल्पप्राणीकरण के स्थान पर महाप्राणीकरण की प्रवृत्ति – दौड़, घौड़, इलाका, इलाखा, कचहरी–
- कछेरी, डौका (पुरुष) डौकी –स्त्री।
- मन या मनन जोड़कर बहुवचन–लइकामन (लड़के) हम मन (हम लोग) संज्ञार्थक क्रिया, देखब– करब।
- एकठन मरखे के दुई बेटवा रहिन।

ई. राजस्थानी की बोलियां –

'राजस्थानी' राजस्थान प्रांत के भाषारूपों के लिए ग्रियसर्न द्वारा प्रयुक्त एक सामूहिक नाम है । कर्नल टॉड के आधार पर उन्होंने यह नाम दिया है। आठवीं सदी में लिखित उद्योतन सूरि के अपभ्रंश ग्रंथ कुवलयमाला में 18 देश भाषाओं का उल्लेख है जिसमें राजस्थानी के लिए मरुभाषा नाम भी है। राजस्थानी की चार बोलियां है – मारवाड़ी, जयपुरी, मेवाती और मालवी।

1. **मारवाड़ी** – राजस्थानी का यह रूप पश्चिमी राजस्थान अर्थात् जोधपुर, मेवाड़, बीकानेर, जैसलमेर में बोला जाता है। इसके साहित्यकारों में मीराबाई सर्वाधिक उल्लेखनीय है। इसमें आ का उच्चारण वृत्ताकार है – से का सूं, में का मांय, का–की–के–को, ने नी ने बोला जाता है।

महाप्राण ध्वनियां अल्पप्राण रहती है – हाथ–हात, साथ–सात। ल का मूर्धन्य रूप – जल–ज , बाल–बा प्रयुक्त होता है। सर्वनाम ए,व,मूं, म्हनै, म्हारो, बव में, म्हें, म्हानै, म्हारो, संज्ञार्थक क्रिया– देखणो, चालणो, कर्मवाच्य–मरीजणो (मारा जाणा), करीजणो (किया जाना)। कुछ नये शब्द गिड़व (कुत्ता), पुरणियो (गधा), जीमणो (खाना)। काल रचना – देखूं हूं, देखियो, देखहूं। क्रिया विशेषण–अलगो (दूर), कनै (पास)।

2. **जयपुरी** – इसका प्राचीन नाम ढूंढाणी भी था। यह राजस्थान के पूर्वी भाग जयपुर, किशनगढ़ आदि के

क्षेत्र में बोली जाती है। शौरसेनी अपभ्रंश के उपनागर रूप में विकसित इस बोली में केवल लोकसाहित्य है। बूंदी और कोटा की हड़ौती भी इसी की एक शाखा है। इसमें संज्ञा कर्मकारक नै, कै, करण और सम्प्रदान सू, सैं, अधिकरण मैं, मालै सम्बन्धकारक– को, का, की। सर्वनाम – मनै, मूनै, तनौ, तूनै, म्हारो–थारो का बहुवचन म्हांको–थांको, ऊनै, उंकै, जीनै (जिसको) वर्तमान–मैं खाऊं छूं। वो कै रियो छ । उंकी भैण सूं लम्बो छै।

3. **मेवाती –** मेव जाति के नाम पर मेवात और मेवात क्षेत्र की बोली का नाम मेवाती है। अलवर के अतिरक्त भरतपुर के उत्तर पश्चिम और गुड़गांव के दक्षिण पूर्व में बोली जाती है। यह हरियाणी और जयपुरी से प्रभावित है। संज्ञा के परसर्ग – कर्म सम्प्रदान ने कै, करण अपादान से, सैं, तैं। सर्वनाम – मैं, म, हमा, तू, तम, थमा कौण ये – इणां (इस) वे उण।

क्रिया रूप हिदी की तरह सरल है। हो–था, हा–थे, ही–थी। हरियाणी की तरह सूष (हूं) सै (है) भी उपलब्ध हैं। कुछ विशेष, शब्द भाटा (पत्थर), लूगड़ो (ओढ़ना), मुड्ढा (जूता) जींगड़ो (बछड़ा) ढाष्ढी (गाय)।

4. **मालवी** – उज्जैन के आसपास के लिए मालव नाम शताब्दियों तक प्रचलित रहा। पश्चिम में चम्बल, दक्षिण में नर्मदा और पूर्व में बेतवा इसकी प्राकृतिक सीमाएं हैं। शुद्ध मालवी उज्जैन के अलावा, रतलाम, देवास, इन्दौर में बोली जाती है। मारवाड़ी प्रभाव के कारण इसमें राजस्थानीपन है। मालवी श्री बुंदेली, ब्रज और राजस्थानी की तरह ओकार बहुला बोली है। इसमें मध्यग इ ओर उ का अ कर देने की प्रवृत्ति है। पंडत, हरन, मट्टी, मानस आदि अक्षर का दीर्घकरण – कापड़ा, चामड़ी, लाकड़ी।

- O आदीतर महाप्राण का अल्पप्राण – समजदार, हात, दूद, भूक। व्यंजनों में ण, ड का अधिक प्रयोग।
- O अनुनासिक का लोप – दात, साप, काप।
- O सर्वनाम – मैं–म, वह–व, वे के लिए वी । कौन–कुण, किसने –कणीने। हूं लिखूं हूं। हम लिखां हां। वी ने लिख्यो।

ई. बिहार की बोलियां

बिहार की तीन बोलियों का एक वर्ग बनाकर उन्हें बिहारी नाम देने का श्रेय ग्रियर्सन को है। बिहार की उत्पत्ति पश्चिमी मागधी अपभ्रंश से मानी जाती है। पूर्वी बिहारी के अन्तर्गत मैथिली और मगही बोलियां हैं और पश्चिमी बिहारी में भोजपुरी।

1. **मैथिली** : मिथिला का सम्बन्ध मिथ (युग्म) से है। अर्थात् वैशाली, विदेह और अंग जनपदों का संयुक्त प्रदेश है। विशुद्ध मैथिली, दरभंगा, मुजफ्फरपुर, पूर्णिया, उत्तरी मुंगेर और उत्तरी भागलपुर में बोली जाती है। विद्यापति जैसे श्रेष्ठ कवि ने इसे 'देसिल बअना' कहा है। मैथिली के लिए बंगला, कैंथी और नागरी का प्रयोग होता है। यह नेपाल की दूसरी राजभाषा है मैथिली में कोमल वर्ण– ह्रस्व की प्रधानता है। ओ चलि गेल।

- O बड़ा–बड़, लोहा–लोह।
- O मूर्धन्य – ण का न में परिवर्तन – बाण–बान, प्राण–प्रान
- O मैथिली में ड़ का र और ढ़ का ऱ्ह हो जाता है – पड़ूंगा–परब, पढ़ो न –पऱ्ह ने।

- ल के स्थान पर र का प्रयोग – केला–केरा, फल–फर, गाली–गारि।
- का, के, की, के बदले केवल क का प्रयोग – राम क बेटा, राम क बेटी। दो स्वरों का इकट्ठा प्रयोग–
- बइसह, बैठो।
- व्यक्तिवाचक सर्वनाम एकवचन रूप मेरा–मोर, तेरा–तोर।
- भूतकाल के लिए अल् प्रत्यय केहन रहल–कैसा रहा।
- भविष्य के लिए अब्–जायब्, करब्।
- सहायक क्रियाओं में हूं, है, है का क्रमशः छी, छै, अछि रूप।
- विशेषण –कारी घोड़ा, कारी घोड़ी, नीक बालक, नीक बालिका।
- संज्ञा रूप – घर–घरवा, घरउआ । घोड़ा, घोड़वा, घोड़उआ।

2. **मगही –** मगध का अपभ्रंश मगह से मगही हुआ। मगही का क्षेत्र दक्षिण बिहार अर्थात् पटना, बिहार,

शरीफ, गया, औरंगाबाद, हजारीबाग रहा है। मगही की स्थिति मैथिली (कोमल) और भोजपुरी (कठोर) के बीच की है।

- मूर्धन्य दंत्य में उच्चरित–प्राण – परान।
- क्रियापद हूं के बदले ही, मैं जाता हूं – हम जाइत ही।
- ड़ का र ल – खाना पड़ा – खाय परल।
- ल का र – गाली – गारी।
- कर्त्ताकारक में परसर्ग का प्रयोग नहीं – उसने कहा – उ कहलक।
- मगही मे हथ, हथू का अधिक प्रचलन है, बाबूजी जाइत हथू।
- अतिरिक्त व अनावश्यक अनुनासिकता – हाष्थ, तूं। सार्वनामिक विशेषण–एतना, जेतना, ओतना।
- भूतकाल में व प्रत्यय – तोरा के कहलकव।
- क्रियाओं में लिंगभेद नहीं – मोहन खाइत हे, गीता खाइत हे।

- विशेषण – सुन्नर लरका, सुन्नर लरकी गया में मगही का आदर्श रूप सुरक्षित है। मगही पटना में भोजपुरी से और बाढ़ में मैथिली से प्रभावित है।

3. **भोजपुरी** – राजा भोज के वंशजों की राजधानी भोजपुर के नाम पर इसका नामकरण हुआ है। भोजपुरी के प्रधान क्षेत्र शाहबाद, छपरा, बलिया, गोरखपुर, देवरिया, गाजीपुरु, बस्ती, आजमगढ़, जौनपुर, मिर्जापुर, बनारस आदि हैं। बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली के अतिरित मॉरिशस में भोजपुरी के प्रयोगकर्त्ता बहुत हैं। राहुल सांकृत्ययन ने भोजपुरी में कुछ साहित्य रचना की है। कबीर, धर्मदास आदि की बोली भोजपुरी है।

- सार्वनामिक विशेषण – अइसन, जइसन।
- मूल संज्ञा रूप – घोरा–घोरवा, सोनरा – सोनरवा, कितबिया।
- दीर्घीकरण और कठोरता की प्रवृत्ति – लड़िकबा शिशबा के गिलसबा से पनियां पीयत बा।
- ल का र – हल–हर, फल–फर, केला–केरा।
- कर्त्ताकारक में कोई परसर्ग नहीं – राम भात खइलन।
- अनुनासिक का आगमन अनपेक्षित – नाद–नाष्द, भाट–भाष्ट।
- भूतकाल में खा लिया – खइलू। एकवचन में भूतकालिक विविधता रहली, रहले, रहल, रहलसि।
- विशेषण – छोट्हन, बड़हन, लमहर।
- स्त्रीलिंग संज्ञाएं– ईकारान्त–लइकी, बहिनि, बढ़नी, डगडरनी, हाथी, अपवाद।

संज्ञार्थक क्रिया – आइल, गइल, करल, वर्तमान कृदन्त –चलत उड़त, भूत कृदन्त – देखल, सूतल विशिष्ट शब्द – कुडी (कली) मउगी (पत्नी) दाज (बराबरी) लमेरा (आवारा) विशिष्ट वाक्य – तूं खात बाड़ी (तू खाता है।) हम देखि रहल बानी – मैं देख रहा हूं । इ आम ओकरा खातिर बां।

हिन्दी की बोलियों के सन्दर्भ में आचार्य किशोरीदास वाजपेयी ने लिखा है ''ये सब हिन्दी की बोलियां हैं, ये सब हिन्दी हैं। हिन्दी के साहित्य में इन सभी भाषाओं का साहित्य समझा जाता है और बिना किसी भेदभाव के सबको अपना समझते हैं।'' इस सुविस्तृत भूभाग के महान पुरखों ने खड़ी बोली को अपनी व्यवहार भाषा और व्यापक साहित्यिक भाषा के रूप में स्वीकार कर लिया था और यों अनजाने में ही राष्ट्रभाषा की समस्या हल कर दी थी।

शब्दार्थ :

कृदन्त – कृत प्रत्यय करने वाले क्रिया रूप, द्वित्व – दो व्यंजनों का प्रयोग, अनुनासिक – जिसके उच्चारण

8.3 सारांश :

- सन् 1000 ई. के आसपास पूरे उत्तरपूर्व और पश्चिम भारत में अपभ्रंश भाषा विकसित हो चुकी थी यह अपभ्रंश स्थानीय बोलियों के सम्पर्क में आई जिसके कारण उसके विभिन्न रूप हुए। ग्यारहवीं शताब्दी के आरम्भ में अपभ्रंश से जनभाषाओं के मिलने से आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का विकास हुआ। तेरह आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएं प्रमुख मानी जाती हैं जिनका विकास विभिन्न अपभ्रंशों से हुआ।
- Hkkjro"kZ esa 22 ekU;rk izkIr Hkk"kk,a gSaA bu Hkk"kkvksa dks jktHkk"kk dk ntkZ fn;k x;k gSA Hkk"kkvksa ds vykok Hkkjr esa lSdM+ksa cksfy;ka rFkk gtkjksa izknsf'kd cksfy;ka o micksfy;ka gSaA ns'k ds vyx&vyx izkarksa esa fofHkUu HkkSxksfyd o vU; lewgksa esa bu Hkk"kkvksa rFkk cksfy;ksa dh 'kq:vkr gqbZA nf{k.k Hkkjr esa nzkfoM+ lewgksa us pkj Hkk"kkvksa dh 'kq:vkr dh FkhA mRrj&e/; rFkk iwoZ Hkkjr ds fofHkUu izkarksa esa yxHkx ,d ntZu Hkk"kk,a 'kq: gqbZaA iatkc esa xq:eq[kh ;k iatkch Hkk"kk dk izkjaHk yxHkx ikap lkS o"kZ igys gqvkA
- आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का वर्गीकरण करने वाले भाषा वैज्ञानिकों में हार्नले, जॉर्ज ग्रियसर्न, डा. सुनीतिकुमार चटर्जी और धीरेन्द्र वर्मा हैं जिन्होंने वर्गीकरण के विभिन्न रूपों

में विचार किया है । इनमें जार्ज ग्रियसर्न तथा डा. सुनीतिकुमार चटर्जी का वर्गीकरण ही उल्लेखनीय है व मान्य है।

o HkkSxksfyd n`f"V ls fgUnh dk {ks= mŸkj esa fgeky; ls ysdj nf{k.k eas ueZnk rd gS ftls e/;ns'k dgk x;k FkkA tkWtZ fxz;luZ us bl leLr HkwHkkx dks if'peh iwohZ {ks= esa foHkkftr fd;k gSA Hkk"kkoSKkfud n`f"V ls fgUnh izns'k dh cksfy;ksa dks if'peh fgUnh vkSj iwohZ fgUnh bu nks oxksZa eas j[kk x;k gSA ;g oxhZdj.k tkWtZ fxz;lZu dk gSA

8.4 सूचक शब्द :

असमी : मागध अपभ्रंश के पूर्वोत्तरी रूप से विकसित सम प्रदेश की भाषा है। इस पर बंगला तिब्बती, बर्मी, नगा आदि भाषाओं का भी प्रभाव पड़ा है। हेम सरस्वती द्वारा तेरहवीं सदी में रचित 'प्रहलाद चरित्र' असमिया काव्य की प्राचीनतम रचना है।

उड़िया : मागधी अपभ्रंश के दक्षिण रूप से विकसित उड़िया प्रदेश की भाषा है। बीम्स के अनुसार उड़िया बंगा से पूर्व अस्तित्त्व में आई थी । उड़िया लिपि का विकास ब्राह्मी की उत्तरी शैली से माना जाता है। इसके वर्ण प्रायः वर्तुलकार होते हैं। द्रविड़ प्रभाव के कारण कठिन हो गई है इसमें तेलुगु और मराठी के पर्याप्त शब्द मिलते हैं।

बंगला : मागधी अपभ्रंश के पूर्वी रूप से विकसित बंगला प्रदेश की भाषा है। इसकी साहित्यिक भाषा को 'साधु भाषा' कहते हैं। इसमें संस्कृत शब्दों की अधिकता है। इसके लिखित और उच्चरित रूप में अंतर होता है। लिखा छवि, रवि जाता है परंतु बोला छोबी, रोबी, जाता है । अधिकतर अ, आ को ओ, व को ब बोला जाता है। यह भाषा साहित्यिक दृष्टि से अयंत समृद्ध है।

बिहारी : वस्तुतः बिहारी भाषा नहीं अपितु बिहार प्रदेश में बोली जाने वाली बोलियों के समूह का नाम है। इसमें भोजपुरी, मैथिली, मगही बोलियां प्रमुख हैं। यह मागध अपभ्रंश के पश्चिमी रूप से विकसित है। इसका क्षेत्र बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश है। बिहारी की लिपि नागरी है।

पूर्वी हिन्दी : अर्धमागधी अपभ्रंश से विकसित पूर्वी हिन्दी क्षेत्र के पूर्वी भाग की भाषा है । इसमें अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी बोलियां प्रमुख हैं। अवधी अवध प्रदेश की प्रमुख व प्रचलित बोली है। इसमें तुलसीदास की ''रामचरितमानस'' और जायसी की 'पदमावत्' जैसी श्रेष्ठ कृतियां हैं। बघेलखण्ड में प्रचलित बघेली पर अवधी का बहुत प्रभाव है। छत्तीसगढ़ी में लोक साहित्य की बहुलता है। पूर्वी हिन्दी की लिपि देवनागरी है।

पश्चिमी हिन्दी : यह शौरसेनी अपभ्रंश से विकसित पश्चिमी हिन्दी क्षेत्र की भाषा है। इसमें मुख्य रूप से पांच बोलियां हैं- खड़ी बोली, ब्रज, बांगरू, कन्नौजी और बुन्देली । खड़ी बोली (कौरवी) अपने साहित्यिक नाम हिन्दी से प्रसिद्ध है, भारत की राजभाषा है। इसका अरबी-फारसी शब्दों से युक्त रूप उर्दू है। दोनों का मिला-जुला रूप हिन्दुस्तानी कहलाता है।

पहाड़ी : नये मतानुसार शौरसेनी अपभ्रंश से विकसित (पुराना मत खस) पहाड़ी भाषा हिमाचल प्रदेश के भद्रवाह के उत्तर पश्चिम से लेकर नेपाल के पूर्वी भाग तक की भाषा है। इसके पश्चिमी, मध्य और पूर्वी तीन रूप हैं। पश्चिमी शिमला के निकटवर्ती भाग की भाषा है। मध्य पहाड़ों की कुमांउनी और गढ़वाली कुमाउं गढ़वाल में प्रचलित है। पूर्वी पहाड़ी नेपाली नेपाल की राजभाषा है। पहाड़ी में लोकसाहित्य अधिक है। इसकी प्रमुख लिपि देवनागरी है।

राजस्थानी : शौरसेनी अपभ्रंश के नागर पूर्वोत्तर रूप से विकसित राजस्थानी प्रदेश की भाषा है । इसके अन्तर्गत जयपुरी, मारवाड़ी, मालवी और मेवाती बोलियां प्रमुख हैं। जयपुरी मे दादू का साहित्य उपलब्ध है। मारवाड़ी में रासो साहित्य मिलता है। मालवी में चन्द्रसखी की रचनाएं प्रसिद्ध हैं।

गुजराती : शौरसेनी अपभ्रंश के नागर के पश्चिमी रूप से इसका विकास हुआ है। यह गुजरात, काठियावाड़ और कच्छ में बोली जाती है। इसमें तेरहवीं सदी में साहित्य रचना होने लगी थी । इसके साहित्यकारों में विनयचंद्र सूरी, नरसी मेहता के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

मराठी : महाराष्ट्री अपभ्रंश से विकसित यह महाराष्ट प्रदेश की भाषा है। मराठी में संस्कृत शब्दों की अधिकता है। भौगोलिक समीपता के कारण इसे द्रविड़ परिवार की भाषाओं ने प्रभावित किया है। इसकी चार बोलियां मुख्य हैं। देसी या दक्षिणी, कोंकणी, नागपुरी, बरारी। पूना की भाषा साहित्यिक है।

पंजाबी : पैशाची अपभ्रंश से विकसित यह भाषा पंजाब प्रदेश के पूर्वी भाग की भाषा है। इसे सिक्खी, खालसी या गुरमुखी कहते हैं। इसके पंजाबी व डोगरी दो रूप हैं। डोगरी जम्मू में बोली जाती है।

लहंदा : लहंदा का अर्थ ही पश्चिमी है। पैशाची अपभ्रंश से विकसित यह पंजाब प्रदेश के पश्चिमी भाग की भाषा है । इसे जटकी, दिलाही या हिन्दीकी भी कहा जाता है। यह भी साहित्यिक भाषा नहीं है अपितु इन्हीं बोलियों का सामूहिक नाम है। इसमें 'जन्मासखी' नामक ग्रंथ उपलब्ध होता है। इसका शब्द भण्डार और व्याकरण पंजाबी से भिन्न है। इसकी लिपि लण्डा है। पाकिस्तान में इसके लिए फारसी लिपि का प्रयोग होता है।

सिन्धी : ब्राचड़ अपभ्रंश से विकसित यह प्राचीन सिंध प्रदेश की भाषा है। विभाजन के बाद इसके बोलने वाले पंजाब, दिल्ली, बम्बई में बस गये हैं। इसकी पांच बोलियां हैं। बिचौली, सिरैकी, लाड़ी, थरेली, कच्छी बिचौली ही साहित्यिक भाषा बनी। चौदहवीं सदी से सिंधी में साहित्य रचना मिलती है। प्राचीन कवियों में अब्दुल करीम, शाह लतीफ, शाह अमीन के नाम उल्लेखनीय हैं।

8.5 स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न :

1. पूर्वी हिन्दी की प्रमुख बोलियों का परिचय दें।
2. पश्चिमी हिन्दी की प्रमुख बोलियों का परचिय दें।
3. राजस्थानी हिन्दी की प्रमुख बोलियों का परिचय दें।
4. बिहारी हिन्दी की प्रमुख बोलियों का परिचय दें।

8.6 संदर्भित पुस्तकें :

- **शुद्ध हिन्दी**, लेखक – डा. हरदेव बाहरी, 2004
- **हिन्दी व्याकरण**, लेखक – पं. कमला प्रसाद गुरू, 2003
- **अच्छी हिन्दी**, लेखक – रामचंद्र वर्मा, 2003
- **हिन्दी का सही प्रयोग**, लेखक – नीलम मान, 2005
- **भाषा शास्त्र तथा हिन्दी भाषा की रुपरेखा**, लेखक – देवेंद्र कुमार शास्त्री, 2003

बीए मास कम्युनिकेशन, प्रथम वर्ष

हिन्दी– बीएमसी 102

खंड–इ **इकाई – 1** **अध्याय–9**

समास

लेखक : डा. मधुसूदन पाटिल, पूर्व वरिष्ठ व्याख्याता।

एस.आई.एम. शैली में परिवर्तन : डा. मनोज छाबड़ा, हिन्दी प्रवक्ता ।

अध्याय संरचना :

इस अध्याय में हम समास का परिचय प्राप्त करेंगे। इस विषय की अवधारणा पर विशेष जोर दिया जाएगा। समास के प्रकारों पर भी संक्षेप में चर्चा होगी।

इस अध्याय की संरचना इस प्रकार रहेगी :

9.0 उद्देश्य

9.1 परिचय

9.2 विषय वस्तु की प्रस्तुति

9.2.1 समास की अवधारणा

9.2.2 समास के प्रकार

9.3 सारांश

9.4 सूचक शब्द

9.5 स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

9.6 संदर्भित पुस्तकें

9.0 उद्देश्य :

इस अध्याय के उद्देश्य इस प्रकार हैंः

- समास की अवधारणा का परिचय प्राप्त करना
- समास के प्रकारों का परिचय प्राप्त करना

9.1 परिचय :

समास युक्त पदों को कहा जाता है। इन्हें समस्त पद भी कहा जाता है। समास का शब्दिक अर्थ केवल दो या अधिक शब्दों को पास रखना नहीं होता । दो या अधिक भिन्नार्थी शब्दों का एकार्थी शब्द हो जाना समास है। अलग अलग भाषाओं में समस्त पद के नियम अलग अलग है।

इस अध्याय में समास की अवधारणा व समास के प्रकार विषयों पर प्रस्तुति होगी।

9.2 विषय वस्तु की प्रस्तुति :

इस अध्याय में विषय वस्तु की प्रस्तुति इस प्रकार रहेगी :

- *समास की अवधारणा*
- *समास के प्रकार*

9.2.1 समास की अवधारणा :

युक्त पदों को समास या समस्त पद कहा जाता है। समास का शब्दिक अर्थ है दो या अधिक शब्दों को पास रखना। किन्तु केवल पास रखने से समस्त पद की रचना नहीं होती । दो या अधिक भिन्नार्थी शब्दों का एकार्थी शब्द हो जाना समास है। जब दो शब्दों के सम्बन्ध सूचक प्रत्यय आदि का लोप करके दो अर्थ तत्त्वों को मिलाया जाता है तब समस्त पद बनता है।

यह पद एक भाषिक इकाई के रूप में कार्य करता है। यह इकाई पद से बड़ी और पदबन्ध से छोटी होती है। पदबन्ध उन पदों का समूह होता है जो सम्मिलित रूप से एक व्याकरणिक कार्य करता है। समस्त पद दो शब्दों से मिलकर बनता है किन्तु एक शाब्दिक इकाई का कार्य करता है। समस्त पद के लिए शाब्दिक एकता अनिवार्य है।

सभी भाषाओं में समस्त पद के नियम समान नहीं है। ब्लूमफील्ड ने समस्त पदों का विवेचन करते हुए संस्कृत वैयाकरणों द्वारा किये गये समस्त पदों के वर्गीकरण की वैज्ञानिकता की अत्यंत प्रशंसा की है। हिन्दी में समस्त पद परम्परा संस्कृत से गृहीत है समस्त पदों की प्रवृत्ति संस्कृत जैसी संयोगात्मक भाषा की प्रवृत्ति है। लेकिन हिन्दी जैसी आयोगात्मक भाषा में समस्त पदों की रचना होती है उन्हें सन्निहित अवयव कहा जाता है। पदों को विश्लेषित करने की प्रक्रिया को विग्रह कहते हैं।

9.2.2 समास के प्रकार :

समस्त पदों के सन्निहित पदों का वर्गीकरण किया गया है । समास मुख्यतः चार प्रकार के है –

1 अवययीभाव

2 तत्पुरुष

3 द्वन्द

4 बहुव्रीहि।

1. अव्ययीभाव समास : अव्ययीभाव का शाब्दिक अर्थ है जो अव्यय नहीं था उसका अव्यय हो जाना। इस समास मे पूर्व पद प्रधान होता है और प्रायः अव्यय होता है–

- o यथाशक्ति,
- o भरपेट

अव्ययीभाव समस्त पद वाक्य में प्रायः क्रिया विशेषण का कार्य करता है –

- o मैं आपका कार्य यथाशक्ति करूंगा।
- o वह भरपेट खाकर उठा।

2. तत्पुरुष समास : इसमें उत्तर पद प्रधान होता है और प्रायः विशेष्य होता है और प्रथम पद प्रायः संज्ञा या विशेषण होता है। उदाहरणार्थ – रसोईघर–पद में उत्तर पद घर विशेष्य और प्रधान है तथा पूर्व पद रसोई संज्ञा होते हुए भी विशेषण का कार्य कर रहा है । मदमस्त, स्वर्गगत समस्त पद निर्माण करते समय कारक विभक्तियों के लोप के अनुसार तत्पुरुष के आठ उपभेद किये जाते हैं, इनमें तीन प्रमुख है–

कर्मधारय समास : समस्त पद विशेषण विशेष्य या उपमेय उपमान से मिलकर बनता है – नीलकमल, नरसिंह, घनश्याम। नीला है कमल जो। घन जैसे रंगवाला श्याम।

द्विगु समास : इसमें उत्तर पद ही प्रधान होता है लेकिन पूर्व पद संख्यावाची होता है और समूह का बोध कराता है। दोपहर, त्रिवेणी, चौपाया, पंचवटी, षट्पद, सप्तपदी, अष्टावक्र, नौरंग, दशानन।

नञा तत्पुरुष समास : इसमें उत्तर पद ही प्रधान होता है लेकिन प्रथम पद निषेध या अभाव के अर्थ में प्रयुक्त होता है । अ, अन्, न तथा ना। अधर्म, अनाचार, नास्तिक, नालायक।

3. **द्वन्द्व समास** : द्वन्द्व का अर्थ होता है युग अथवा जोड़ा । इसमें पूर्व और उत्तर दोनों पद प्रधान होते हैं। विग्रह करने पर दोनों पदों के बीच में और शब्द आता है ।

- राधाकृष्ण – राधा और कृष्ण,
- माता–पिता, माता और पिता,
- तन–मन–धन

4. **बहुव्रीहि समास** : इस समस्त पद में दोनों पद गौण रहते हैं और तीसरे प्रधान पद का बोध कराते हैं।

दशानन– दस हैं आनन जिसके – रावण । चन्द्रशेखर – चन्द्र है जिसके शिखर पर – शिव । समस्त पद सम्बन्धी निम्नांकित तथ्य दृष्टव्य हैं :–

- संस्कृत में कई पदों के समास हैं – परंतु हिन्दी में प्रायः दो पदों के समास हैं। अपवाद रूप तीन पदों के समास भी हैं – तन–मन–धन, मन–वचन–कर्म, नागरी–प्रचारिणी–सभा।
- समास यथार्थतः संक्षेप है। इसमें ध्वनि, रूप और अर्थस्तर पर संक्षेपण होता है।
- समास में कारक चिह्न (घोड़े की दौड़–घुड़दौड) और योजक चिह्न (माता और पिता–मातापिता) को हटाकर पदों को मिलाया जाता है।
- हिन्दी में प्रायः समस्रोतीय शब्दों के ही समास बनते हैं –

  तद्भव –तद्भव –रसोईघर ।

  तत्सम+तत्सम–शोकमग्न।

फारसी+फारसी–आबोहवा।

अपवादतः फिल्मोत्सव।

फारसी+तत्सम–जिलाधीश । अजायबघर।

- समास अर्थ और पद की संगति वाले शब्दों का ही बनाया जाता है असंगत का नहीं। दवाखाना, संगत है, जमीनखाना नहीं बनेगा।
- समस्त पद बनने पर विभिन्न पदों का मूल अर्थ वही रहता है, परन्तु अपवादतः परिवर्तित भी होता है – श्वेतपत्र, धर्मशाला

शब्दार्थ :

विग्रह – पदों को अलग करना, समस्रोतीय – एक ही भाषा स्रोत से आने वाले।

9.3 सारांश :

- जब दो शब्दों के सम्बन्ध सूचक प्रत्यय आदि का लोप करके दो अर्थ तत्त्वों को मिलाया जाता है तब समस्त पद बनता है। दो या अधिक भिन्नार्थी शब्दों का एकार्थी शब्द हो जाना समास है। यह पद एक भाषिक इकाई के रूप में कार्य करता है।
- हिन्दी में समस्त पद परम्परा संस्कृत से गृहीत है समस्त पदों की प्रवृत्ति संस्कृत जैसी संयोगात्मक भाषा की प्रवृत्ति है। लेकिन हिन्दी जैसी आयोगात्मक भाषा में समस्त पदों की रचना होती है उन्हें सन्निहित अवयव कहा जाता है। पदों को विश्लेषित करने की प्रक्रिया को विग्रह कहते हैं।
- समस्त पदों के सन्निहित पदों का वर्गीकरण किया गया है । समास मुख्यतः चार प्रकार के है – अवययीभाव समास, तत्पुरुष समास, द्वन्द समास, बहुव्रीहि समास ।
- अव्ययीभाव समास का शाब्दिक अर्थ है जो अव्यय नहीं था उसका अव्यय हो जाना। इस समास मे पूर्व पद प्रधान होता है और प्रायः अव्यय होता है – यथाशक्ति, भरपेट। अव्ययीभाव समस्त पद वाक्य में प्रायः क्रिया विशेषण का कार्य करता है – मैं आपका कार्य यथाशक्ति करूंगा। वह भरपेट खाकर उठा।

- तत्पुरुष समास में उत्तर पद प्रधान होता है और प्रायः विशेष्य होता है और प्रथम पद प्रायः संज्ञा या विशेषण होता है। उदाहरणार्थ – रसोईघर–पद में उत्तर पद घर विशेष्य और प्रधान है तथा पूर्व पद रसोई संज्ञा होते हुए भी विशेषण का कार्य कर रहा है ।
- द्वन्द्व का अर्थ होता है युग अथवा जोड़ा । इसमें पूर्व और उत्तर दोनों पद प्रधान होते हैं। विग्रह करने पर दोनों पदों के बीच में और शब्द आता है । राधाकृष्ण – राधा और कृष्ण, माता–पिता, माता और पिता, तन–मन–धन।
- बहुव्रीहि समास पद में दोनों पद गौण रहते हैं और तीसरे प्रधान पद का बोध कराते हैं। दशानन– दस हैं आनन जिसके – रावण । चन्द्रशेखर – चन्द्र है जिसके शिखर पर – शिव ।
- संस्कृत में कई पदों के समास हैं – परंतु हिन्दी में प्रायः दो पदों के समास हैं। अपवाद रूप तीन पदों के समास भी हैं – तन–मन–धन, मन–वचन–कर्म, नागरी–प्रचारिणी–सभा।
- समास यथार्थतः संक्षेप है। इसमें ध्वनि, रूप और अर्थस्तर पर संक्षेपण होता है।
- समास में कारक चिह्न (घोड़े की दौड़–घुड़दौड) और योजक चिह्न (माता और पिता– मातापिता) को हटाकर पदों को मिलाया जाता है।
- समास अर्थ और पद की संगति वाले शब्दों का ही बनाया जाता है असंगत का नहीं। दवाखाना, संगत है, जमीनखाना नहीं बनेगा।
- समस्त पद बनने पर विभिन्न पदों का मूल अर्थ वही रहता है, परन्तु अपवादतः परिवर्तित भी होता है – श्वेतपत्र, धर्मशाला

9.4 सूचक शब्द :

समास : दो या अधिक भिन्नार्थी शब्दों का एकार्थी शब्द हो जाना समास है। जब दो शब्दों के सम्बन्ध सूचक प्रत्यय आदि का लोप करके दो अर्थ तत्त्वों को मिलाया जाता है तब समस्त पद बनता है। यह पद एक भाषिक इकाई के रूप में कार्य करता है।

समास की प्रवृत्ति : हिन्दी में समस्त पद परम्परा संस्कृत से गृहीत है समस्त पदों की प्रवृत्ति संस्कृत जैसी संयोगात्मक भाषा की प्रवृत्ति है। लेकिन हिन्दी जैसी आयोगात्मक भाषा में समस्त

पदों की रचना होती है उन्हें सन्निहित अवयव कहा जाता है। पदों को विश्लेषित करने की प्रक्रिया को विग्रह कहते हैं।

समास के प्रकार : समस्त पदों के सन्निहित पदों का वर्गीकरण किया गया है । समास मुख्यतः चार प्रकार के है – अवययीभाव समास, तत्पुरुष समास, द्वन्द समास, बहुव्रीहि समास ।

अव्ययीभाव समास : अव्ययीभाव का शाब्दिक अर्थ है जो अव्यय नहीं था उसका अव्यय हो जाना। इस समास मे पूर्व पद प्रधान होता है और प्रायः अव्यय होता है – यथाशक्ति, भरपेट। अव्ययीभाव समस्त पद वाक्य में प्रायः क्रिया विशेषण का कार्य करता है – मैं आपका कार्य यथाशक्ति करूंगा। वह भरपेट खाकर उठा।

तत्पुरुष समास : इसमें उत्तर पद प्रधान होता है और प्रायः विशेष्य होता है और प्रथम पद प्रायः संज्ञा या विशेषण होता है। उदाहरणार्थ – रसोईघर–पद में उत्तर पद घर विशेष्य और प्रधान है तथा पूर्व पद रसोई संज्ञा होते हुए भी विशेषण का कार्य कर रहा है ।

द्वन्द्व समास : द्वन्द्व का अर्थ होता है युग अथवा जोड़ा । इसमें पूर्व और उत्तर दोनों पद प्रधान होते हैं। विग्रह करने पर दोनों पदों के बीच में और शब्द आता है । राधाकृष्ण – राधा और कृष्ण, माता–पिता, माता और पिता, तन–मन–धन।

बहुव्रीहि समास : इस समस्त पद में दोनों पद गौण रहते हैं और तीसरे प्रधान पद का बोध कराते हैं।

दशानन– दस हैं आनन जिसके – रावण । चन्द्रशेखर – चन्द्र है जिसके शिखर पर – शिव ।

समास सम्बन्धी तथ्य : समस्त पद सम्बन्धी निम्नांकित तथ्य दृष्टव्य हैं : संस्कृत में कई पदों के समास हैं – परंतु हिन्दी में प्रायः दो पदों के समास हैं। अपवाद रूप तीन पदों के समास भी हैं – तन–मन–धन, मन–वचन–कर्म, नागरी–प्रचारिणी–सभा। समास यथार्थतः संक्षेप है। इसमें ध्वनि, रूप और अर्थस्तर पर संक्षेपण होता है। समास में कारक चिह्न (घोड़े की दौड़–घुड़दौड) और योजक चिह्न ;माता और पिता– मातापिताद्ध को हटाकर पदों को मिलाया जाता है।

9.5 स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न :

1. समास की अवधारणा स्पष्ट करते हुए हिन्दी समास के मुख्य भेद स्पष्ट करें।
2. हिन्दी भाषा में समास के प्रयोग पर विस्तार से लिखिए।

3. समास के कितने प्रकार हैं? उदाहरण सहित टिप्पणी करें।

9.6 संदर्भित पुस्तकें :

- **शुद्ध हिन्दी**, लेखक – डा. हरदेव बाहरी, 2004
- **हिन्दी व्याकरण**, लेखक – पं. कमला प्रसाद गुरू, 2003
- **अच्छी हिन्दी**, लेखक – रामचंद्र वर्मा, 2003
- **हिन्दी का सही प्रयोग**, लेखक – नीलम मान, 2005
- **भाषा शास्त्र तथा हिन्दी भाषा की रूपरेखा**, लेखक – देवेंद्र कुमार शास्त्री, 2003

<u>बीए मास कम्युनिकेशन, प्रथम वर्ष</u>

हिन्दी– बीएमसी 102

खंड– इ इकाई – 2 अध्याय – 10

हिन्दी भाषा की शैली

लेखक : डा. मधुसूदन पाटिल, पूर्व वरिष्ठ व्याख्याता।

एस.आई.एम. शैली में परिवर्तन : डा. मनोज छाबड़ा, हिन्दी प्रवक्ता ।

अध्याय संरचना :

इस अध्याय में हम हिन्दी भाषा की शैली का परिचय प्राप्त करेंगे। अध्याय में हिन्दी भाषा की शैली की अवधारणा पर विशेष जोर दिया जाएगा। इस अध्याय की संरचना इस प्रकार रहेगीः

10.0 उद्देश्य

10.1 परिचय

10.2 विषय वस्तु की प्रस्तुति

10.2.1 हिन्दी भाषा में शैली की अवधारणा

10.2.2 समास शैली

10.2.3 व्यास शैली

10.2.4 भाषाशैली और साहित्यिक शैली

10.3 सारांश

10.4 सूचक शब्द

10.5 स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

10.6 संदर्भित पुस्तकें

10.0 उद्देश्य :

इस अध्याय के उद्देश्य इस प्रकार हैंः

- हिन्दी भाषा में शैली की अवधारणा का परिचय प्राप्त करना
- समास शैली का परिचय प्राप्त करना

- व्यास शैली का परिचय प्राप्त करना
- भाषाशैली और साहित्यिक शैली का परिचय प्राप्त करना

10.1 परिचय :

भाषा सामाजिक वस्तु होने पर भी प्रयोग के स्तर पर वैयक्तिक हो जाती है अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति की अपनी भाषा होती है। एक ही व्यक्ति भाषा को विभिन्न सन्दर्भों के अनुकूल अनेक रूपों में प्रयुक्त करता है। वस्तुतः व्यक्ति जो कुछ कहना चाहता है उसके अनुसार ही वह भाषा की खोज करता है। कथ्य – जो कहना हो – और कथन–शैली में एक विशेष सम्बन्ध होना चाहिए जिससे सुननेवाला या पढ़नेवाला विषय को ठीक से समझ सके। कथ्य और कथन की पारस्परिक संगति ही शैली को जन्म देती है।

इस अध्याय में हिन्दी भाषा में शैली विषय पर प्रस्तुति होगी।

10.2 विषय वस्तु की प्रस्तुति :

इस अध्याय में विषय वस्तु की प्रस्तुति इस प्रकार रहेगी :

- हिन्दी भाषा में शैली की अवधारणा
- समास शैली
- व्यास शैली
- भाषाशैली और साहित्यिक शैली

10.2.1 हिन्दी भाषा में शैली की अवधारणा :

गम्भीर विषय के निरूपण के लिए लेखक प्रायः गम्भीर, विचार–बोझिल तथा सूत्रात्मक भाषा का प्रयोग करते है। ऐसी रचना में जिस शैली का प्रयोग होगा, वह वस्तुनिष्ठ तथा विचारप्रधान होगी । हल्के–फुल्के विषयों को लेखक व्यंग्य, विनोद एवं परिहास के लिए उपयुक्त भाषा में प्रस्तुत करते हैं। साथ ही अपने मनोभावों के अनुरूप वे उनमें उन बातों का समावेश कर सकते हैं जो पाठक को गुदगुदाएं, हंसाएं या रूलाएं, जिनसे पाठक एक विचित्र निजीपन, अद्‌भुत सजीवता और मनोहर रंगीनी पा सके। ऐसी शैली को प्रायः आत्मपरक या आत्मनिष्ठ शैली कहा जाता है।

उपर्युक्त शैलियों का समन्वित प्रयोग भी सम्भव है। ऐसी रचनाओं में मननशीलता और एक विशेष प्रकार की स्वच्छन्दता का अद्‌भुत सुयोग रहता है। गुलाबराय और हरिशंकर परसाई के निबंधों में दोनों शैलियों का पृथक-पृथक और समन्वित प्रयोग देखा जा सकता है।

इसलिए शैलियों पर विचार करते समय तीन बातों पर ध्यान देना चाहिए :

1. तथ्य कैसा है?
2. तथ्यमें गम्भीरता पर अधिक बल है या आक्रोश, व्यंग्य अथवा विनोद पर?
3. क्या रचना की भाषा कथ्य के अनुरूप है ?
4. लेखक का रचना-उद्‌देश्य क्या है?

इत तीन बातों पर ध्यान देने से लेखन की कई शैलियों की पहचान की जा सकती है। अपनी बात को कहने की विधि के अनुसार पर शैली को एक-दूसरी तरह से भी समझा जा सकता है। कुछ लोग अपनी बात को संक्षेप में अर्थात् सूत्र-रूप में कहते हैं, तो कुछ लेखक उसे काफी विस्तार से समझाने का प्रयत्न करते हैं।

कथ्य को सूत्र-रूप में कहने से जो शैली पनपती है उसे समास शैली कहते हैं। इस शैली में लेखक की भाषा अधिक संगठित होती है तथा इसमें तत्सम शब्दों का प्रयोग अधिक रहता है। लेखक अपनी बात को समझाने के लिए लम्बे- लम्बे वाक्यों, उदाहरणों या उद्दरणों का प्रयोग करता है। समास और व्यास शैलियां प्रायः निबन्धों में मिली-जुली होती है। बहुत ही कम निबन्ध पूर्णतः व्यास शैली में या पूर्णतः समास शैली में होते हैं।

कुछ लेखक अपनी बात को कहने के लिए अच्छे-अच्छे शब्दों, मुहावरों आदि का प्रयोग करते हैं और उसे अधिक-से-अधिक सुंदर बनाने की कोशिश करते हैं। भाषा को इस प्रकार से अलंकृत करने में जिस शैली का रूप निरखता है उसे आलंकारिक शैली कहते है। यह शैली कभी-कभी अलंकारों के दबाव से कृत्रिम बन जाती है और कथ्य और कथन दोनों के बीच सन्तुलन नहीं रह पाता। इसके विपरीत जब सामान्य बोलचाल की भाषा को स्वाभाविक रूप से प्रयुक्त करते हैं तो उसे अनलकृंत शैली कह सकते हैं। इसी तरह शैली के कुछ अन्य रूप भी सम्भव हैं।

उदाहरणार्थ–जहां विषय–सामग्री को इस भांति प्रस्तुत किया जाए कि पाठक के मन में उसका चित्र–सा अंकित हो जाए वहां चित्र–शैली होती है। भावात्मक निबन्धों में इस शैली के लिए सर्वाधिक स्थान रहता है। जहां अपनी बात को संवाद अथवा वार्तालाप के रूप में लिखा जाए वहां सवांद शैली होती है। रायकृष्णदास का निबन्ध 'हीरा और कोयला' इसी शैली में लिखित है।

वस्तुतः भाषा या अभिव्यक्ति में जिस विशेष तत्त्व की प्रधानता होती है उसी के आधार पर शैली–विशेष को पहचाना जाता है। पर मुख्यतः निबन्धों में समास, व्यास, भावात्मक और व्यंगात्मक शैलियों का प्रयोग किया जाता है। अतः यहां इन्हीं का परिचय दिया जा रहा है –

10.2.2 समास शैली :

इस शैली की विशेषता है–कथ्य की गम्भीरता के अनुरूप सूत्रात्मक वाक्य–संगठन। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इस शैली के प्रसिद्ध लेखक हैं। उन्होंने अपने निबन्धों में प्रायः प्रथम वाक्य सूत्र–रूप में दिया है फिर उसका ही पल्लवन किया है । पल्लवन के लिए उन्होंने व्यास शैली का आश्रय लिया है। सूक्तियों के रूप में उनके अनेक वाक्य प्रसिद्ध हैं। उनके 'उत्साह' शीर्षक निबन्ध से एक उदाहरण देखिए :

> "दुख के वर्ग में जो स्थान भय का है, आनन्द वर्ग में वही उत्साह का है। भय में हम प्रस्तुत कठिन स्थिति के निश्चय से विशेष रूप से दुखी और कभी–कभी स्थिति से अपने को दूर रखने के लिए प्रयत्नवाद भी होते हैं। उत्साह में हम आने वाली कठिन स्थिति के भीतर साहस के अवसर के निश्चय द्वारा प्रस्तुत कर्म–सुख की उमंगों में अवश्य प्रयत्वान होते हैं। उत्साह में कष्ट या हानि सहने की दृढ़ता के साथ–साथ कर्म में प्रवृत्त होने के आनन्द का योग रहता है। साहसपूर्ण आनन्द की उमंग का नाम उत्साह है । कर्म–सौन्दर्य के उपासक ही सच्चे उत्साही कहलाते हैं।"

10.2.3 व्यास शैली :

इस शैली में लेखक वाक्यों के चुस्त गठन की अपेक्षा कहीं लम्बे–लम्बे ढीले–ढीले वाक्य लिखता है, तो कहीं अपनी बात को संक्षिप्त वाक्यों में कहता है। ऐसी शैली के उदाहरण अनेक निबन्धकारों की रचनाओं में मिलते हैं । हजारीप्रसाद द्विवेदी, सियाराशरण गुप्त आदि इस शैली के

विशिष्ट लेखकों में से हैं जो पाण्डित्य के साथ अनुभव और भावुकता द्वारा निबन्ध को अधिक सरस बनाते हैं। द्विवेदी जी के निबन्ध ''अशोक का फूल'' का एक अंश देखिए :

> ''लेकिन पुष्पित अशोक को देखकर मेरा मन उदास हो जाता है। इसलिए नहीं की सुन्दर वस्तुओं को हतभाग्य समझने में मुझे कोई विशेष रस नहीं मिलता है। कुछ लोगों को मिलता है । वे बहुत दूरदर्शी होते हैं जो भी सामने पड़ गया, उसके जीवन के अन्तिम मूहूर्त तक का हिसाब वे लगा लेते हैं। मेरी दृष्टि इतनी दूर तक नहीं जाती। फिर भी मेरा मन इस फूल को देखकर उदास हो जाता है। असली कारण तो मेरे अन्तर्यामी ही जानते होंगे, कुछ-कुछ थोड़ा-सा मैं भी अनुमान कर सका हूं। उसे बताता हूं।''

10.2.4 भाषाशैली और साहित्यिक शैली :

साहित्यिक शैली को हम भाषाशैली का ही एक भेद मानते हैं । साहित्यिक प्रसंग में पाई जाने वाली भाषा साहित्यिक शैली की सामग्री है। साहित्यिक प्रसंग क्योंकि कल्पनाप्रसूत होता है और इसी कारण उसमें उपलब्ध भाषाप्रयोग सोद्येश्यता की दृष्टि से सामाजिक और साहित्येतर भाषा से भिन्न होता है इसलिए साहित्यिक शैली को स्वनिष्ठ मानना ही उचित है।

साहित्यिक शैली की कृति, विधा, युग आदि के भेद से फिर अनेक उपशैलियां हो जाती हैं। तदनुसार हम कथाशैली, कविताशैली (काव्यशैली), नाटकशैली, निबंधशैली, आदि उपशैलियों की बात करते हैं। इसी प्रकार 'कामायनी' की शैली, 'गोदान' की शैली, 'चन्द्रगुप्त' की शैली और छायावादी शैली, प्रगतिवादी शैली आदि उपशैलियों की बात भी करते हैं। हम अधिक गहराई में भी जा सकते हैं, जैसे उपन्यास के अन्तर्गत ऐतिहासिक उपन्यासों की शैली, मनोविश्लेषण वादी उपन्यासों की शैली आदि भेद हो सकते हैं और नीचे उतरें तो कथानक की शैली प्रतिनिधि चरित्रों की शैली, अखंड कथानक की शैली, सखंड कथानक की शैली आदि का अध्ययन कर सकते हैं।

यह एक सोपानकम है जिसमें हर सोपान की उपशैली का अपेक्षाकृत अकेले अध्ययन हो सकता है, यद्यपि यह तो स्पष्ट है कि अंगातवा तथा सिद्धांत रूप से हरेक सोपान को उससे उच्च सोपान के अंतर्गत देखना ही उचित है।

साहित्यिक शैली की एक विशेषता यह होती है कि वह अन्य - साहित्य से भिन्न शास्त्रीय, तथा सामाजिक - शैलियों का भी प्रयोग कर सकती है तथा करती भी है।

साहित्यिक प्रसंग के एक व्युत्पन्न स्थिति होने के कारण उसमें मूल सामाजिक प्रसंग की शैलियों के प्रयोग की संभावना बनी रहती है। उदाहरण के लिए, बोलचाल की शैली के अनेक स्थल साहित्यिक शैली में आ सकते हैं। एक साहित्यिक कृति में पात्रों की आपसी बातचीत, कोई सार्वजनिक भाषण आदि बोलचाल की शैली में उपस्थित किए जा सकते हैं तथा किए भी जाते हैं।

ऐसे उदाहरण बहुत कम हैं जिनमें किसी विशेष कोटि के भाषागत उपकरण का प्रयोग केवल साहित्यिक या साहित्येतर प्रसंग तक सीमित हो। बल्गेरियाई भाषा में प्रत्यक्ष वृत्ति का प्रयोग साहित्येतर प्रसंगों तक सीमित है, जिनकी सचाई की साक्षी वक्ता खुद दे सकता है। साहित्यिक प्रसंग की सच्चाई की साक्षी नहीं दी जा सकती वह विश्वसनीय तो हो सकता है पर उसे एक ऐसे तथ्य के रूप में नहीं देखा जा सकता जिसका कोई चश्मदीद गवाह भी हो।

हिन्दी में 'और' के सहरूप 'औ' का प्रयोग कविता तक ही सीमित दिखाई देता है । इस प्रकार, संरचना की दृष्टि से साहित्यिक शैलीगत उपकरण बन जाती है। साहित्यिक प्रसंग में शैली स्वयं साध्य होती है तथा साहित्येतर प्रसंग में शैली साधन बनकर आती है तथा साध्य का पद प्रतिपाद्य को मिलता है।

साहित्यिक शैली में व्यक्ति का प्रश्न कई बार अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है। अधिकतर यही होता है कि लेखक उपलब्ध शैलीगत विकल्पों में से ही अपने आशय तथा उद्देश्य के अनुरूप चुनाव करता है और इसी के साथ वह कभी-कभी थोड़े बहुत प्रवर्तन भी कर लेता है। इन चुनावों और परिवर्तनों के कारण उसकी शैली में वैयक्तिकता आ जाती है।

ऐसे लेखक बहुत कम होते हैं जो भाषा का सामान्य की अपेक्षा अधिक वैयक्तिक प्रयोग करते हैं। ऐसे लेखक शैलीगत उपकरणों की विकल्पश्रृंखला का प्रवर्तन स्वतः कर देते हैं। उनके शब्द सर्वदा और सर्वथा वही अर्थ नहीं देते जो समाज में प्रचलित हैं।

ऐसे लेखकों की साहित्यिक शैली में व्यक्तिशैली प्रधानता से पहचानी जाती है। 'अज्ञेय' बहुत कुछ इसी प्रकार के लेखक माने जाते हैं (यह सभी आत्मसंस्कारवादी प्रकथन ही है जिसे प्रमाण तथा परीक्षण से पुष्ट करना उचित होगा) ।

इसके दूसरे छोर पर ऐसे लेखक होते हैं जो समाज में प्रचलित शैली से ही काम चलाते हैं। उनमें या तो प्रवर्तन की क्षमता नहीं होती या वे अपने पाठकवर्ग को ध्यान में रखकर, जो

सामान्य भाषा का ही ग्राहक है ऐसा करते हैं। जासूसी तथा इसी प्रकार के हल्के–फुल्के साहित्य के लेखक इस कोटि में आते हैं। उनमें व्यक्तिशैली का अवकाश अपेक्ष्या काफी कम होता है । अधिकांश लेखकों की स्थिति ध्रुवों के बीच में होती है।

10.3 सारांश :

- हल्के–फुल्के विषयों को लेखक व्यंग्य, विनोद एवं परिहास के लिए उपयुक्त भाषा में प्रस्तुत करते हैं। साथ ही अपने मनोभावों के अनुरूप वे उनमें उन बातों का समावेश कर सकते हैं जो पाठक को गुदगुदाएं, हंसाएं या रूलाएं, जिनसे पाठक एक विचित्र निजीपन, अद्‌भुत सजीवता और मनोहर रंगीनी पा सके। गम्भीर विषय के निरूपण के लिए लेखक प्रायः गम्भीर, विचार–बोझिल तथा सूत्रात्मक भाषा का प्रयोग करते है।
- भाषा को अलंकृत करने में जिस शैली का रूप निरखता है उसे आलंकारिक शैली कहते है। कुछ लेखक अपनी बात को कहने के लिए अच्छे–अच्छे शब्दों, मुहावरों आदि का प्रयोग करते हैं और उसे अधिक–से–अधिक सुंदर बनाने की कोशिश करते हैं। यह शैली कभी–कभी अलंकारों के दबाव से कृत्रिम बन जाती है और कथ्य और कथन दोनों के बीच सन्तुलन नहीं रह पाता।
- वस्तुतः भाषा या अभिव्यक्ति में जिस विशेष तत्त्व की प्रधानता होती है उसी के आधार पर शैली–विशेष को पहचाना जाता है। पर मुख्यतः निबन्धों में समास, व्यास, भावात्मक और व्यंगात्मक शैलियों का प्रयोग किया जाता है।
- साहित्यिक शैली की कृति, विधा, युग आदि के भेद से फिर अनेक उपशैलियां हो जाती हैं। तदनुसार हम कथाशैली, कविताशैली (काव्यशैली), नाटकशैली, निबंधशैली, आदि उपशैलियों की बात करते हैं। इसी प्रकार 'कामायनी' की शैली, 'गोदान' की शैली, 'चन्द्रगुप्त' की शैली और छायावादी शैली, प्रगतिवादी शैली आदि उपशैलियों की बात भी करते हैं।
- साहित्यिक शैली की एक विशेषता यह होती है कि वह अन्य साहित्य से भिन्न शास्त्रीय, तथा सामाजिकद्ध शैलियों का भी प्रयोग कर सकती है तथा करती भी है। साहित्यिक

प्रसंग के एक व्युत्पन्न स्थिति होने के कारण उसमें मूल सामाजिक प्रसंग की शैलियों के प्रयोग की संभावना बनी रहती है।

- साहित्यिक शैली में व्यक्ति का प्रश्न कई बार अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है। अधिकतर यही होता है कि लेखक उपलब्ध शैलीगत विकल्पों में से ही अपने आशय तथा उद्देश्य के अनुरूप चुनाव करता है और इसी के साथ वह कभी-कभी थोड़े बहुत प्रवर्तन भी कर लेता है। इन चुनावों और परिवर्तनों के कारण उसकी शैली में वैयक्तिकता आ जाती है।

10.4 सूचक शब्द :

हिन्दी भाषा में शैली : हल्के-फुल्के विषयों को लेखक व्यंग्य, विनोद एवं परिहास के लिए उपयुक्त भाषा में प्रस्तुत करते हैं। साथ ही अपने मनोभावों के अनुरूप वे उनमें उन बातों का समावेश कर सकते हैं जो पाठक को गुदगुदाएं, हंसाएं या रूलाएं, जिनसे पाठक एक विचित्र निजीपन, अद्भुत सजीवता और मनोहर रंगीनी पा सके। गम्भीर विषय के निरूपण के लिए लेखक प्रायः गम्भीर, विचार-बोझिल तथा सूत्रात्मक भाषा का प्रयोग करते है। ऐसी रचना में जिस शैली का प्रयोग होगा, वह वस्तुनिष्ठ तथा विचारप्रधान होगी। उपर्युक्त शैलियों का समन्वित प्रयोग भी सम्भव है। ऐसी रचनाओं में मननशीलता और एक विशेष प्रकार की स्वच्छन्दता का अद्भुत सुयोग रहता है।

आलंकारिक शैली : कुछ लेखक अपनी बात को कहने के लिए अच्छे-अच्छे शब्दों, मुहावरों आदि का प्रयोग करते हैं और उसे अधिक-से-अधिक सुंदर बनाने की कोशिश करते हैं। भाषा को इस प्रकार से अलंकृत करने में जिस शैली का रूप निरखता है उसे आलंकारिक शैली कहते है। यह शैली कभी-कभी अलंकारों के दबाव से कृत्रिम बन जाती है और कथ्य और कथन दोनों के बीच सन्तुलन नहीं रह पाता।

समास शैली : इस शैली की विशेषता है-कथ्य की गम्भीरता के अनुरूप सूत्रात्मक वाक्य-संगठन। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इस शैली के प्रसिद्ध लेखक हैं। उन्होंने अपने निबन्धों में प्रायः प्रथम वाक्य सूत्र-रूप में दिया है फिर उसका ही पल्लवन किया है । पल्लवन के लिए उन्होंने व्यास शैली का आश्रय लिया है।

साहित्यिक शैली : साहित्यिक प्रसंग क्योंकि कल्पनाप्रसूत होता है और इसी कारण उसमें उपलब्ध भाषाप्रयोग सोद्देश्यता की दृष्टि से सामाजिक और साहित्येतर भाषा से भिन्न होता है इसलिए साहित्यिक शैली को स्वनिष्ठ मानना ही उचित है। साहित्यिक शैली की कृति, विधा, युग आदि के भेद से फिर अनेक उपशैलियां हो जाती हैं। तदनुसार हम कथाशैली, कविताशैली (काव्यशैली), नाटकशैली, निबंधशैली, आदि उपशैलियों की बात करते हैं।

10.5 स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न :

1 हिन्दी भाषा में प्रयुक्त प्रमुख शैलियों के बारे में संक्षेप में लिखें।

2 अलंकार शैली पर सोदाहरण टिप्पणी करें।

3 समास शैली से आपका क्या अभिप्राय है, संक्षेप में लिखें।

4 साहित्यिक शैली किस प्रकार लेखन में परिवर्तन लाती है, विस्तार से वर्णन करें।

10.6 संदर्भित पुस्तकें :

- **शुद्ध हिन्दी**, लेखक – डा. हरदेव बाहरी, 2004
- **हिन्दी व्याकरण**, लेखक – पं. कमला प्रसाद गुरू, 2003
- **अच्छी हिन्दी**, लेखक – रामचंद्र वर्मा, 2003
- **हिन्दी का सही प्रयोग**, लेखक – नीलम मान, 2005
- **भाषा शास्त्र तथा हिन्दी भाषा की रूपरेखा**, लेखक – देवेंद्र कुमार शास्त्री, 2003